निर्गणोपासक कबीर की साधना और संगीत

डॉ0 रोमा अरोरा
एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष संगीत विभाग
राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, फैजाबाद।

भक्ति की परंपरा विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद' से प्रचलित हैं। हमारे पूर्वज, प्रकृति की लयबद्ध गति तथा उसकी विमुग्धकारी छटाओ से प्रभावित थे। यह विदित है कि भक्ति, आ संस्कृति का मूल है। वैदिक काल से आज तक इस पर विस्तृत रूप से विचार हुआ है। यह कभी साहित्यिक और कभी आध्यात्मिक दृष्टि से विद्वानों की आलोचना– प्रत्यालोचना का विषय रही है। साहित्यिक क्षेत्र में तो भक्ति से संबंधित अनेक मत–मतांतर हैं, परंतु आध्यात्मिक क्षेत्र में इसकी श्रेष्ठता और महत्ता निर्विवाद है। आध्यात्मिक क्षेत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धियां ही साहित्य मर्मज्ञों के लिए भी आकर्षण केंद्र बनी और अंत में रस शास्त्र में इसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ । पतंजलि दर्शन के अनुसार निष्काम कर्म करना तथा समस्त कर्म परमात्मा को ही समर्पित कर देना भक्ति है।[1] महर्षि नारद ने कहा–ईश्वर के प्रति प्रेम ही भक्ति है।[2] शांडिल्य के अनुसार ईश्वर के प्रति अनुरक्ति ही भक्ति है।[3] विद्वानों ने गहन अध्ययन के पश्चात भक्ति की चार अवस्थाएं मानी है।[4] ज्ञान, वरण, प्राप्ति और अनुभव। गुरु की कृपा से ज्ञान प्राप्त होता है वहीं ज्ञान ईश्वर और भक्ति के बीच परस्पर वरण की स्थिति पैदा करता है। वहीं से भक्त निष्काम भाव से धर्म का अनुष्ठान और भक्ति का संपादन करता है, यही प्राप्ति की अवस्था है। सेवा, जो भक्त की अंतिम परिणति है– उसे अनुभव कहा गया है। भक्तों का अंतिम लक्ष्य ईश्वरानुभूति का है। कबीर भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं। जो व्यक्ति भक्ति नहीं करता उसका जीवन व्यर्थ है, उसे जन्म लेते ही मर जाना चाहिए, ऐसा कबीर का मत है।[5] कबीर की भक्ति–साधना की कई अवस्थाएं है। साधना की प्रथमावस्था में कबीर जिज्ञासु भक्त की भांति भाव–भक्ति के द्वारा हरि–गुण आदि का वर्णन करते दिखाई देते हैं। दूसरी अवस्था निष्काम–भक्ति की साधना है जिसमें कबीर भावों की निर्मलता के द्वारा भक्ति की योजना करते दिखाई पड़ते हैं और तीसरी अवस्था में वह प्रेम लक्षणा–भक्ति के सहारे भगवान का सानिध्य प्राप्त करने हेतु भक्ति करते दिखाई पड़ते हैं।[6] कबीर की भक्ति कुछ ऐसी है कि उसे किसी प्रचलित परिभाषिक शब्दावली से पूर्ण रूपेण व्यक्त नहीं किया जा सकता। कबीर के समय सिद्धनाथ और जैन संप्रदाय के भक्त साधकों की बानियाँ और उपासना पद्धतियां थी। कबीरदास, प्रारंभ में तो इन संप्रदायों से बहुत अधिक प्रभावित थे, किंतु अनुभव ज्ञान की परिपक्वता के साथ उन्हें यह मार्ग अपूर्ण प्रतीत हुआ। निर्गुण ब्रह्म के उपासको ने जीव और ब्रहम की एकता के सिद्धांत को प्रतिपादित किया और जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य में इहलौकिक जीवन की सार्थकता मानी। कबीर दास इसी निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उन्हें ज्ञानमार्गी की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। उन्होंने निर्गुण और सगुण के भेद को जानने के लिए ज्ञान को उपयोगी माना । कबीरदास के अनुसार ज्ञान के द्वारा भ्रम, अंधविश्वास और निरर्थक कर्मकांड की मोटी तहों को छेद कर धर्म के सच्चे रूप को पहचानने की अंतर्दृष्टि आती है।[7]

संतो भाई, आई ज्ञान की आंधी रे।

भ्रम की टाटी सबै उडाणी, माया रहै न बांधी।

Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 3 | ISSN : 2581-6306

वेदों में प्रतिबिम्बित संगीत

डॉ0 रोमा अरोरा
एसोसिएट प्रोफेसर–संगीत गायन,
राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Volume 4, Issue 3
Page Number : 149-154

Publication Issue :
May-June-2021

Article History
Accepted : 01 June 2021
Published : 15 June 2021

शोध सारांश – भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों का वाङ्मय एवं सबसे प्राचीन, नियमित, सुसंबद्ध संगीत हमें वैदिक काल में ही मिलता है। वैदिक युग का प्रारम्भ आर्यों के आगमन से ही माना जाता है। इस काल में संगीत की बागडोर ब्राह्मणों के हाथ में थी। वे ही वेदाध्ययन कर धार्मिक संस्कार सम्पन्न कराते थे। ब्राह्म ऋत्विज संगीत शिक्षा भी दिया करते। गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का विकास वैदिक युग में हुआ। वेदचतुष्टयी में गीत के अनेक प्रकार स्तोम, स्त्रोत, गाधिन, गायत्रिन, साम आदि का उल्लेख मिलता है। इस काल में वीणा वादन के अतिरिक्त शंख, मेरी दुंदुभि, तूणव, वाण आदि प्रचलित थे। वैदिक वाङ्गमय में वर्णित उदात्तः अनुदात्त एवं स्वरित के आधार पर ही पाणिनी ने सप्तस्वरों को व्यहृत किया। इस काल में आर्यों ने संगीत को धर्म के आवरण में लपेट कर गंगाजल के समान पवित्र कर दिया।

बीज शब्द– नाद, ब्रह्मानन्द, सहोदर, गीर, गातु, सामगान, अर्चिक, गाथिक सालिक।

यह सर्वज्ञेय है कि शब्द हमारे चतुर्दिक विद्यमान रहता है। शब्द का पर्याय है नाद, जो संगीत का आधार है। नाद के बिना स्वर गीत–नृत्य कुछ भी सम्भव नहीं है। मतंग ने नाद की महिमा का वर्णन वृहद्देशी में इस प्रकार किया है–

"न नादेन बिना गीत, न नोदन बिना स्वराः।

न नादेन बिना नृत्तं तस्मान्नदामकं जगत्।।[1]

संगीत मानव के अन्दर सृष्टिकाल से ही रहता है। पं0 शारंगदेव ने प्राणिमात्र के सम्पूर्ण जगत को नादाधीन माना है[2] वस्तुतः नाद और जीव एक ही है। नाद के दोनों रूप आहत और अनाहत ये मानव देह में स्थित रहते हैं। आहत नाद से स्वर की उत्पत्ति होती है। इसमें मन को एकाग्र तथा जीवन को आनन्द प्रदान करने की अपूर्व क्षमता है। अनाहत नाद जो कानों को सुनाई तो नहीं पड़ता परन्तु इसमें आत्मानंद की ऐसी क्षमता है जिसका प्रमाण नानक, कबीर, सूर आदि है। इनके अनुसार यद्यपि अनाहत नाद लोक रंजक नहीं है परन्तु मुक्ति दायक है।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 5 | ISSN : 2582-0095

स्वामी हरिदास का भारतीय संगीत को अवदान

डॉ0 रोमा अरोरा
एसोसिएट प्रोफेसर–संगीत गायन, राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, अयोध्या,उत्तर प्रदेश।

शोध–सारांश– आध्यात्मिक संगीत साधना के क्षेत्र में भारतवर्ष के सन्तों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भगवद्भक्ति एवं संगीत का सम्बन्ध अनवरत रूप से वैदिककाल से चला आ रहा है। वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों एवं संतों में स्वामी हरिदास में इष्ट साधना हेतु संगीत को माध्यम बनाया। स्वामी हरिदास एक महान् कवि, संगीतकार एवं वाग्गेयकार के रूप में प्रसिद्ध थे। भक्ति, माधुर्य एवं संगीत का अनूठा समन्वय उनको कवियों में प्राप्त है। ब्रजभाषी स्वमी जी द्वारा वर्णित राग–रागिनियों में निबद्ध अनेक पद स्वामी हरिदास के ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। स्वामी हरिदास का सांगीतिक अवदान (योगदान) भारतीय संगीत की अमूल्य निधि के रूप में प्राप्त होता है।

बीज शब्द– उदात्त, परम्परानुमोदित, चतुर्विधि तथा लास्य, अवदान।

भारत देश आध्यात्म प्रधान देश है। अतः आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में संगीत का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। यह चेतना की धारा वैदिक युग से वर्तमान युग पर्यन्त चली आ रही है।

उत्तर मुस्लिम काल में भावनाओं और प्रवृत्तियों के परिवर्तन होने के कारण प्राग्वैदिक एवं वैदिक काल के संगीत में उपलब्ध भगवदाराधना के उदात्त और दिव्य भाव का ह्रास होने लगा था। ऐसे समय में भारतीय ज्ञान धारा के प्रहरी साधु–सन्त और सन्यासियों ने यथार्थ रूपेण आत्म बलिदान करके धरोहरों की रक्षा की। किन्तु कुछ सामाजिक कारणवश विभिन्न संत सम्प्रदायों के संगीतकारों का क्रमब(इतिहास न बन सका। हिन्दू और मुसलमानों के साधकों के मिलन से, देश में धर्म की नई जागृति उत्पन्न हुई, जिनके व्याख्याता कबीर, दादू और नानक जैसे संत हुये।[1]

ईसा की चौदहवीं शताब्दी में अनेक ईश्वर भक्त संत–संगीतज्ञों ने जन्म लिया था। इस काल में भक्ति आन्दोलन अपने चरम उत्कर्ष पर था। इसी समय निर्गुण संत भक्ति, सूफी भक्ति, प्रेम लक्षणा कृष्ण–भक्ति तथा मर्यादा मार्गी–राम भक्ति की प्रेरणा से हिन्दी के सर्वोच्च साहित्य का निर्माण हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप शिल्प, संगीत तथा अन्य ललित कलाओं को भी पूर्ण विकसित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।[2] सगुण भक्ति की दो धारायें राम भक्ति तथा कृष्ण भक्ति और निर्गुण भक्ति की दो धारायें ज्ञान मार्गी तथा प्रेम मार्गी, इन चारो भक्तियों के संतों ने अपने धर्म प्रचारार्थ संगीत की राग–रागनियों का आश्रय लिया। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि जब भारतीय संगीत की पवित्रता और उसके आत्मिक सौन्दर्य को नष्ट करने के प्रयत्न हुये तभी उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन का वेग बढ़ा।

भारतीय संगीत वैदिककाल से ही आध्यात्मिक धरातल पर आसीन रहा है क्योंकि योग की अपेक्षा संगीत को ब्रह्मचिन्तन का सुगम साधन स्वीकार किया गया है। अतः भगवत भक्ति और संगीत का सम्बन्ध अनवरत रूप से चला आ रहा है। ब्रज में स्थापित सभी वैष्णव सम्प्रदायों के आचार्यों ने भी भगवत् वन्दना के लिये संगीत का

...192618 | Received: 01 Sep 2019 | Accepted: 15 Sep 2019 | September-October-2019 [2 (5) : 94-97]

"भक्तिकालीन गायन शैलियां"

डॉ0 रोमा अरोरा
एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष संगीत विभाग
राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, फैजाबाद।

मानव सदा वैचित्र्य पिपासु रहा है। प्राचीन विषयों में नवीनता लाने की सदैव चेष्टा पाई गई है। संगीत में हम इस भावना का स्पष्ट प्रभाव देखते हैं, जिसके फलस्वरूप गायन की विभिन्न गायन शैलियों का उद्भव हुआ।

वैदिक काल में ऋक्, पाणिका और गाथा जैसे गीतों का उल्लेख पाया जाता है। साम के उपरांत जातिगा तत्पश्चात प्रबंध शैली प्रचार में आई। भरत काल में ध्रुवा गीतों का तथा मतंग काल में प्रबंध गायन का वर्णन मिलता प्रबंध गान से पूर्व हमें ध्रुवा गीतों की चर्चा शास्त्रों में मिलती है।

क्रमानुसार गीत की परम्परा का अध्ययन करने पर विदित होता है कि ऋचा से छंद गान, छंद गान से प्रबंध उत्पत्ति हुई। आचार्य भरत के 'नाट्य शास्त्र' के पश्चात 13वीं शताब्दी से पूर्व संगीत शास्त्र का कोई उल्लेखनी प्रमाणिक ग्रंथ हमें नहीं मिलता। 12वीं शताब्दी में महाकवि जयदेव का 'गीत–गोविंद' मिलता है, जो प्रबंध युग सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इस ग्रंथ का मुख्य वर्णन विषय गीतों (अष्टपदियों) में है।

गीत गोविंद के गीतों में रागों और तालों का उल्लेख पाया जाता है। जिन रागों का उल्लेख हुआ है, वह है मालव, गुर्जर, गुजरी, वसंत, रामकली, कर्णाट, देशाख्य,देशवराटी, गुण करी, देशांक, भैरव और विभास। गीत के स अंग– उदग्राह, मेलापक, ध्रुव, अंतरा और आभोग में मिलते हैं। 13वीं शताब्दी मे पंडित शारंगदेव कृत संगी रत्नाकर,संगीत शास्त्र का प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। इसके पश्चात 15वीं शताब्दी में पंडित लोचन कृत 'रा तरंगिणी' है जिसमें कवि लोचन ने छंद शास्त्र के साथ साथ संगीत का विवेचन किया है।

काव्य निर्गिति में छंद एक आवश्यक तत्व है। भक्ति काल में काव्य रचना पद–शैली के आधार पर हुई है। भक्ति संगी का स्वरूप प्रबंधों के रूप में पाया जाता है। इसीलिए राग रागिनियों से उसका घनिष्ठ संबंध है। भक्त कवियों ने अप पदों में काव्य और संगीत का सुंदर समन्वय किया है। वास्तव में उनकी रचनाओं में भजन– कीर्तन आदि तत्कालीन शैलियां अत्यधिक समृद्ध हुईं।

भक्तिकालीन कवि वीरगाथा काल के काव्य, उनकी संगीत शैली से भली भांति परिचित थे। अलाउद्दीन खिलज के काल में अमीर खुसरो ने भारत और फारस के संगीत को मिश्रित कर के कई नए अविष्कार किए। उन्होंने कौर ग़ज़ल, तराना, नक्श, नशीद, यसीत, निगार, तिल्लाना, सुहेला आदि शैलियों के लिए काव्य रचनाएं लिखीं। खुसरो समय जो मिश्रित गायन पद्धति प्रचलित हुई, उसी का विकसित रूप आज की ख्याल गायन शैली है। ख्याल के सा टप्पा, ठुमरी आदि गायन शैलियां भी मुसलमानी शासन काल में ही प्रचलित हुई। उच्च श्रेणी के कलाकारों को ध्रुप शैली ही मान्य थी।

अयोध्या की संगीत परम्परा

डॉ. रोमा अरोरा

संगीत एक अन्विति है। प्राचीन संस्कृत वाङ्गमय में संगीत का व्युत्पत्तिगत अर्थ 'सम्यक् गीतम्' रहा है, जिसमें गीत, वाध तथा नृत्य तीनों का समावेश है। भारतीय परम्परानुसार संगीत का उद्गम भी अन्य कलाओं की भाँति वेदों से हुआ है। वेद का वीजमंत्र है- 'ओऽम्'। अ उ म तीन प्रमुख शक्तियों का द्योतक है अर्थात् अकार, उकार, मकार - क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिशक्ति का पुंज ईश्वर है। ग्रंथों में कहा भी गया है-

"आकारों विष्णु रूदिष्ट उकारास्तु महेश्वरः। मकारोणोच्यते ब्रह्म प्रणावेनमयो मतः।।"

इसी बीज मंत्र से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। इसी से नाद, नाद से स्वर और स्वर से संगीत की रचना हुई। संगीत के सप्त स्वर इसी के अन्तर्विभाग हैं। संगीत की शास्त्रीय पद्धति भारत भूमि पर कब अवतरित हुई, इस विषय में अनेक मत-मतांतर हैं, किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि इतिहासकाल के वहुत पहले यह मूर्त रूप ले चुकी थी। ऋग्वेद स्वयं इसका प्रमाण है। ऋग्वेद की ऋचायें विशेष पद्धति में, अनुशासन पूर्वक गाई जाती थी। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारत में संगीत परम्परा वैदिककाल से चली आ रही है।

अयोध्या, भारतीय संस्कृति का प्राचीनतम् केन्द्र माना जाता है। पुराणों और महाकाव्यों में 'अयोध्या' परम् ऐश्वर्ययुक्त, इक्ष्वाकु नरेश की राजधानी के रूप में वर्णित है, जिसका कोना-कोना निरन्तर वेद ध्वनि तथा संगीत के स्वरों से गुंजायमान रहता था।[1] संगीत विषयक समुन्नति एवं प्रसाद के सर्वत्र दर्शन होने के कारण हम अनुमान लगा सकते हैं कि कला के रूप में संगीत को सामाजिक प्रतिष्ठा भी सर्वप्रथम इसी धरती पर मिली होगी। महाकाव्य 'रामायण' द्वारा भारत की प्राचीन परम्परा का परिज्ञान होता है, जिसकी उद्भावना आदि कवि महार्षि वाल्मीकि के द्वारा हुई। रामायण का निर्माण गेयकाव्य के रूप में हुआ। रामायण के आधार पर स्पष्ट होता है कि अयोध्या नगरी में प्रातः कालीन ईश्वरीय स्तुति का गान होता था तथा लोक गाथाएं व राजस्तुति भी गाई जाती थी। विद्वानों के अनुसार इसकाल में संगीत की प्रतिष्ठा वैदिककाल की ही भाँति थी। संगीतकला को राज्याश्रय प्राप्त था, यह तथ्य रामायण की निम्न उक्ति से स्पष्ट होता है- "नाराजके जनपदे प्रभूत नटनर्तकाः" अर्थात् विना राज्याश्रय के नाट्य तथा नृत्य आदि ललित कलाओं का विकास संभव नहीं।

पुराणों से स्पष्ट होता है कि अयोध्या में संगीत का एक स्वस्थ वातावरण था किन्तु ऐतिहासिक प्रमाण अयोध्या की किसी पुष्ट परम्परा की ओर संकेत नहीं देते। गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ अयोध्या पर जो दुर्दिन की छाया पड़ी वह फिर मिट नहीं सकी। आने वाली शताब्दियाँ बहुत अशान्तिपूर्ण तथा उथल-पुथल से भरी थीं, जिसका प्रभाव संगीत पर भी पड़ा। यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि तुलसीदास जी की मानस पंक्तियों के कारण ही आज भी अयोध्या का पुनर्निर्माण हो सका है। महाकवि तुलसीदास के प्रभाव से दक्षिण में जन्मी भक्तिधारा जव अयोध्या पहुँची तो उसके साथ ही इष्टोपासना का ललित आधार भक्ति प्रधान संगीत भी यहाँ पहुँचा। तुलसी के मानस से अयोध्या नगरी के सांगीतिक वातावरण की जानकारी मिलती है। भगवान राम के विवाहोत्सव पर सखियों द्वारा मंगलाचार गान तो हुआ ही, साथ ही देव दुन्दुभियाँ बजने लगीं गंधर्व व अप्सराओं द्वारा गान और नृत्य होने लगा। ऐसा उल्लेख रामयण में भी मिलता है। वनवास के समय भगवान राम व सीता के समक्ष वन नर्तकियों द्वारा विनोद नृत्य किया जाता था। जव हनुमान ने रावण के अन्तमहल

एसोसियट प्रोफेसर, संगीत विभाग, राजामोहन गर्ल्स पी.जी. कालेज, अयोध्या।

संगीत शिक्षा के विविध आयाम

डॉ० रेमा अरोरा
एसोसिएट प्रोफेसर–संगीत गायन,
राजा मोहन गर्ल्स पी०जी० कालेज, अयोध्या,उत्तर प्रदेश।

शोध–सारांश– संगीत शिक्षा, गुरू–शिष्य परम्परा के माध्यम से मौखिक रूप से, प्राचीन काल से ही चली आ रही है। संगीत गुरूमुखी विद्या है। प्राचीनकाल में संगीत शिक्षण पद्धति मन्दिरों में, दरबारों में सीना बसीना तालीम के माध्यम से होती थी। अपनी मौलिक विचारधारा, रीति, शैली आदि के अनुरूप शिक्षण–पद्धति क्रमश सम्प्रदाय, मत (मठ), प्रबन्धगान के अन्तर्गत बानो, तदन्तर घरानों के रूप में विकसित हुई। शालेय शिक्षण का प्रचलन प्राचीन एवं मध्ययुग में भी यत्र–तत्र देखने को मिलता है। वर्तमान समय संस्थागत संगीत शिक्षण का है जिसके कारण ही आज संगीत घर–घर में गूँज रहा है।

बीज शब्द– आयाम, शालेय शिक्षण, प्रबन्ध ज्ञान, वाग्गेयकार, कलावन्त, घराना।

संगीत शिक्षा की परम्परा अपने देश में प्राचीन काल से चली आ रही है। प्रत्येक विद्या के शिक्षा ग्रन्थों का नाम मिलते हैं; जिनमें नारद द्वारा रचित "नारदीय शिक्षा" एवं प्रमुख ग्रन्थ है।

संगीत शिक्षा या शिक्षण के इतिहास पर दृष्टिपात करने से संगीत–शिक्षण प्रणाली का ऐतिहासिक स्वरूप स्पष्ट होता है।

भारतीय संस्कृति में गुरू का स्थान सर्वोच्च माना गया है–

"गुरूर्ब्रह्मा, गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरूः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरूवे नमः।।"

वैदिक काल से मध्ययुग तक संगीत–शिक्षा, गुरु–शिष्य परम्परा द्वारा दी जाती रही है। प्रशिक्षण देने के दो रूप प्रचलित रहे–

प्रथम–पिता द्वारा पुत्र को प्रशिक्षण।

द्वितीय–गुरु द्वारा शिष्य को प्रशिक्षण।

संगीत शिक्षा गुरु मुखी शिक्षा है। गुरु से शिष्य एवं शिष्य से प्रशिष्यों को यह विद्या मौखिक रूप से देने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। उस समय स्वर लिपिब(करने की व ध्वनि अंकित करने की कोई तकनीक उपलब्ध नहीं थी, जिससे सबक संग्रहीत किया जा सके। सब कुछ मौखिक परम्परा द्वारा ही सीखना–सिखाना था, फिर चाहे मन्दिर–संगीत हो या दरबारी संगीत।

संगीत में गुरु–शिष्य परम्परा शास्त्र एवं कला के अन्तर्गत शिवमत, ब्रह्ममत, भरतमत, हनुमन्मत आदि सभी संगीत एवं नाट्य के स्वतन्त्र सम्प्रदाय थे। जिनकी अपनी पृथक–पृथक मान्यतायें थी। ... ग, मतंग तथा अभिनवगुप्त 'भरतमत' के अनुयायी थे। प्राचीन प्रबन्ध–गान की शुद्धा, भिन्ना गौडी, ... एवं साधारणी गीतियाँ, ध्रुवपद की गौरहारी, डागुर, नौहार एवं खंडार बानी ;वाणियाँद्ध तथा ग्वालियर, आगरा, जयपुर, पटियाला, किराना इत्यादि घरानों का विकास गुरु–शिष्य परम्पराओं के आधार पर हुआ। तात्पर्य यह है कि 'मत', 'सम्प्रदाय', 'वाणी' या 'घराने' कला के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण से

...92688 | Received : 15 Nov 2018 | Accepted : 30 Nov 2018 | November-December-2018 [1 (4) : 104-109]

रामायण एवं मानस में ललित कलाएँ

▪ डॉ रोमा अरोरा

भारतीय संस्कृति का प्रधान अंग ललित कलाएं हैं। रामायण और मानस में इन कालाओं का विवरण एवं चित्रण व्यापकरूपेण किया गया है। दोनों महाकाव्यों में कलात्मक विवेचन करने के पूर्व कला का स्वरूप अथवा कला का महत्वज्ञान अनिवार्य है।

कला को परिभाषित करना सरल नहीं है किन्तु सहजरूप में कहा जा सकता है कि जिसमें लालित्य हो, सूक्ष्मता हो, माधुर्य हो, जो मनुष्य के भावजगत को स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त कर सके, तथा जो परम्परागत रूप में अक्षुण्ण रह सके, वह कला है। मानव हृदय की भावनाओं को जब सुन्दरता से प्रस्तुत किया जाय, जिससे आत्मा प्रसन्न हो और हृदय अलौकिक आनन्द से परिपूर्ण हो जाय, वह कला ललितकला कहलाती है। कला का सम्बन्ध नियमों से नहीं है। कला असीमित है अर्थात् मनुष्य की भावनाओं का जहाँ तक विस्तार है, वह सब कला का विषय है। इस दृष्टि से कला के दो विभाग होते हैं-

(१) उपयोगी कला (२) ललित कला।

ललित कला के अन्तर्गत वास्तु कला, मूर्ति कला, चित्रकला, संगीत तथा काव्य कला है। यह श्रेणी इन कलाओं के आधार तत्वों पर निर्भर है।

रामायण और मानस भारतीय संस्कृति की धरोहर के रूप में है। ये दोनों महाकाव्य, काव्य कला के प्रकाश-स्तम्भ तो हैं ही किन्तु अन्य चार कलाओं का सांस्कृतिक रूप भी हमें रामायण और मानस में दृष्टिगोचर होता है।

रामायण व मानस में वास्तुकला :

रामायण युग में यज्ञमण्डपों का सूक्ष्म चित्रण मिलता है। इस युग में यज्ञादि की प्रधानता थी। ये मण्डप केवल साधारण वर्ग ही नहीं वरन् शिल्पशास्त्रियों के संचालन में निर्मित कराये जाते थे। व्यापक यज्ञशालाओं के निर्माण का चित्रण भी रामायण में मिलता है। राजा दशरथ की नगरी अयोध्या के भवन, उपवन, सार्वजनिक स्थानों में शिल्पकला का आर्दश स्वरूप रामायण में दर्शाया गया

भारतीय सूफी संगीत

• डॉ0 रोमा अरोरा

विश्व में आन्तरिक उपासना के प्रत्येक मत में संगीत रचा–बसा है। ऋषियों, संतो, फकीरों सभी ने संगीत से प्रेम किया और उस परम शान्ति को प्राप्त किया जिसे निर्वाण अथवा समाधि कहते हैं। संगीत–साधना है ही इतनी प्रभावशाली कि इसके प्रभाव से आत्मिक सौन्दर्य में वृद्धि होने के साथ–साथ अन्तर्दृष्टि खुलने की भी संभावना बढ़ जाती है और साधक को पूर्णता प्राप्त होती है।

सूफी–संतों ने आहत नाद की उपासना करते हुये परमात्मा की प्राप्ति के लिये सदैव अपने हृदय के प्रेम को व्यक्त किया है। सूफी संत परमात्मा को परम सत्य मानते हुये उसे परम सौन्दर्य और कल्याणकारी भी मानते हैं।

शताब्दियों पूर्व अरब में पैगम्बर हजरत मुहम्मद द्वारा इस्लाम धर्म प्रवर्तन के पूर्व ही निस्पृह दरवेशों और फकीरों का एक वर्ग चला आ रहा था जो 'सूफ़ी' कहलाता था। इस वर्ग का एकमात्र उद्देश्य था, ईश्वर की प्राप्ति। अतः वे धन–वैभव, घर–परिवार आदि के प्रति उदासीन रहकर केवल ईश्वर चिन्तनरत रहते थे। परमेश्वर के प्रति सच्चा अनुराग तथा उनके मिलन में एक रस हो जाना ही उनके जीवन का आदर्श था।

सूफ़ी का अर्थ है – सफाई वाला। जिसने अपने हृदय रूपी पात्र को गंदगी और विकारों से शुद्ध कर लिया, मन के मैल को धो डाला, पात्र को स्वच्छ किया, वही 'सूफ़ी' कहलाता है।

'सूफ़ी' शब्द 'सूफ' से बना है, जिसका अर्थ है ऊन या मोटा पशमीना। यह शब्द सर्वप्रथम केवल उन व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त हुआ जो सादा जीवन एवं संतोषी वृत्ति वाले होते थे तथा एक खास ढंग के साधारण वस्त्रों द्वारा लोगों को आकर्षित करते थे। ईश्वर प्राप्ति हेतु साधनागत मार्ग पर चलने वाले सूफी का लक्ष्य पवित्रता, उपासना, तल्लीनता तथा आत्मसमर्पण का धर्म अपनाना होता था जिसे **सूफ़ी** मत कहा गया। काव्य, संगीत, नृत्य के माध्यम से सूफी संतों ने अपनी प्रेममयी वाणों को विभिन्न रागों में निबद्ध करके जनता में भी आपसी प्रेम व श्रद्धा का भाव पैदा किया।

सूफी सम्प्रदाय और उसके उपसम्प्रदाय अनेक हैं, जिनमें से चिश्तिया, कादिरिया, सुहरवर्दिया और नक्शवर्दिया प्रमुख हैं। सूफी संगीत को प्रचलित करने का श्रेय अधिकाशंतः चिश्तिया वर्ग को दिया जाता है। हजरत ख्वाज़ा मोइनुद्दीन चिश्ती, जो अजमेर के ख्वाजा/गरीब नवाज़ के नाम से प्रसिद्ध हैं, वह सर्वाधिक बुजुर्ग हैं। हदीस के विद्वान शेख अब्दुल हक मुहदिदस देहलवी ने अपने ग्रंथ 'अखबारूल– अखयार' में काजी हमीदुद्दीन नागौरी (जिनका संबंध शेख सुहरवर्दी से है) के वृतान्त में लिखा है कि उनके पंथ में वज्द (उन्मादना) और समाअ (सूफी भक्ति संगीत) दोनों बहुत प्रचलित थे। इनके पश्चात निजामुद्दीन औलिया ने भी इसे अपनाया और बहुत प्रचार किया। उस समय संगीत की मजलिसें चलती थीं, साधक प्रायः घूमते रहते थे। इस्लाम धर्म में प्राचीनकाल से ही दो वर्ग चलते रहे। एक इस्लामी कर्मकाण्ड के आलिमों का वर्ग, जिन्हें 'फकीह' कहते हैं, जो 'समाअ' को वर्जित ठहराता रहा। ये विद्वान लकीर के फकीर रहे। वे धर्म की मिथ्या रूढ़ियों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे परन्तु सूफी, धर्म की उन बातो से आगे बढ़ जाते, जो उनके अनुभवजन्य ज्ञान की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। इन्हीं कारणों से सूफियों और मुल्लाओं में सदैव बैर–भाव रहता आया है।

सूफी साधना के अन्तर्गत एक पारम्परिक चीज़ आती है, जिसे 'ज़िक्र' कहते हैं। साधारणतः इसे स्मरण, गुण–कथन, कीर्तन आदि कहा जा सकता है। 'जिक्र' सूफी साधना का एक अनिवार्य अंग है। 'ज़िक्र' करते–करते अलौकिक रहस्य में लीन होकर सुध–बुध खो देना ही सूफी सगीत की विशेषता है। कहा जा सकता है कि अहं रहित, उन्मनी अवस्था का संगीत ही सूफी संगीत है। सूफी सगीत के अन्तर्गत ईश्वर नाम–स्मरण, चिन्तन, कीर्तन आदि के अतिरिक्त इस्लाम के पाँच कर्तव्य भी अनिवार्य है, जिनमें कलमा, नमाज, रोजा, हज और जकात अर्थात दान प्रमुख हैं। जप व ध्यान के अतिरिक्त पीरों–मुर्शिद का भी गुणगान रहता है। सूफी संगीत में 'जिक्र' गेय रचनाओं के रूप में प्रयुक्त होता है, जिन्हें 'ज़िक्र–गीत' कहा जा सकता है। ज़िक्र गीतों का प्रचलन भारत में भक्ति आन्दोलन के बहुत पहले से रहा। जब हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों में घनिष्ठता बढ़ी तब ऐसी रचनाएं मिलने लगीं जिनमें वैष्णवों का भक्ति मार्ग, नाथ एवं सिद्धों का योग–मार्ग और सूफियों

Research Link - 74, Vol - IX (3), May - 2010, Page No. 142-144
RNI No. MPHIN/2002/7041, ISSN No. 0973-1628

सौन्दर्य दर्शन - एक सांगीतिक दृष्टि

प्रस्तुत शोधपत्र में सांगीतिक दृष्टि से सौन्दर्य दर्शन को लेकर विचार किया गया है। सौन्दर्य का अनुभव व्यापक और महत्वपूर्ण है। सौन्दर्य से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे 'रस' कहा गया है। भरतमुनि ने सौन्दर्य को मानव जीवन के अति निकट बताया है। उन्होंने कुछ इस तरह से, और इतना सूक्ष्म अध्ययन, चिंतन और सिद्धांत दिये हैं, जिसे पाश्चात्य सौन्दर्य दर्शन भी स्वीकार करता है। हीगेल ने भी सौन्दर्य शास्त्र को ललित कलाओं के दर्शन के रूप में स्वीकार किया है। दरअसल बोसांके के अनुसार सौन्दर्य शास्त्र, सुन्दर का दर्शन है और सुन्दर आनन्द देता है।

श्रीमती रोमा अरोरा

संभवतः जीवन के साथ ही जीव में आनन्द की भावना भी जागृत हुई अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि आनंद की भावना से ही जीवन का आविर्भाव हुआ।

शैशवावस्था में देखा गया सौन्दर्य, प्रौढ़ होते-होते बदल जाता है। शिशु का अनुभव सरल व शुद्ध होता है उसमें किशोर के स्वप्न, युवावस्था की वासना और वृद्ध की दार्शनिकता का मिश्रण नहीं होता।

इसके पश्चात् जीवन की जटिलता के साथ ही, वस्तु के गुणों और आकारों के अनुभव में एक व्यञ्जकता का आविर्भाव होता है। प्रत्येक ध्वनि, रंग, रेखा और उनके आकारों का आध्यात्मिक अर्थ निकलने लगता है। किसी से शीतलता, किसी से गंभीरता, किसी से उल्लास, माधुर्य प्रेम आदि का अनुभव होने लगता है। इसी प्रकार संगीत ध्वनि से भी प्रेम, वैराग्य, वीरता आदि का अनुभव होने लगता है।

सौन्दर्य का अनुभव व्यापक और महत्वपूर्ण है। इससे हृदय सरस और जीवन उर्वर होता है। बुद्धि को नवीन चेतना और कल्पना की सजीवता प्राप्त होती है। सौन्दर्य से जो आनंद उत्पन्न होता है, उसे हम 'रस' कहते हैं कोई वस्तु स्वतः सुन्दर नहीं होती जब तक आनंद का अनुभव नहीं है, और आनंद तक तब नहीं है जब तक वस्तु सुन्दर नहीं होती। सुन्दर वस्तु मूर्तिमती अनुभूति है, और अनुभूति स्वयं वस्तु के सौन्दर्य से स्वरूप पाती है।[1]

महर्षि भरत के अनुसार हम जिस अनुभव विशेष को 'रस' कहते हैं, उसका हमारे मानवीय जीवन से निकटतम् संबंध है, और जीवन का वह भाग, जिससे 'रस' का संबंध है, वह हमारी कामनाएं, वासनाएं अथवा पशु-प्रवृत्तियाँ हैं, जो हमारे मन में नित्य अनुस्यूत रहती हैं।

भरत ने 'रस' के मूल की गवेषणा करने में जिन स्थाई प्रवृतियों का पता लगाया, उन्हें आज का पाश्चात्य सौन्द्रर्य दर्शन स्वीकार करता है। सौन्दर्यशास्त्र अथवा नन्दनशास्त्र के दार्शनिक दृष्टिकोण को देखें तो स्पष्ट होता है कि हीगेल ने सौन्दर्यशास्त्र को ललित कलाओं के दर्शन के रूप में स्वीकार किया है। बोसांके के अनुसार सौन्दर्यशास्त्र सुन्दर का दर्शन है।[2]

सौन्दर्यशास्त्र का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसे दर्शन का अंग मात्र मानना अथवा मनोविज्ञान के अंग – रूप में स्वीकार करना समीचीन नहीं है।

भारतीय विचारकों ने सौन्दर्यशास्त्र के संबंध में जो विचार व्यक्त किये है, वे बहुत कुछ पाश्चात्य विचारकों के विचारों पर ही आश्रित हैं, उनमें मौलिकता नहीं है। के.एस. रामस्वामी के अनुसार सौन्दर्यशास्त्र, कला में अभिव्यक्त सौन्दर्य विज्ञान है।[3] इस विचार पर क्रोचे का प्रभाव स्पष्ट है। डॉ. कान्तिचन्द्र पाण्डेय के अनुसार सौन्दर्यशास्त्र ललित कलाओं का विज्ञान और दर्शन है।[4] उन्होंने क्रोचे और हीगेल के मतों को मिला दिया है। पाश्चात्य जगत में सौन्दर्यशास्त्र का विकास कलाओं के दर्शन के रूप में हुआ है और बहुत दिनों तक यह दर्शनशास्त्र का भी अंग रहा है। बाउमगार्टेन ने इसे दर्शनशास्त्र के बंधन से मुक्त कराकर स्वतंत्र शास्त्र के रूप में प्रतिस्थापित किया। इतना होते हुये भी यह दर्शन के प्रभाव से मुक्त नहीं हुआ है। हॉं, इतना अवश्य है कि 20वीं शताब्दी में आकर यह बहुत अधिक व्यापक हो गया है और सभी प्रकार के कला – रूप इसकी विवेचना के विषय हो गये है।

सौन्दर्य तत्व को भारतीय दर्शन में 'रस' कहा गया है। स्पष्ट शब्दों में इसे आत्मा और आनंद का समानार्थक मान लिया है। मेरे विचार से जब हम 'रास का दर्शन' की बात करते है, तो कला के प्रमुख तत्वों पर दृष्टि डालनी आवश्यक हो जाती है। ऐसी स्थिति में कला के संवेगात्मक मूलक संवेगात्मक' तत्व पर चर्चा करनी भी आवश्यक होती है, क्योंकि सौन्दर्य संवेगात्मक तत्व है, हमारा आनंद

वरिष्ठ प्रवक्ता, संगीत (गायन), राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, फैजाबाद (उत्तरप्रदेश)

पाश्चात्त्य देशों में भारतीय शास्त्रीय संगीत

□ (श्रीमती) रोमा अरोरा

हमारा देश भारत, अध्यात्म-प्रधान देश रहा है। भारतीय संस्कृति की आत्मा आध्यात्मिक स्वर एवं धार्मिक अभिव्यंजना से अनुप्राणित रही है। आध्यात्मिक विकास भारतीय जीवन का लक्ष्य सहस्राब्दियों से रहा है। भारतीय संस्कृति का अध्यात्म केवल एक ही व्यक्ति की गवेषण-चेष्टा नहीं, वरन् विश्व में व्याप्त सामूहिक समष्टिगत आत्मा की खोज है।

भारतीय संगीत सदैव एक विशेष भावना पर केन्द्रित रहता है और अपने सुरों के माध्यम से संगीतकार उसी भाव को विकसित कर व्याख्यायित एवं संपोषित करता है।

भारतीय संगीत अति प्राचीन काल से अपनी बौद्धिक एवं कलात्मक उत्कृष्टताओं के कारण जिज्ञासा एवं रुचि का विषय रहा है। संगीत भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग होने के कारण वह अपनी आध्यात्मिकता; सहजता एवं भाव-प्रवणता से समय-समय पर पाश्चात्त्य विद्वानों को आकर्षित करता रहा है। भारतीय संगीत, साहित्य और कला, देश की सीमाओं को नहीं मानते।

'पाश्चात्त्य देशों में भारतीय शास्त्रीय संगीत' विषय पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि ब्रिटिश शासन-काल में जब विद्वानों ने भारतीय दर्शन में रुचि ली, तब संगीत को भी अछूता नहीं छोड़ा।

19वीं सदी के प्रारम्भ में बाँदा रियासत के नवाब की सेना में नियुक्त विदेशी अधिकारी कैप्टिन विलर्ड को भारतीय संगीत से गहरा लगाव था। उनका पूरा नाम कैप्टिन ऐन0 ऑगस्टस विलर्ड था। उन्होंने दरबारी संगीतज्ञों एवं कलाकारों से प्रत्यक्ष सम्पर्क कर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का गहन अध्ययन किया और इस प्रकार भारतीय संगीत को गहराई से आत्मसात् किया। इस आधार पर उन्होंने अँग्रेज़ी में एक ग्रन्थ लिखा, जिसका नाम है—'Music of Hindustan'। इस ग्रन्थ में समग्र भारतवर्ष की संस्कृति की झलक मिलती है, जो वस्तुतः बहुमूल्य सांस्कृतिक धरोहर है।

बड़ौदा के सूफ़ी सन्त-संगीतज्ञ हज़रत इनायत ख़ाँ ने 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पाश्चात्त्य देशों में भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार-हेतु विशेष प्रयास किया। यद्यपि यह कार्य उस समय अत्यन्त दुष्कर था, क्योंकि भारतीय संगीत को केवल लोक-संगीत का दर्जा प्राप्त था। सन् 1911 से 1925 तक उन्होंने वहाँ अपने भाइयों के साथ रहकर अनेक शास्त्रीय कार्यक्रम तथा वार्तामालाएँ प्रस्तुत कीं। उनका कार्य-क्षेत्र बहुत विशद था। तत्कालीन राजनीतिक स्थिति को देखते हुए यह अत्यन्त सफल कार्य था।

सन् 1925 से 1935 के दशक में पं0 उदयशंकर का नाम उल्लेखनीय रहा।

देश की स्वतन्त्रता के उपरान्त जब राजनीतिक स्थिरता आई तो भारत में संगीत का विशेष विकास हुआ। सन् 1960 के आस-पास पाश्चात्त्य जगत् में भारतीय संगीत का ज्वार-भाटा-सा आया, जोकि समय के साथ-साथ परिपक्व होते हुए आज पाश्चात्त्य समाज में सम्माननीय स्थान प्राप्त कर चुका है। इस संघर्षपूर्ण सफल प्रयास में पं0 रविशंकर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शनैः-शनैः ही सही, परन्तु पाश्चात्त्य युवा पीढ़ी ने उनके संगीत में विशेष रुचि दिखाई। तत्कालीन युवा पीढ़ी हिप्पी-आन्दोलन से प्रभावित थी, जिन्होंने

वैश्विक महामारी: तनाव प्रबन्धन में संगीत-योग

डॉ. रोमा अरोरा, एसोसिएट प्रोफेसर,अध्यक्ष संगीत विभाग,
राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, अयोध्या (उ.प्र.)

आज की तनाव पूर्ण जीवन शैली के असन्तुलन को सन्तुलित करने में सबसे अधिक प्रभावशाली एवं सशक्त माध्यम भारतीय संगीत है; ऐसा कहना अतिश्योक्ति न होगा। स्वामी विवेकानंद जी के शब्दों को अनुवाद रूप में उद्धृत करना चाहूंगी, जो स्वयं भी एक प्रशिक्षित गायक थे और उस्ताद अहमद खां के शिष्य "संगीत का मनुष्य के मन पर इतना प्रबल प्रभाव है कि क्षण भर में वह मन को एकाग्र चित्त कर देता है। आप देखेंगे कि मन्द बुद्धि, अज्ञान, नीच, पाशविक वृत्ति के लोग, जो अपने चित्त को क्षण भर के लिए भी स्थिर नहीं रख सकते,आकर्षक संगीत सुनने पर तुरंत सम्मोहित हो एकाग्र चित्त हो जाते हैं।"

संगीत द्वारा अस्वस्थता व मानसिक असंतुलन के उपचार भारतीय मनीषियों को भलीभाँति विदित था। अतःसंगीत द्वारा रोगों की उपचार प्रक्रिया भारत में प्राचीन काल से चली आ रही है किन्तु दुर्भाग्य वश भारतवासी जब तक किसी विज्ञान, अवधारणा आदि को पाश्चात्य चोला नहीं पहनाते, तब तक उसे मान्यता नहीं देते।

यह सर्वज्ञ है कि संगीत और योग समानांतर ही हैं। जिस प्रकार योग एक विज्ञान है उसी प्रकार संगीत एक वैज्ञानिक यौगिक क्रिया है। योग से हम शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हैं। संगीत के प्रधान होने के कारण हम उसके प्रयोग से स्वयं को ही नहीं अपितु किसी अस्थिर, असंतुलित प्राणी को स्वस्थ व एकाग्रचित्त कर सकते हैं। संगीत और योग के रूप में भारत ने, विश्व को विशिष्ट उपहार दिया

संगीत का वैज्ञानिक आधार है क्योंकि संगीत मस्तिष्क और नाडिग्यो को शान्त करता है,मानव शरीर समस्त प्रणालियों .और अवयवों को शक्ति व स्फूर्ति देता है और मन को सक्रिय करता है। स्नायुओं में सुख की भातिं मधुर स्पन्दन का संचार करता है। एक महत्वपूर्ण बात मैं अवश्य कहना चाहूगी कि इस का सांगीतिक सुख, स्पन्दन, एकाग्रता, शान्त मन, ये सब भारतीय संगीत में ही संभव है

पार्श्वगायन की विकास यात्रा

रोमा अरोड़ा

यह अटूट सत्य है कि समस्त ब्रह्माण्ड संगीतमय है क्योंकि सर्वप्रथम ब्रह्मा के हृदय का उल्लास ही गीत बनकर ब्रह्माण्ड में गूंजा और सृष्टि की रचना हुई। धरती रची, आसमान रचा, सूरज, चाँद, सितारे, नदी, पर्वत, झरने———कितना कुछ रच डाला। समस्त ब्रह्माण्ड स्वर व लयबद्ध हो गया। महासागरों के ध्रुपद, झरने के ख्याल, नदियों की रागिनी, हवा की ठुमरी, कोयल का पंचम, चिड़ियों के तराने———सृष्टि का कण–कण संगीत में डूब गया। संगीत के नाद में सृष्टि के सारे रंग समाहित हो गए। जीवन की प्रत्येक अनुभूति में संगीत निहित हो गया। सृष्टि के चारो ओर जो भी घटित हो रहा है, वह सब संगीतमय है। समस्त सौरमंडल को यदि हम वाद्यवृंद (Orchestra) कहें तो अतिश्योक्ति न होगी। इसी प्रकृति के पार्श्व संगीत ने मनुष्य को प्रेरित किया, और अन्य कलाओं का भी उदय हो गया।

विषयानुसार सर्वप्रथम प्रश्न होता है कि भारतीय सिनेमा में आज जो पार्श्वगायन का प्रारूप है–वह कहाँ से आया? जिसमें फिल्म की कहानी के साथ गाने गाए जाते हैं।

यह सर्वज्ञ है कि गीत–संगीत, संस्कृत–नाट्य परंपरा का अभिन्न अंग है। 20वीं सदी में जब सिनेमा गतिशील हो रहा था तब भारत में नाट्य उपलब्ध था। मुंबई में जहां पारसी थियेटर और मराठी रंगमंच अपनी संगीतमय प्रस्तुतियों से जनता का हृदय जीत रहा था, वही बंगाल में 'जात्रा' का प्रचलन था। बहुत बाद में 'साउंड' आई, तो नए प्रारूप की प्रेरणा–यही संगीतमय नाट्य बने। यही नहीं, रंगमंच के इन रूपों में काम कर रहे कलाकारों को भी एक नया आयाम मिला।

भक्तिकालीन कवियों की संगीत द्वारा ईश उपासना

श्रीमती रोमा अरोरा
शोध प्रयोजन, संगीत विभाग
राजा मोहन गर्ल्स पी०जी० कालेज
फैजाबाद

जीवन का परम साध्य है - अखंड आनन्द, जिसकी प्राप्ति का सुख ही मोक्ष है मोक्ष धाम पहुँचने का सबसे सरल माध्यम अथवा मार्ग है 'भक्ति'। भक्ति आर्य-संस्कृति का मूल है। वैदिक काल से लेकर आज तक इस पर विस्तृत रूप से विचार हुआ है। यह कभी साहित्यिक और कभी आध्यात्मिक दृष्टि से विद्वानों की आलोचना कभी प्रत्यालोचना का विषय रही है। साहित्यिक क्षेत्र में तो भक्ति से संबंधित अनेक मत-मतान्त हैं, परन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में इसकी श्रेष्ठता और महत्ता निर्विवाद है, बल्कि आध्यात्मिक क्षेत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धियां ही साहित्यकारों के लिए भी आकर्षण केन्द्र बनी और अन्त में रसशास्त्र में इन्हे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। 'नारदीय भक्तिसूत्र' के अनुसार

अथातो भक्ति व्याख्या स्यामः। सा त्वस्मिन परमप्रेमरूपा ॥

अर्थात् भक्ति परम प्रेम-रूप है। 'शाण्डिल्य भक्तिसूत्र' के अनुसार ईश्वर में अनुरक्ति ही भक्ति है - अथातो भक्ति जिज्ञासा, - सा परनुरक्तिरीश्वरे।

अस्तु देवर्षि नारद ने भक्तिसूत्र में भक्ति को ज्ञान, कर्म, योग से अधिक श्रेयस्कर बताया है।1 क्योंकि शरणागति से भगवत् भक्ति और भगवत् कृपा से ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है। भक्ति आर्य संस्कृति का मूल है किन्तु भक्ति संगीत का प्राचीन ग्रन्थ 'सामवेद' है। वैदिक काल में पंचभूत आत्मा अग्नि तथा नक्षत्रों की पूजा करने का विधान था, अतः वेदों में लिखे गये श्लोकों के वर्ण्य विषय भी इन्हीं आराधना से सम्बद्ध है। संभवतः संगीत की महत्ता को स्वीकार करने के कारण ही इन स्तुतिपरक मंत्रों को संगीतात्मक स्वरूप प्रदान किया गया होगा। 'सामवेद' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसे उपासना काण्ड का वेद कहा जाता है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने वेदों में संगीताधिकारी 'सामवेद' को अपना ही स्वरूप बताया है।2

आत्मचेतना की जागृति के लिए स्वर साधना से मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव होता है। मानव जीवन का चरम लक्ष्य 'मोक्ष', 'आत्मसाक्षात्कार', अथवा 'ईश्वर-सानिध्य' प्राप्त करना माना गया है।3 आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में संगीत का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

प्रागवैदिक एवं वैदिक काल में संगीत में उपलब्ध भगवदाराधना का उदात्त व दिव्य भाव सर्वत्र व्याप्त था। मुगलकाल में मुसलमानों की प्रवृत्तियों और भावनाओं में परिवर्तन होने के कारण संगीत के दिव्यत्व का ह्रास होनेलगा। ऐसे समय में भारतीय ज्ञानदारा के प्रहरी साधु-सन्त और सन्यासियों ने यथार्थरूपेण आत्म-बलिदान करके धरोहरों की रक्षा की, जिससे देश में नई जागृति उत्पन्न हुई।

ईसा की चौदहवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी में अनेक ईश्वर भक्त संत-संगीतज्ञों ने जन्म लिया। इस काल में भक्ति आन्दोलन अपने चरम उत्कर्ष पर था। इसी समय पूर्ण संत भक्ति, प्रेममार्गी, सूफी भक्ति, प्रेमलक्षणा कृष्ण भक्ति तथा मर्यादा मार्गी-राम भक्ति

56.

"रागों एवं तालों के अप्रचलित प्रकार"

श्रीमती रोमा अरोरा

'अप्रचलित' अर्थात् अछोप'। संगीत के क्षेत्र में 'अछोप' का संबंध अप्रचलित से जोड़तें है। यद्यपि इन दोंनों शब्दों का अर्थ ही लगता है किन्तु सूक्ष्मता से देखने पर दोनों में अंतर स्पष्ट किया जा सकता है। 'अप्रचलित' का शाब्दिक अर्थ है-'जो प्रचार में नहीं है'। 'अछोप' का शाब्दिक अर्थ शब्द कोष में-'नंगा, तुच्छ, नीच'[1] है। वास्तव में यह तथ्य विचारणीय है, परन्तु इस भ्रान्ति को सुलझाने के लिए सर्वप्रथम हम यहाँ यह विचार करेगें कि क्या प्रचलित राग-ताल कुछ समय बाद अप्रचलित हो जाते है या किसी खास कोटि के राग-तालों को अप्रचलित कहा जाता हैं।

मेरे विचार से जिन रागों का क्षेत्र सीमित होता है तथा जिनके संकीर्ण स्वरूप से कारण मधुरता एवं राग गायकी में सहजता का अभाव रहता है, ऐसे राग अपने रचनाकाल में ही अप्रचलित बने रहते है। जैसे-भंखार, मेघरंजनी, देवरंजनी, षट् इत्यादि। इस प्रकार ऐसे राग जो परम्परागत शास्त्रीय नियमों का तिरस्कार करते हैं अछोप रागों की कोटि में आते है। परम्परावादी विद्वान ऐसे रागों को अछूत मानते है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि पूर्वोत्तर भारत के मिथिला क्षेत्र में शूद्र को साधारण भाषा में 'अछूत' या 'अछोप' ही कहा जाता है।[2] इसके अतिरिक्त मालकौंस, कल्याण, भैरव, तोड़ी, बिहाग, बसन्त, दरबारी, इत्यादि राग सर्वगुणसम्पन्न होने के कारण सैकड़ों वर्षो से प्रचलित रागों की श्रेणी में गिने जाते है तथा भविष्य में भी प्रचलित बने रहेगें। वर्तमान के राग कलावती, भीम, गोरखकल्याण प्रचार में अधिक है, परन्तु हम इन्हें कल्याण, भैरव आदि की श्रेणी में नही रख सकते, क्योंकि कलावती इत्यादि राग, संगीतज्ञों के एक खास वर्ग में प्रचलित है, और कल्याण, भैरव इत्यादि राग सैकड़ों वर्षो से सर्वसाधारण से लेकर संगीत के उत्तम कलाकारों में

---

1. संपादक : कालिका प्रसाद : वृहत् हिन्दो कोष, पृ. 24
2. पं रामाश्रय, संगीत : अप्रचलित राग-ताल अंक (जनवरी-फरवरी 1983) पृ. 24

Shodh Drishti (An International Peer Reviewed Refereed Research Journal)
Vol. 15, No. 12 1, December 2024

Impact Factor : 7.0
ISSN : 0976-6650

Khushwant Singh and Depiction of Cynicism and Savagery Generated by the Atrocities during the Partition of India and Pakistan

Dr. Kavita Singh
Associate Professor, Dept. of English, Raja Mohan Girls P.G. College, Faizabad, Ayodhya

Abstract

Khushwant Singh, Sikh novelist, Journalist and diplomat, is one of the new wave of young Indian novelists to emerge after independence in 1947. His novels and short stories express a sophisticated attitude to the life of India. He represents the younger generation of Indian writers whose literary careers have grown entirely since 1947 in an atmosphere free from British rule and the tension of nationalish revolt. Sophistication implies the ability to explore the truth and to face the truth fearlessly, the ability to be satirical and critical towards India and the freedom struggle. It means too the shifting of interest noted by R.K. Narayan from public to private life, from political to psychological analysis. Khushwant Singh turns a relentless eyes on complex reactions to such catastrophes as the second World War and bloody partition of India and Pakistan.

Keywords : Independence, sophisticated, nationalish revolt, satirical, critical, freedom struggle partition, political, psychological, relentless.

Aim of the Study

Is to depict the atrocities shown at the time of Partition of India and Pakistan. It throws light on cynicism and savagery committed on both sides during the partition of India and Pakistan in 1947. It will illustrates how Khushwant Singh presents three events with detachment and objectivity.

Introduction

Khushwant Singh is not inclined to flatter or to romanticize the events of partition of India and the cruelty shown at the time. He has produced a couple of novels, some short stories, criticism and a book on the history of the Sikhs. The life of his own people, the religious, an ethnic community of Sikhs in Punjab, provides a consistent thread through his work. His outlook to Sikh and Sikhism also illustrates his sophistication in its combination of sympathy with criticism. [1]

'Train to Pakistan' (1956). Singh's first novel, reflects the barbarism during the partition of sub-continent between India and Pakistan in 1947.

The novel is placed in a village which Singh calls Mano Majra situated exactly on the Pakistan-India border in the monsoon season on 1947. The village is a railway Junction. Otherwise, it has no political and military importance. Its population of Sikhs and Muslims, landlords and tenant farmers, live in easy comradeship.

The only violence is from decoits and the novel opens with a decoit raid on the village moneylender. The relative placidity of Mano Majra is soon disturbed by violence on a much greater scale. Two trainloads of multilated corpses reveal to the horrified villagers that the Sikhs and Hindus are being massacred in Pakistan.[2] The Muslims of the village are rounded up and evacuated for their own safety and the Sikhs promise to look after their property. But the atmosphere of solidarity has been destroyed. Sikh soldiers hand over the Muslim's property to decoits; and a young Sikh fanatic organises a revenge raid on a refugee train bound for Pakistan.

2:29 Vo WiFi 67%
ems_resear...
nazonaws.com

सामाजिक चिन्तन (ISSN 2348-2222): An International Peer-reviewed Refereed Research Journal **Pub. by:** SARDI, Vns, U.P. (INDIA)
Impact Factor : 5.540, Vol. XI, No. XXII, **July- December** 2024, Page No. 17-18

K.S. Venkataramani : Gandhian Economics and Politics

Dr. Kavita Singh*
*Associate Professor, Raja Mohan Girls P.G. College, Faizabad, Ayodhya

Abstract : K.S. Venkataramani is perhaps the earliest novelist to have come under the magic spell of Gandhian ideology. His novels, Murugan the Tiller (1927) and Kandan the Patriot (1932) deal with Gandhian economics and Gandhian politics respectively. Murugan the Tiller is a novel of Indian rural life. It is a fervent plea for the return to the village. Murugan, from whom the novel takes its name, is a humble, sincere tiller of Ramachandran's ancestral land.

Keywords : Gandhian, Economics, Politics, Rural life, Fervent, Village etc.

Introduction : Ramachandran (Ramu) fails twice in the B.A. examination and comes back to his village Alvanti. His wife and mother-in-law, however, keep on trying to wean him away from the dull and dreary life of the village. Floods aggravate the situation and Ramachandran goes back to the town and becomes a clerk. Events in the meanwhile transpire in such a way that Murugan becomes the master of Ramachandran's land. Falling on evil ways Murugan becomes a dacoit and is arrested along with his gang by Ramachandran who by now has become Police Chief on special duty. Ramachandran takes permission from the Government to reform the criminals. With their help he reclaims the barren land, builds a dam and starts a model community with three acre holdings each. The three acre holding brings him so much peace and contentment that Ramachandran rejects even collectorship.

Though Murugan remains in the background, he greatly influences Ramachandran's outlook on life. "Ramu saw the simple world of the starving millions through the strange, hollow, rattling eyes, and trusty and loyal soul of Murugan."[1] Ramu finds Murugan's words full of wisdom, clarity and piety. He is impressed by his lack of ambition and dislike for town life. Murugan is regarded as the "first instalment of Ramu" even by the local people. In the true Gandhian spirit Murugan tells Thoppai that evil is in the system and not in the man. It is only the system that makes one exploit the other.

Like Murugan's Ramachandran also hates the sin, but not the sinner. He is a great reformer. Talking about the robbers he tells his boss, Mr. Cadell that hunger is the root cause of all evils. Like Gandhi he is a champion of female education and looks forward to 'swaraj' for fulfilling his ambition. The impact of Gandhian ideology is evident when he finds urbanization being depicted as the main source of social and economic evils. The author finds fault with the existing system where one in ten lives upon the rest of the nine and where 'simple living and high thinking' exists no more.

Ramu seems to be modelled on Gandhi though Gandhi is not at all brought into the picture, perhaps because of the conditions prevailing at that time. He advocates agrarian economy for India. His plan of transforming the robbers into farmers by getting everyone a three acre holding reminds us of the Tolstoy Farm, set up by Gandhi in South Africa. He preaches truth in thought, word and deed. Displaying his firm faith in Gandhian principle of non-violence, he says, "The purest deed is the one that never compels another to act."[2] Again, like Gandhi he advocates action without the desire for reward and tells Kedari, his friend that simplicity is the essence of a happy life. "Mind-power which has no roots in moral and humane ideals, in character and simplicity, is combustible and self-destructive. It will destroy others and itself. There must be a change."[3] In the same vein he regards brain power as a good servant, but a bad master and advocates spinning both as a means of earning and a source of peace of mind. Gandhian plea for return to the village is amply illustrated in not only Ramu's but even Kedari's acceptance of the village life. The novel is in fact a treatise on Gandhian economics and the entire locale pervades with experimentation, elucidation and popularization of Gandhian economics. Venkataramani dedicates **Kandan the Patriot (1932)** to "the unknown volunteer in India's fight for freedom". He describes it as new India in the making and gives a graphic picture of the Gandhian Age without introducing Gandhi personally. In the words of Prof. K.S. Srinivasa Iyengar the novel depicts the "excitement of a modern Heroic age with Gandhiji making men out of clay and heroes out of common humanity."[4] The novel reverberates with the battle cries of Civil Disobedience, prohibition, 'swaraj' and 'satyagraha'. It is, in fact, the first attempt to judge the practicability and application of Gandhian ideology in the field of politics. Kandan gives up the I.C.S. because of his disappointment in love as Rajeshwari (Rajee) prefers Rangan to Kandan. He comes to his village Tillayadi instead of going to Natal, the place where he was born and where his father had left him a home and beautiful orchards. His father, Nallappan, was the first of the followers of Mahatma Gandhi and the very man who played quite an important

supporting...
nazonaws.com

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

Impact Factor : 5.01
Vol. : XI, No. I,
November, 2024-April 2025
Pg. No. 33-35

Sigfried Sassoun and His Anti - War Sentiments

Dr. Kavita Singh*

*Associate Professor of English, Raja Mohan Girls P.G.College, Ayodhya U.P.

Abstract : Siegfried Sassoon was one of the prominent English war poets who is known for his anti-war sentiments. Unlike Georgian poets he looked upon war as an evil and exposed the seamy side of war.As he himself was a soldier he saw and suffered the drudgeries of a soldier's life in trenches. He was an English war poet, writer and soldier. He was one of the leading poets of the first world war who presented the horror of war and scoffed at the false patriotic feelings of those soldiers who stare in the face of war with bravery and enthusiasm without a tinge of fear or odd.He was pitched forked into the trenches, from a well-to-do background of culture and sportsmanship. For Sassoon war was one of the grimmest and most brutalising types of conflict man had ever had to endure. Hencehe found all the glories attached to it shattered to pieces.

Keywords - anti-war, pitch-forked, drudgeries, slaughtered, misery, brutalising, pathetic, grimmest, shattered.

Introduction : In the early months of the war, Sassoon served as an officer but being invalid he resigned his commission and for a time conducted a propagandist campaign. His poetic temperament reacted rebelliously against the cruelty and senselessness of war, and found its most ample expression in his verses. The pathetic feelings for the slaughtered youth and a sense of misery springing from survivors shattered in mind and body became a burden that he could hardly endure. His reaction was to pitchfork the true vocabulary, implements and events of trench war into poetry.

In general his mood was to convey the bitter truth. He was out to tear off any mask from the ugly face of reality as well as to wreak his anger on the heartless and the hypocrites. Much of his anger is directed against the pointlessness of war and against the senior officers who did not seem to realise the death and destruction at the front: Nichols had not failed to convey the horrorofthe battlefield but by Sassoon a more varied scene was drawn more vividly in detail that could leave none unaware, not merely of the guns and the slaughter but of the unwholesome air, the rotten naked corpses, the mud and the rats, the wiring parties in the darkness, the foul dugouts, the mutilated and nerve-shattered survivors, the agony and ignominy of death.[1]

In the early days of the war Sassoon dwelt in the world of romantic fantasy and, like Ralph Hodgson, sang of courage, heart and will / And gladness in a fight / of men who face a hopeless hill / with sparking and delight. His earliest war pieces do not lack a sober sense of heroism; they exhale heroic fervour and seem to be steeped in romanticism like poems of Brooke and Grenfell:

Everyone suddenly burst outsinging
And I was filled with such delight
As prisoned birds must find in freedom
Wildly winging across the white orchards and
dark green fields, on, on, and out of sight.
Everyone's voice was suddenly lifted
And beauty came like the setting sun
My heart was shaken with tears and horror
Drifted away... O, but everyone
Was a bird; and the song was wordless.
The singing will never be done.
(Everyone Sang)

But gradually the emphasis shifted away from the 'heroic' and the glamour of war as high adventures ceased to operate. Sassoon was moved by the horror and the gruesomeness of the slaughter in the trenches. His poetic sensibility was deeply touched, and consequently we find a different atmosphere when we enter the field of his later poems. There is no looking back to 1914 and the glamour of the old poetic tradition:

When I'm asleep, dreaming and lulled and warm –

They come, the homeless ones, the noiseless dead.
While the dim charging breakers of the storm

2:30
supporting...
nazonaws.com

Shodh Drishti (An International Peer Reviewed Refereed Research Journal)
Vol. 16, No. 3.1, March 2025

Impact Factor : 7.0
ISSN : 0976-6650

Odour of Gandhian Ideology in the Novels of Bhabani Bhattacharya

Dr. Kavita Singh
Associate Prof., Dept. of English, Raja Mohan Girls P.G. College, Ayodhya

Abstract

All the novels written by Bhabani Bhattacharya deal with some contemporary problems or the other because he believes that a novelist can always find plenty of material in the happenings of the day. This is particularly true of our country which has passed and is still passing through a very significant phase in her history. Though some critics are of the opinion that writing about the contemporary events may give a journalistic touch to a piece of writing, Bhattacharya feels otherwise. He says that an immediate and acute problem of the time does bring about a spontaneous reaction in the creative artist and this may result in an excellent, realistic piece of fiction, emanating from inner compulsion. Bhabani Bhattacharya's first novel, 'So Many Hungers'(1947) was published two months later after India attained freedom. The hunger for food and for freedom is the main theme of the novel. Blessed with a well-developed sensibility, Bhattacharya could not remain unaffected by the epoch-making events of the country. The emotional stirrings he felt were a sheer compulsion to creativity. Consequently, the Bengal Famine of 1943 and the Quit India Movement 1942 play a very prominent role in the novel. There are two main strands of plot, the young scientist Rahoul and his family, representing in miniature the struggle for freedom and the poor Kajoli and her family, depicting the sad tale of millions of people who became victim of a man-made hunger. Non-violence, Role of women, Ahimsa, fearlessness, social reawakening all these philosophies of Gandhi Ji are reflected in the novels of Bhabani Bhattacharya.

Keywords : Realistic, sensibility, emotional stirrings, Bengal Famine, Quit India Movement, struggle for freedom, man-made hunger, non-violence, Ahimsa, fearlessness, role of women.

Aim of the study

This article aims at depicting Gandhian philosophy in the novels of Bhabani Bhattacharya who was highly influenced by Gandhi Ji and his theories.

Introduction

In 'So many Hungers' Rahoul wants to join the Struggle for Freedom but he refrains from active participation and gives the impression to the British of working on some phenomenal discovery. His brother, Kunal, joins the army and is declared missing in the end. His father, Samarendra Basu, is a greedy hoarder. His grandfather, Devendra Basu, is a Gandhian character in the real sense of the term. He is a true patriot and has immense love for the common man. He is known as 'Devata' because the people of the village love and revere him a lot. Rahoul is deeply influenced by him and had consulted him when his father wanted to send him to Cambridge to avoid his getting involved in the struggle for freedom. His grandfather had unhesitatingly told him that the call off the country came first.

Devata is especially fond of a peasant family, consisting of a peasant, his wife and three children. The peasant and the elder boy, Kanu, are in prison for their participation in the Civil Disobedience Movement. Devata often visits the wife whom he treats as his daughter Kajoli, the daughter of the peasant as well as the heroine of the novel and youngest son Onu. He gives advice and guidance to the villagers and advises them to be non-violent. When they join the national movement Devata himself has been in prison and had exhorted the people before being taken away, "The supreme test has come. Be strong, be true, be deathless."[1] He even undertakes a fast in the prison when the Quit India Movement is at its height. Height

Though initially Rahoul's participation is indirect, his heart is with the people of the country whether fighting for their freedom or suffering in the feminine- stricke Bengal. When

students in enlarge numbers join the Quit India Movement, he feels that it is his duty to be with them. He consults his grandfather who is in prison. Dehra Dun and joins the movement indirectly and is taken to prison. The novel closes with the people seeking imprisonment voluntarily.

Review of Literature

Various literature on Gandhian philosophy has been studied to write this article. Bhattacharya is very critical of the British administration and their apathetic attitude to the

31 67%
supporting...
nazonaws.com

Research Discourse (ISSN 2277-2014) : An International Peer-reviewed Refereed Research Journal, Published by : SARDI, Varanasi, U.P. (INDIA)
Indexed by : IIJIF, I2OR, SJIF, IIJ Impact Factor : 7.680, Vol. XV, No. 1, January-March 2025, Page No. 111-112

Yashpal's Divya : Motives of Man and the Dynamics of His World

Dr. Kavita Singh*
*Associate Professor, Department of English, Raja Mohan Girls P.G. College, Faizabad, Ayodhya

Abstract : When Yashpal wrote Divya in 1945, he had already published two novels, five collections of short stories, two collections of socio-economic essays, a book on the basic tenets of Marxism and one of his best known works 'Gandhivad ki Shav-Pariksha' (Post-mortem on Gandhism). It was an impressive performance for a writer whose first book had been published only seven years previously, and even more creditable for one who had been released from prison in 1938 after serving seven years of a life sentence. When Yashpal began writing 'Divya' one of his motives may well have been to write about a different world, that of the remote past, a world away from the one he was familiar with. Although the world he has chosen to write about was perhaps not greatly different from the society in which he lived in terms of conflict, strife and oppression, in its portrayal he was free to exercise his imagination, and not simply to limit himself to the realities of contemporary society.

Keywords : Socio-economic, Tenets, Marxism, Economic, Gandhism, Post-mortem, Creditable, Motives, Familiar, Conflict, Strife, Oppression.

Introduction : Yashpal was fascinated by that period in the history of Ancient India known as the Classical Age. In each of his sixteen collections of short stories, there is at least one tale about that era in a language and style similar to that of Divya. Yashpal's novel based on historical imaginings, Amita (1956) in about Ashoka the Great's conquest of Kalinga, circa 260 BC, the conqueror's change of heart and his subsequent conversion to Buddhism. The novella 'Apsara ka Shap' (1965), a retelling of Kalidasa's Abhijnana Shakuntalam, is a tale from the Epic Age (c. 900–520 BC). [1]

Since its publication more than sixty years ago, Divya has had a checkered history, not dissimilar to the tumultuous story of its eponymous heroine. Assertions by Divya such as "the mistress of a noble family is not a free woman; she is not independent like a disreputable courtesan", outraged many of Yashpal's contemporaries. Others tried to ignore it because they felt that the story about India's so-called Golden Age could not be considered 'literature' if it expounded an unacceptable political ideology. Fortunately, a core of young critics and scholars of successive generations has continued to stand-and even swear- by Divya's yearning for independence when she decides to be a prostitute so as to be a free woman and have ownership rights over her body. Such thinking is clearly behind the general acknowledgment of the novel's importance and of its impact on Hindi literature. This tradition, too, has a chequered history. Although the novel was ready by 1988, the manuscript languished with literary agents in North America for several years, including one in Hollywood who, in the wake of the success of various television mini-series on the Orient in the eighties, took an option on Divya with a view to marketing it in the media as similar US production. [2]

Aim of the Study : It is an endeavour to portray the motives of man and the dynamics of his world. This study depicts the emotions, conflicts and pathos of a young Indian woman who is struggling in this male-dominated society.

Yashpal has tried to add realism to a fictional tale played out against a historical background. Devi Mallika, the court dancer and Loreate of Art, stricken with grief at the sudden death of her grown-up daughter, Ruchira, withdrew from art and society. For a long time she led the life of a recluse. The town of Sagal (later known as Sialkot), sharing Mallika's pain, remained dismal and gloomy, wearing the appearance of a place plunged in darkness. In those dark days, only her steadfast devotion to Saraswati, the goddess of dance and music, sustained Devi Mallika through her suffering. At last after nearly two years, on the night of the full moon in the month of Chaitra she resolved to appear before the public. [3]

Awaiting the appointed hour, in much the same way as the waves rose in the water of Pushkarni- the broad and beautiful lake of Sagal - the crowd of people swelled on its bank long before sunset. In the surging throng of men and women, the pavilion erected for the festival appeared like an island surrounded by the swollen waters of a stream in the rainy season. The marquee was bedecked with spires, platain stalks, and garlands of flowers. The air was heavy with the scent of blossoms and incense. Militiamen in their tall helmets, with shields on their backs and lances in their hands, stood on duty around the marquee thronged by the enthusiastic crowd as well as inside, where seats had been reserved for the members of the Republican Council, feudatory chiefs, nobles, prominent merchants,

...plinary Journal of Contemporary Research, Vol. 12, No. 1, January, 2025
Impact Factor: 8.873
ISSN: 2393-8358

Raja Rao: The Idea of India

Dr. Kavita Singh
Associate Professor, Department of English, Raja Mohan Girls P.G. College, Ayodhya

Abstract

Raja Rao, born in 1909, is like R.K. Narayan a South Indian and novelist but Rao has produced only four books in English, two of them full length novels and a gap of 20 years separates 'Kanthapura' (1938) from 'The Serpent and the Rope' (1960). These novels make for the lack of others in their qualitative and stylistic interest. Rao's idea of a novel certainly far transcends the telling of a good tale and he may be described as the most obviously ideological of all the 20th century Indian novelist. Ideology was a fashion and something of a fad of writing in the 1930 when socialist realism flourished in Russia and political and social realism were strong in Europe and America too and much propaganda was mixed in the literary brew. Mulk Raj Anand's novels, as we have seen, are very much in the tradition of this kind of political, often left-wing realism. 'Kanthapura' bears many of the marks of this kind of writing tradition although the novel is subtler than it looks. Undoubtedly Raja Rao is the idea of India.

Keywords : Transcends, Ideology, socialist, realism, propaganda, brew, left-wing, subtler, tradition.

Objective of the paper- Aim of this study is to throw light on the idea thoughts, culture and traditions of India. Voiced in the novel of Raja Rao. He has depicted Indian culture and ideology in his writing which makes him the voice of India.

Introduction

Raja Rao's ideological commitments a wider and deeper than the non-violent nationalist struggle in India or the struggle for a better life for the poor. Kanthapura shows Rao's intense preoccupation with Indian religiousness- the permeation of religion through society at all levels. In the serpent and the rope, it becomes an intellectual but passionate examination of the essence of Hinduism and of the formative effect, Hindu philosophy has had upon India. Indian consciousness to turn from kanthapura to the serpent and the rope is. We want to turn from a young man's imaginative and sympathetic. Response to revolutionary movement of the illiterate masses told the voice of a peasant woman to a matures subtle puzzling conversation of the faith of his fathers told in a voice of not identical similar to the author's own to suggest as Raja Rao appears to do that, what India? Has to offer the world in religion. On at least a religious philosophy would appear to be an unnecessary exercise. Has it not already been only too well done with a result that Indian 'spirituality' and other-worldliness have been grossly exaggerated and overvalued or simply become cliché? Such seems to be the view of Mulk Raj Anand in untouchable. For example, it would be so, if all that Rao offered was a naive or flattering exposition of Hinduism without dialectic or tension. He attempts something much more difficult and universal, namely the analysis Of how apparently metaphysical concepts, view of God and Man and Nature, enter into the total consciousness of Hindus, Christians, Buddhists, Muslims and working often at subliminal levels nevertheless direct and distort our reactions within situation like sexual relations, marriage, parenthood even scholarship. This is the real subject of 'The Serpent and the Rope.' It is more d... ...ne centrally foreshadowed in 'Kanthapura'. Before reaching the stage of detachment ... al maturity of 'The Serpent and the Rope'. Rao, like his own India, had to live thro... ...ary and purgatory of the 1938-1950 period, the Second World War, independence, partition. Rao's silence during this time with the exception of the stories of the 'Cow and the Barricades' was apparently given over to study and thought, the gestation of the novel to come.

Review of Literature

'Kanthapura' charts, one tiny episode in the Gandhian struggle to liberate India from the British. But afterward comes the question: what ideals have sustained India through the centuries and what should give her independent destiny. In Kanthapura the question is linked to India's heroic past and heroic characters of Ram and Sita, and more fitfully to the egalitarian

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal
Interdisciplinary Journal of Contemporary Research, Vol. 12, No. 1, January, 2025
Impact Factor: 8.873

ideas of socialism and liberal humanism in Murthy's praise of Pandit Nehru (p.25... is historically, nationalist and political, though butteress by the piety of the villa... Serpent and the Rope' the question is linked with philosophy and the idea of the ... and being India is not a country like France is, or like England; India is an idea, a ... So The Serpent and the Rope is deeper, more complex, much more ambitious and much more ...

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal
Interdisciplinary Journal of Contemporary Research, Vol. 12, No. 1, January, 2025

Impact Factor: 6.873
ISSN: 2393-8358

Raja Rao: The Idea of India

Dr. Kavita Singh
Associate Professor, Department of English, Raja Mohan Girls P.G. College, Ayodhya

Abstract

Raja Rao, born in 1909, is like R.K. Narayan a South Indian and novelist but Rao has produced only four books in English, two of them full length novels and a gap of 20 years separates 'Kanthapura'(1938) from 'The Serpent and the Rope'(1960). These novels make for the lack of others in their qualitative and stylistic interest. Rao's idea of a novel certainly far transcends the telling of a good tale and he may be described as the most obviously ideological of all the 20th century Indian novelist. Ideology was a fashion and something of a fad of writing in the 1930 when socialist realism flourished in Russia and political and social realism were strong in Europe and America too and much propaganda was mixed in the literary brew. Mulk Raj Anand's novels, as we have seen, are very much in the tradition of this kind of political, often left-wing realism. 'Kanthapura' bears many of the marks of this kind of writing tradition although the novel is subtler than it looks. Undoubtedly Raja Rao is the idea of India.

Keywords : Transcends, Ideology, socialist, realism, propoganda, brew, left-wing, subtler, tradition.

Objective of the paper- Aim of this study is to throw light on the idea thoughts, culture and traditions of India. Voiced in the novel of Raja Rao. He has depicted Indian culture and ideology in his writing which makes him the voice of India.

Introduction

Raja Rao's ideological commitments a wider and deeper than the non-violent nationalist struggle in India or the struggle for a better life for the poor. Kanthapura shows Rao's intense preoccupation with Indian religiousness- the permeation of religion through society at all levels. In the serpent and the rope, it becomes an intellectual but passionate examination of the essence of Hinduism and of the formative effect. Hindu philosophy has had upon India. Indian consciousness to turn from kanthapura to the serpent and the rope is. We want to turn from a young man's imaginative and sympathetic. Response to revolutionary movement of the illiterate masses told the voice of a peasant woman to a matures subtle puzzling conversation of the faith of his fathers told in a voice of not identical similar to the author's own to suggest as Raja Rao appears to do that, what India? Has to offer the world in religion. On at least a religious philosophy would appear to be an unnecessary exercise. Has it not already been only too well done with a result that Indian 'spirituality' and other-worldliness have been grossly exaggerated and overvalued or simply become cliché? Such seems to be the view of Mulk Raj Anand in untouchable. For example, it would be so, if all that Rao offered was a naive or flattering exposition of Hinduism without dialectic or tension. He attempts something much more difficult and universal, namely the analysis Of how apparently metaphysical concepts, view of God and Man and Nature, enter into the total consciousness of Hindus, Christians, Buddhists, Muslims and working often at subliminal levels nevertheless direct and distort our reactions within situation like sexual relations, marriage, parenthood even scholarship, This is the real subject of 'The Serpent and the Rope.' It is more dimly and more crudly foreshadowed in 'Kanthapura'. Before reaching the stage of detachment and intellectual maturity of 'The Serpent and the Rope', Rao, like his own India, had to live through the extacy and purgatory of the 1938-1950 period, the Second World War, independence, partition. Rao's silence during this time with the exception of the stories of the 'Cow and the Barricades' was apparently given over to study and thought, the gestation of the novel to come.

Review of Literature

'Kanthapura' charts, one tiny episode in the Gandhian struggle to liberate India from the British. But afterward comes the question: what ideals have sustained India through the centuries and what should give her independent dedestiny. In Kanthapura the question is linked

2:32

ems_resear...
nazonaws.com

[illegible] (ISSN 2348-2222), An International Peer reviewed Refereed Research Journal Pub. by : SARID, Mau, U.P. (INDIA)
Impact Factor : 5.348, Vol. XI, No. XXII, July- December 2024, Page No. : 17-18

K.S. Venkataramani : Gandhian Economics and Politics

Dr. Kavita Singh*
*Associate Professor, Raja Mohan Girls P.G. College, Faizabad, Ayodhya

Abstract : K.S. Venkataramani is perhaps the earliest novelist to have come under the magic spell of Gandhian ideology. His novels, Murugan the Tiller (1927) and Kandan the Patriot (1932) deal with Gandhian economics and Gandhian politics respectively. Murugan the Tiller is a novel of Indian rural life. It is a fervent plea for the return to the village. Murugan, from whom the novel takes its name, is a humble, sincere tiller of Ramachandran's ancestral land.

Keywords : Gandhian, Economics, Politics, Rural life, Fervent, Village etc.

Introduction : Ramachandran (Ramu) fails twice in the B.A. examination and comes back to his village Alvanti. His wife and mother-in-law, however, keep on trying to wean him away from the dull and dreary life of the village. Floods aggravate the situation and Ramachandran goes back to the town and becomes a clerk. Events in the meanwhile transpire in such a way that Murugan becomes the master of Ramachandran's land. Falling on evil ways Murugan becomes a dacoit and is arrested along with his gang by Ramachandran who by now has become Police Chief on special duty. Ramachandran takes permission from the Government to reform the criminals. With their help he reclaims the barren land, builds a dam and starts a model community with three acre holdings each. The three acre holding brings him so much peace and contentment that Ramachandran rejects even collectorship.

Though Murugan remains in the background, he greatly influences Ramachandran's outlook on life. "Ramu saw the simple world of the starving millions through the strange, hollow, rattling eyes and trusty and loyal soul of Murugan."[1] Ramu finds Murugan's words full of wisdom, clarity and purity. He is impressed by his lack of ambition and dislike for town life. Murugan is regarded as the "first instalment of Ramu" even by the local people. In the true Gandhian spirit Murugan tells Thoppai that evil is in the system and not in the man. It is only the system that makes one exploit the other.

Like Murugan's Ramachandran also hates the sin, but not the sinner. He is a great reformer. Talking about the robbers he tells his boss, Mr. Cadell that hunger is the root cause of all evils. Like Gandhi he is a champion of female education and looks forward to 'swaraj' for fulfilling his ambition. The impact of Gandhian ideology is evident when he finds urbanization being depicted as the main source of social and economic evils. The author finds fault with the existing system where one in ten lives upon the rest of the nine and where 'simple living and high thinking' exists no more.

Ramu seems to be modelled on Gandhi though Gandhi is not at all brought into the picture, perhaps because of the conditions prevailing at that time. He advocates agrarian economy for India. His plan of transforming the robbers into farmers by getting everyone a three acre holding reminds us of the Tolstoy Farm, set up by Gandhi in South Africa. He preaches truth in thought, word and deed. Displaying his firm faith in Gandhian principle of non-violence, he says, "The purest deed is the one that never compels another to act."[2] Again, like Gandhi he advocates action without the desire for reward and tells Kedari, his friend that simplicity is the essence of a happy life. "Mind-power which has no roots in moral and humane ideals, in character and simplicity, is combustible and self-destructive. It will destroy others and itself. There must be a change."[3] In the same vein he regards brain power as a good servant, but a bad master and advocates spinning both as a means of earning and a source of peace of mind. Gandhian plea for return to the village is amply illustrated in not only Ramu's but even Kedari's acceptance of the village life. The novel is in fact a treatise on Gandhian economics and the entire locale pervades with experimentation, elucidation and popularization of Gandhian economics. Venkataramani dedicates **Kandan the Patriot (1932)** to "the unknown volunteer in India's fight for freedom". He describes it as new India in the making and gives a graphic picture of the Gandhian Age without introducing Gandhi personally. In the words of Prof. K.R. Srinivasa Iyengar the novel depicts the "excitement of a modern Heroic age with Gandhiji making men out of clay and heroes out of common humanity."[4] The novel reverberates with the battle cries of Civil Disobedience, prohibition, 'swaraj' and 'satyagraha'. It is, in fact, the first attempt to judge the practicability and application of Gandhian ideology in the field of politics. Kandan gives up the I.C.S. because of his disappointment in love as Rajeshwari (Rajee) prefers Rangan to Kandan. He comes to his village Tillaiyadi instead of going to Natal, the place where he was born and where his father had left him a home and beautiful orchards. His father, Nallappan, was the first of the followers of Mahatma Gandhi and the very man who played quite an important

part in moulding his political views. "Nallappan's record of humble and devoted work in the passive resistance movement in Natal under the leadership of Mahatma Gandhi is the record of work of all unknown volunteers in the struggle for justice and freedom. It is rarely chronicled in the books of men but has always the first place in the scroll of the recording angel."[5]

Kandan, known as the reforming saint, is a replica of Gandhi himself. He leads an ascetic's life, dedicated to the uplift of the downtrodden and the under-privileged who toil day and night in the narrow ruts of an ancient system now ploughed deep into by modern economic forces. Paradai says of him, "Kandan is a saint, a noble soul. I saw him in his element this morning, distributing Charka and Khaddar to the suffering poor."[6] We first see him successfully picketing the toddy shop at Akkur.
By the time we meet Rajeshwari Bai, she has already joined the Freedom Struggle Movement ... keen on marrying Rangan, the I.C.S. officer. She tells him that he could gain her only if he ... tells him to resign from collectorship and join the Congress ranks and work for the masses. Sh... to honour 'lathi' charge and imprisonment. Rangan wants her to spend a week's time with him ... take a decision. Fate brings them to Kandan where Rangan also meets his sister, Sarasvati ... Sundaram, the Station Master of Akkur.

The Gandhian wave is all pervading and even Neelakshi tells her son, Raghu, to look after his younger brother, Padma, as otherwise the boy will be lost in the Gandhian flood. The circumstances so

Impact Factor : 7.0
ISSN : 0976-6650

Khushwant Singh and Depiction of Cynicism and Savagery Generated by the Atrocities during the Partition of India and Pakistan

Dr. Kavita Singh
Associate Professor, Dept. of English, Raja Mohan Girls P.G. College, Faizabad, Ayodhya

Abstract

Khushwant Singh, Sikh novelist, Journalist and diplomat, is one of the new wave of young Indian novelists to emerge after Independence in 1947. His novels and short stories express a sophisticated attitude to the life of India. He represents the younger generation of Indian writers whose literary careers have grown entirely since 1947 in an atmosphere free from British rule and the tension of nationalish revolt. Sophistication implies the ability to explore the truth and to face the truth fearlessly, the ability to be satirical and critical towards India and the freedom struggle. It means too the shifting of interest noted by R.K. Narayan from public to private life, from political to psychological analysis. Khushwant Singh turns a relentless eyes on complex reactions to such catastrophes as the second World War and bloody partition of India and Pakistan.

Keywords : Independence, sophisticated, nationalish revolt, satirical, critical, freedom struggle partition, political, psychological, relentless.

Aim of the Study

Is to depict the atrocities shown at the time of Partition of India and Pakistan. It throws light on cynicism and savagery committed on both sides during the partition of India and Pakistan in 1947. It will illustrates how Khushwant Singh presents three events with detachment and objectivity.

Introduction

Khushwant Singh is not inclined to flatter or to romanticize the events of partition of India and the cruelty shown at the time. He has produced a couple of novels, some short stories, criticism and a book on the history of the Sikhs. The life of his own people, the religious, an ethnic community of Sikhs in Punjab, provides a consistent thread through his work. His outlook to Sikh and Sikhism also illustrates his sophistication in its combination of sympathy with criticism. [1]

'Train to Pakistan' (1956). Singh's first novel, reflects the barbarism during the partition of sub-continent between India and Pakistan in 1947.

The novel is placed in a village which Singh calls Mano Majra situated exactly on the Pakistan-India border in the monsoon season on 1947. The village is a railway Junction. Otherwise, it has no political and military importance. Its population of Sikhs and Muslims, landlords and tenant farmers, live in easy comradeship.

The only violence is from decoits and the novel opens with a decoit raid on the village moneylender. The relative placidity of Mano Majra is soon disturbed by violence on a much greater scale. Two trainloads of multilated corpses reveal to the horrified villagers that the Sikhs and Hindus are being massacred in Pakistan.[2] The Muslims of the village are rounded up and evacuated for their own safety and the Sikhs promise to look after their property. But the atmosphere of solidarity has been destroyed. Sikh soldiers hand over the Muslim's property to decoits; and a young Sikh fanatic organises a revenge raid on a refugee train bound for Pakistan.

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal
Interdisciplinary Journal of Contemporary Research, Vol. 11, No. 11, November, 2024
Impact Factor : 6.875
ISSN: 2393-8358

Class Struggle in the Novels of Kamla Markandaya

Dr. Kavita Singh
Associate Professor, Department of English, Raja Mohan Girls P.G. College, Faizabad, Ayodhya

Abstract

The structure of Indian society has always been governed by a delicate relationship among its class stratified, according to economic status and social roles. From the pre-colonial past to the post-colonial present, India has always retained some form of class distinction based on caste and wealth. Today, while the traditional system of cast is eroding fast there still exists an insistent distinction based on economic and political power. In terms of this distinction, the Indian society can broadly be classified into three hierarchical levels: the working class, the middle class and the upper class. Though each of the economic classes tends to assure a distinctive identity vis-à-vis it's social status and functions. It is not always true that the three classes have very clear and defined boundaries. While the very soul of the working class and middle class is their aspiration for an upward mobility, the upper class is vastly diverse in terms of life-style, attitude and social functions.

Keywords : Delicate, stratified, classes, class-distinction, cast, wealth, eroding, traditional, working class, middle class, upper class, sorrow, agony, anguish.

Introduction

The novels of Kamala Markandaya offer a wide spectrum of character, places and situations which not only centre round the joys and sorrows, agony and anguish as they negotiate with the challenges and complexities of life and living. In this paper a modest attempt has been made to identify the presence of these three classes in Kamla Markandaya's novels, not only as distinct social groups, but also as inter- acting and contradictory forces that determine the relationship between self and society.

Objective of the study

The aim of this paper is to discuss how Kamala Markandaya has depicted the struggle between the higher class people and lower class. She has adroitly delineated the sufferings pains, pathos and misery of the poor class people at the hand of the rich people who exploit the poor for their comfort, benefit and entertainment.

Review of Literature

Interestingly, Kamla Markandaya's early impulse to write fiction coincides with her deep concern with the poverty and squalor, conflicts and sufferings, dreams and aspirations of the down-trodden class. Two of her early novels, 'The nectar in a Sieve' and 'A Handful of Rice' contains symbolic portraits of the starving millions, the exploited working class who struggled desperately for bare subsistence both in the rural and urban areas. Unlike the African novelist Chinua Achebe, Wole Soyenka and Carribean writer, V. S. Naipaul who reflect a deep source of frustration of the disintegration of old order to sustain itself through the worst of trials of tribulations.

As Uma Parameswaram rightly observes:

"It is easy to wring tears of pity for the plight of the peasant, underfed, under-educated, exploited and easier still to rouse anger and contempt for the superstitious and slow- moving masses. They stand there vulnerable and open to every attack, be indifference, contempt, or emasculating charity. But to evoke admiration, even envy for the simple faith and answering tenacity they hold needs sympathy and skill. Kamla Markandaya has boxe. [1]

'Nector in a Sieve' is a vivid record of the hungry rural peasantry whose life is afflicted by the existing social institutions and rituals such as child marriage, widowhood, negligence of female child, slavery, landlessness, homelessness, casteism and illiteracy. The novel centres

2:34
ems_resear...
nazonaws.com

Research Discourse (ISSN 2277-2014), An International Peer reviewed Refereed Research Journal, Impact Factor
Indexed by: ... Vol. XIV, No. III, July - September 2024, Page No. 22-25

Isaac Rosenberg and Wilfred Owen's Anger at the Cruelty and Waste of War

Dr. Kavita Singh*
*Associate Professor, Raja Mohan Girls P.G.College, Faizabad, Ayodhya, U.P.

Abstract : Wilfred Owen (18 March 1893 - 4 November 1918) was an English poet and soldier. He was one of the greatest leading poets of the First World War. He saw war as a brutal, terrifying experience that caused immense suffering and waste on individuals and society. It was Wilfred Owen who for posterity has most forcibly summed up the tragedy of his generation.

Keywords : Brutal, Microcosm, Horribly, Cherished, Warfare, Horrors, Irony, Splendid, Immense etc.

Introduction : Owen was the most disturbing of all the English poets who made poetry out of the First World War. One can very clearly mark all the difference between the poetry of the idealising early war years and the quite new way of writing which grew out of the war as a real and hideous experience. What once seemed fervently true and in accord with deeply cherished principles of freedom and justice turned out to have a horribly upsetting darker side. Owen's poems constitute a microcosm of that empathetic and general change which came over English poetry during the first half of the century and revolutionised it. He saw the war in its proper perspective, felt sad about it and realised the horrors of modern warfare.

War broke. And now the winter of the world
With perishing great darkness closes in.
The cyclone of the pressure on Berlin
Is over all the width of Europe whirled. [1]

Owen was fast realising the magnitude of the disaster brought about by the 'War'- the winter of the world heralding an era of death and destruction. The poem also heralded the birth of a new genius.

His poems may roughly be divided into two groups - those which express clearly and realistically the horrors of the war, and those which tell things behind and beyond the war. He wrote of the war not sitting at a distance from the field but sitting or lying in the trench. The war was his vital experience, his dominant theme. It did not, for him, come in the context of a varied life; it supplied its own absolute context.

Our brains ache, in the merciless iced east winds that knive us
Wearied we keep awake because the night is silent
Low, drooping flares confuse our memory of the salient
Worried by silence sentries whisper, curious, nervous, But nothing happens.
Pale flakes with fingering stealth come feeling for our faces -
We cringe in holes, back on forgotten dreams, and stare, snow-dazed;
Deep into grassier ditches, so we drowse sun-dozed
Littered with blossoms trickling where the black bird fusses
Is it that we are dying? [2]

Owen's feelings are sincere. He saw the war without any illusion and wrote from the standpoint of a miserable suffering soldier.

Stroke on stroke of pain, but what slow panic,
Gouged these chasms round their fretted sockets!
Ever from their hair and through their hands' palms
Misery swelters. [3]

He felt the thud of battle and a mysterious urge to unfold its factual reality. Driven by an experience which he shared with millions of his fellow soldiers he became a kind of spokesman for them all. In one of his letters written from the front Owen tells us -

It is like the eternal place of gnashing of teeth; the
Slough of Despond could be contained in one of its
Crater-holes. The fires of Sodom and Gomorrah could not
Light a candle to it- to find the way to Babylon the
Fallen. It is pock-marked like a body of foulest disease
and its odour is the breath of cancer. [4]

Owen felt that the soldier was an innocent being called into brutal and degrading action. Hence the early note of his poetry-

Red lips are not so red
As the stained stones kissed by the English dead
Kindness of wooed and wooer

Seems shame to their love pure.
O love, your eyes lose lure
When I behold eyes blinded in my stead. [5]

Was soon overwhelmed by the anger on behalf of "those who die as cattle" and "these are men whose mind the Dead have ravished." [6]

Like Hardy and Kipling Owen did not think of the war as an affair of great issues between nations. But like Sassoon he saw the civilian as a protected and ignorant creature in safety and com- fort at home who must be shocked into a new knowledge of war's realities. So he reacted against the sentimental plea—"keep the home fires burning", and he laid the whole emphasis on the horror of the conflict as well as the suffering of the individual soldier. They are all deliberately emphasised so that the man at home may be made to understand.

The old lie : Dulce et Decorum estPro patria mori. (It is sweet and proper to die for one's co… Owen died young like Keats his range in this short time is wide. He wrote bitter satire (… example, or 'The Dead Beat') ; touching and delicate elegiac poetry ('The Send Off', 'Men… 'Anthem For Doomed Youth' etc), and perhaps at his strongest, poems which speak directly to… put the an- guish of the individual soldier in a truly universal frame ('Strange Meeting', 'Futi… such poems). It was Owen who re- vealed how, out of realistic horror and scorn poetry might be a…

Besides, the credit also goes to him for the technical achievement which lay in his use of pararhyme. The war was his overwhelmingsubject, and his poetry, in more than one sense is a consummation. He was

ISSN 2456–4397 RNI No. UPBIL/2016/68067 VOL- IX , ISSUE- III June - 2024
Anthology The Research

The True Voice of Endurance: A Study of Rukmani in Markandaya's 'Nectar in a Sieve'

Paper Id 18942 Submission Date 14/05/2024 Acceptance Date 25/05/2024 Publication Date 01/06/2024
This is an open-access research paper/article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International, which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.
DOI 10.5281/zenodo.13270659
For verification of this paper, please visit on http://www.socialresearchfoundation.com/anthology.php#8

Kavita Singh
Associate Professor
Dept. Of English
Raja Mohan Girls P.G. College
Ayodhya, Uttar Pradesh
India

Abstract

In recent years, there has been a plethora of theoretical speculations on the problems of women in her feminine and female identities in the context of social and interpersonal relationships. Many Indian women novelists have demonstrated a deep concern with the role and status of Indian women in terms of social and familial power. Kamala Markandaye's novels exhibit a deep and sympathetic understanding of the females in Indian society. In "Nectar in a Sieve" Rukmani seems to conform to the traditional image of women embodied in the mythical figures of Sita and Savitri who silently bear all hardships and remain devoted to their husbands.

Keywords Plethora, Feminine, Endurance, Hardships, Mythical, Female.

Introduction

Women in Markandaya's novels fall into two distinct categories : (a) those who acquiesce their traditional social rules and perceive ideal womanhood in terms of being an obedient daughter, a subservient wife, a protective mother and only a marginal participant in decision-making, (b) those who militate against the constraints of traditional Indian womanhood, who attempt to assert social and sexual power in the face of socio-moral resistance. In her novels, Markandaya has depicted the status of women in Indian society. Women in her novels are traditional rather than modern. They choose their own culture over western culture. Her novels reflect her own experiences through the characters. Markandaya's first novel 'Nectar in a Sieve' is a story of a peasant Indian woman Rukmani who sacrifices all her life for her loved ones. She emerges as a stronger character than her husband. She stands for the traditional values of life that's why she revolts against the encroachment of the western industrial values on rural life. There are so many problems in her life, but she manages them with hope and trust.

Objective of study

This paper aims at delineating the struggle and hardships of Rukmani's life and presenting her as the epitome of endurance. This study shows how Rukmani faces all the odds and difficulties of her life with great courage and fortitude and emerges as a conqueror.

Review of Literature

With the birth of her first-born Ira, Rukmani with tears of disappointment exclaims, 'A girl's body - what a woman wants for her first born'.[1] She supports her husband's view that a male child is an asset, and a girl child is a liability to the family. But ironically the couple cannot lead a happy and prosperous life even if five sons are born to them successively. Nathan thinks that educating the girl child is sheer waste. In fact, Rukmani's education cannot help her to earn for the destitute family. Ira marries dowry of hundred rupees, the maximum her parents could offer. Rukmani easily reconciles herself to Ira's ill fate when her husband, being accused of barrenness deserts her. But the irony is that in their abject poverty it is the daughter who helps the family financially. At least she can feed the starving Kuti who dies painfully, slowly for want of milk. Their sons are no longer symbols of hope. Both Rukmani and Nathan lament over the departure of their sons from the land to distant places and different occupations. Their last hope of survival is lost when they trace their son Murugan in the unfriendly city. Rukmani, born of the village headman and married to a tenant farmer below her family status, her good soul speaks of her and husband as one "who was poor in everything but in love and care for me".[2] She feels proud of him as he is efficient in farming, in maintaining the household singlehandedly and is a loving husband. Though the knowledge of Nathan's adultery with Kunti in his youth is agonizing, she hardly ever betrays her feelings of jealousy and anguish. On the other hand, her faith and

ISSN 2456–5474 RNI No. UPBIL/2016/68367 VOL.- VIII , ISSUE- I February - 2023
Innovation The Research Concept

Gandhian Philosophy and R. K. Narayan

Paper Id 17203 Submission Date 03/02/2023 Acceptance Date 21/02/2023 Publication Date 25/02/2023
For verification of this paper, please visit on http://www.socialresearchfoundation.com/innovation.php#8

Kavita Singh
Associate Professor
Dept. Of English
Raja Mohan Girls P. G. College
Ayodhya,Uttar Pradesh, India

Abstract R. K. Narayan's place among the novelists of India is supreme. Among the European writers only the greatest ones have enjoyed their reputation though their mother tongue was English. Narayan's work have been translated into several European and Indian languages and he has won considerable audience in Britain and America.
In an interview with R.K. Narayan, V. Panduranga Rao asked him, " considering your 'Waiting for the Mahatma', were you greatly influenced by Gandhi?" Narayan replied "No. He was a rare man. But I don't agree with political or economic thinking. But-Truth- and he was absolutely transparent."[1] This sums up R. K. Narayan's attitude to Gandhi and his ideology. He may not agree with Gandhi's political or economic theories, but he could not help feeling the impact of his insistence on truth, which is, in fact the basic main stay of Gandhian ideology.

Keywords Ideology, Influence, Mainstay, Impact, Transparent, Mahatma, Gandhian, Political, Economic, Truth.

Introduction Narayan's heart was overwhelmed with poverty, struggle and sufferings of the underprivileged. At a time when the country was going through that travails of the struggle for freedom, he wrote simple stories about the domestic life of the middle class people, living in or around Malgudi, Narayan's imaginary town in South India. He is content like Jane Austen to remain and engrossed within his own ivory tower. To quote Dr. A. N. Kaul, "Ibsenism or the feminist idea can inspire Narayan's imagination as little as the political idea of Gandhism."[2] However he cannot remain ever isolated from the physical changes coming all over the countryside. Hence there are extensions in Malgudi as well. With the changing times Lawly Extension is renamed 'Gandhi Nagar'.

Aim of study This Research paper aims at elucidating Gandhian Philosophy and its influence on R. K. Narayan who strongly beleived in Truth, Ahimsa, Satyagrah and simple living.

Review of Literature

Narayan makes Gandhi appear personally as a character in Waiting for the Mahatma (1955). Anand too introduces Gandhi in Untouchable, but only towards the end. Other novelist also have tried their best to exploit the 'charisma' of Gandhi's name in some form or the other. But very few have given all-pervading role. The problem is that Gandhi is too great a man to be given a minor part and a major part will turn the novel into a biography. The best way out is to keep Gandhi in the background and show the influence of his ideology only indirectly. Narayan has done exactly the same by stressing how Bharti and Sriram share a common allegiance to the Mahatma. The novel depicts the impact of Gandhian thought on an individual in the same way as Raja Rao's 'Kanthapura' portrays the impact felt by a community.

But there is a difference between the two, i.e. Narayan's novel has no definit narrator as 'Kanthapura' has and the story is related in straightforward third person. Though Gandhi figures as a character of considerable significance, he is always in the back ground.

"Narayan probably never even met Gandhi and certainly did not know him intimately."[3] writes Prof. P. S. Sundaram. His novel is not a political novel. He is not trying to aim at projecting a Gandhi image. He is only trying to tell the story of an average Indian who falls in love with one of Gandhi's followers and is gradually influenced by Gandhi through the girl he loves.

ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367
Vol.-6* Issue-2* March- 2021
Innovation The Research Concept

Nissim Ezekiel: A Poet of Indian Sensibility

Paper Submission: 03/03/2021, Date of Acceptance: 23/03/2021, Date of Publication: 24/03/2021

Kavita Singh
Assistant Professor,
Dept. of English,
Raja Mohan Girls P.G. College,
Ayodhya (Faizabad), U.P. India

Abstract

Ezekiel was born in 1924 in Bombay in a Jewish family. His parents were devoted to education. They influenced him very much. His father was the principal of several colleges in the later part of his life. He was rational, questioning and had an immaculate taste for proverbs and homespun wisdom, which runs deep in his poetry. This paper aims at illustrating the fragrance of Indian sensibility in Ezekiel's poetry.

Keywords: Jewish, Rational, Questioning, immaculate, Homespun, Wisdom

Introduction

He looks at literature in relation to society. He is a poet of the city of Bombay. He does not mince words to express the ugliness, dirt, wickedness, inhumanity and squalor of the metropolis. Wading through Bombay is a mortifying experience for the poet in "A Morning Walk".

Barbaric city, sick with slums,
Deprived of seasons, blessed with rains
Its hawkers, beggars, iron lungued,
Procession led by frantic drums,
A million purgatorial lanes
And child-like masses many-tongued,
Whose wages are in words and crumbs [1]

Bombay, the symbol of any modern city, is the theme in a large number of his poems. The dehumanizinginfluence of the city on human individuality is described in "Urban"

The city like a passion burns,
He dreams of morning walks,alone,
And floating on a wave of sand
But still his mind its traffic turns
Away from beach and tree and stone
To kindred clamour close at hand, [2]

Ezekiel's entire poetry is suffered with Indianness. His commitment to India and to Bombay which is his chosen home, is total. In his commitment to and attachment with India.

The Indian landscape sears my eyes,
I have become a part of it
To be observed by foreigners
They say that I am singular,
Their letters overstake the case
I have made my commitments now
This is one to stay where I am,
As others choose to give themselves
In some remote and backward place
My backward place is where I am. [3]

Ezekiel says that the major themes of his poetry are love, personal integration, the Indian contemporary scene, modern urban life , spiritual value Ezekiel is a poet of Indian Urban life K N Daruwala remarks: "He seeks his identity in the country and its incongruities. He is basically an urban poet, the city spilling over into his verse not as cosmetic but as an organic growth." [4]

Ezekiel poetry is closely related with his environment. His roots lie deep in India. He has not inherited the great classical tradition of India, of Vedas and Upanishads, "but to the extent he has availed himself of the composite culture of India to which he belongs, he must be said to be an important poet, not merely in the Indian context, but in the consideration of those that are writing poetry anywhere in India. The poet vividly and

ISSN 2456—4397 RNI No UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-10* January-2021
Anthology : The Research

Corona Virus Disease: Fury of Nature

Paper Submission: 15/01/2021, Date of Acceptance 26/01/2021, Date of Publication: 27/01/2021

Kavita Singh
Assistant Professor,
Dept. of English,
Raja Mohan Girls
P.G. College, Ayodhya,
Faizabad, UP, India

Abstract

The whole world is going through an unprecedented covid-19 infection. All the super powers of man have failed to overcome this pandemic.

Keywords: Unprecedented, Dreadful, Harmonious, Specific, Faculties, Overcome, Devastate

Introduction

Here a question arises? "Is it a clear and dreadful warning of nature to man?" Yes, of course! Man has forgotten that he is a creation of god who has been given so many specific faculties not to devastate nature but to have a harmonious relation with it which is not found today. And the greatest reason of the lack of this bond between man and nature is the greed, money mindedness and ravenous nature of man. Here I would like to quote Wordsworth's lines

The world is too much with us, late and soon,
Getting and spending, we lay waste our powers.
Little we see in nature that is ours,
We have given our hearts away, a sordid boon! [1]

Man is running only after money and in this pursuit of money he is exploiting nature. Now he considers himself the controller of nature and the consequences are such pandemics and calamities. We should be obedient to nature. I would like to mention Alexander Pope who warns man in 'Essay on Man':

Go, wondrous creature! Where science guides,
Go, measure earth, weigh air, and state the tides
Instruct the planet in what orbs to run,
Correct old times and regulate the sun[2].

Instead of all these achievements you cannot overcome nature. Nature is furious and is warning us. O man! Beware, don't try to overcome me, you can't control me. As Wordsworth has suggested us to accept nature as our mother and teacher, we should be obedient to nature which nourishes us like a mother, guides us like a teacher and prevents us from committing mistakes.

It is both law and impulse
Which kindles and restrains.
(Wordsworth: Three years She Grew In Sun and Shower)

Nature inculcates good qualities in us and she is the greatest preacher. It teaches us about good and bad, right and wrong like a preceptor. Wordsworth says,

One impulse from a vernal wood
May teach you more of man,
Of moral evil and of good,
Than all the sages can [3].

Nature is full of joy, beauty and it has a treasure of knowledge and is always ready to bless our minds with that knowledge as it is advised by Wordsworth in his poem 'the tables turned'

And hark! How blithe the Throstle sings!
He, too, is no mean preacher.
Come forth into the light of things,
Let nature be your teacher[4].

Actually, the problem is that man has forgotten the code of conduct. He has no sense of morality, doing wrong is being appreciated these days and to be innocent is considered to be greatest folly. As Shakespeare has written in 'Macbeth' when Lady Macduff says:

But I remember now
I am in this earthly, world,
Where to do harm is often laudable
To do good sometime
Accounted dangerous folly.[5]

P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817
RNI No.UPBIL/2016/67980
VOL-4* ISSUE-12* March- 2020
Remarking An Analisation

Religion and Literature: A Broad Perspective

Paper Submission: 12/03/2020, Date of Acceptance: 25/03/2020, Date of Publication:30/3/2020

Kavita Singh
Assistant Professor,
Dept. of English,
Raja Mohan Girls P.G.College,
Faizabad, Uttar Pradesh, India

Abstract

Religion and Literature spring from the same fundamental sources. Religion is the relation which man bears to ultimate being. It is concerned with the substance which lies behind phenomena, and also with the duty which man owes to this being, universal and eternal. Literature, in all its final analysis, represents the same fundamental relationship. It seeks to explain, to justify, to reconcile, to interpret and even to comfort and to console. The Homeric poems are pervaded with the religious atmosphere of wonder, of obedience to the eternal and of the recognition of interest of God in human affairs.

Keywords: Religion, Fundamental, Phenomena, Universal, Eternal, Comfort, Console, Obedience, Homeric, Pervaded, Reconcile, Christianity.

Introduction

Religion and literature are formed by the same forces. They both make a constant appeal to life. This paper tries to illustrate the role of religion in literature.

Religion and literature both assume the presence and orderly use of reason, they accept the strength of the human emotions of love like curiosity, reverence and they both presume and accept the categorical imperative of the conscience and freedom and force of the will of man. The great themes of religion and literature are similar and are vital. Paradise Lost describes how christial religion influenced the writing of literature. Milton (1667) narrates the fall of man in the garden of Eden, the epic poem explains the fall of man.

Religion teaches us to lead our life and to move on the right path. It teaches us morally. Religion provides ample matters for literature and literature to uplifts religion. Both are inseparable from each other. In English literature much has been written on religion. In fourteenth century some evils or deviation crept in Christianity and Chaucer has graphically depicted it in "Prologue to the Canterbury Tales" Through the character of the prioress (Prioress) he has shown how religious class people are violating the rules laid down for them. The prioress renders all her emotions on the animals while humans are suffering and ignored. In a satirical tone he beautifully writes:

> As for her sympathies and tender feelings,
> She was so charitably solicitous
> She used to weep if she but saw a mouse
> Caught in a trap, if it were dead or bleeding.[1]

Whenever there is a decline in religious poets and authors warn us and reminds us of the importance of religion in our life.

A great victorian poet Mathew Arnold mourns the loss of religious faith in the society in his poem "Dover Beach". He writes that religion is like an ocean which guards the earth from all sides. It is like an ornament which increases the beauty and glory of the world. Without religion condition of the people is like the the naked pebbles which strike with each other and create an uproar. Religion guards, guides and protects us. In its lack people are confused and misguided. Arnold writes :

> The sea of faith
> Was once too at the full, and round earth's shore
> Lay like the folds of a bright girdle furl'd;
> But now I only hear its melancholy, long, withdrawing roar,
> Retreating to the breath
> Of the night wind, down the vast edges drear
> And naked shingles of the world.[2]

N NO.: 2394-0344
RNI No.UPBIL/2016/67980
VOL-4* ISSUE-12* March-
Remarking An Analis
N NO.: 2455-0817

Again he describes the condition of people in
of religious faith which is like confused
full of ignorance. And this world has become
field where everyone is confused and fighting
ers
And we are here as on a darkling plain

Literature plays a very significant rol
development of spirituality and morality. While
through Ramayana we come to know about
and good. It teaches us to lead our life m
every field. Whether it is the matter of marital re
or the duty of a king to his subjects, everything is
Ramayana. Ram leaves his wife

Abstract

This paper sets out to look into the dilemma of name and sense of identity and belongingness of the characters as immigrants in the Namesake, the novel written by Jhumpa Lahiri. Jhumpa Lahiri is the child of Indian immigrants and she migrates from England (where she was born) to America. In this way she is both a migrant and diaspora writer. She writes on the Indian diaspora and narrates stories that reveal the inconsistency of the concept of identity and cultural difference in the space of diaspora in her works. The Namesake discusses the term diaspora and its role in the present era, the major issues of cultural dislocation, multiculturalism, struggle for identity and belongingness. A diaspora is a large group of people with a similar heritage or homeland who have since moved out to places all over the world. Diaspora has its roots in the Greek word Diaspeirein- "to scatter about, disperse". Diaspora is located between majority and minority nation and non-nation, citizen and foreigner, original and hybrid.

Keywords: Diasporic Consciousness, The Namesake, Higher Education.

Kavita Singh
Assistant Professor,
Deptt. of English,
Raja Mohan Girls P.G. College,
Faizabad

Introduction

The Indian Diaspora is a general term to describe the people who migrated from India. Migration has take place due to historical, political and economic reasons including higher education, better prospects and marriage. However, the migrated Indian community has showed greater sense of adjustment, adaptability, mobility and accessibility. During ancient times a large number of Indians migrated to other parts of Asia. During British period to spread Buddhism or to trade a major lot of Indians migrated due to misery, deprivation and sorrow to the U.K. Africa and U.S.A. Migration was also in wave in the nineteenth century in order to flourish to the developed economies like the U.K., U.S.A., Australia etc. It was a major wave as it gave rise to immigration either to study or settle and it goes as till present date. The situation today is that the Indian Diasporas are a well known success stories in the U.K., U.S.A., and Australia. In The Namesake, Gogol's parents Ashoke and Ashima belong to this wave of immigration to the United States where as Gogol is a product of the contemporary success story of the Indian Diaspora in the United States coming across two cultures, the first impression for a migrant is that of homelessness. As the strong Indian root does not allow him to mix and acculturate at once. Therefore, the Diaspora Indian is like the bunyan tree following the traditional Indian way of spreading strong roots of affection. He spreads out his root in several soils as that of the motherland the one where he migrates. He constantly tries to nourish from one when the rest dry up. Far from being homeless he has several homes, and that is the only way he has increasingly come to feel at home in other land. The sense of homelessness every immigrant suffers is genuine and intense; but in recent times it has been seen that this concept has been minimized and made less intense through their social networking. Earlier immigrants used to suffer intense homelessness due to lack of communication means. They had letters either to write or to receive to connect with family in homeland.

Dalspora Indians on foreign land expressed themselves best through creation of literature. Earlier it was possible only when a non-resident Indian come to the homeland and tells about his life and struggle for settlement. Writers of Indian Diaspora wrote on loss of identity, feeling of alienation, sense of adjustments, adaptability and mobility and let the world be acquainted with the position of migrants on the foreign land. Literature of the Indian Diaspora constitutes a major study of the literature and other cultural texts of Indian Diaspora. Diaspora literature helps in understanding various cultures, breaking the barriers between different countries, globalizing and spreading universal peace. Diaspora writing raises questions regarding the definitions of 'home' and 'nation'. Literature,

शिक्षा कलश
वर्ष 7, अंक 1, जून 2015

R.N.I. UPBIL/2009/28595
ISSN 0975-2579

[redacted] WOMEN IN SHAKESPEARE'S PLAYS

Dr. Kavita Singh*

In Shakespeare's plays women play very vital role and they surpass their male counterparts. Roselind, Portea, Viola, Beatrice etc. are endowed with wit, humanised common sense, human feelings and noble qualities of head and heart. They are exceptionally winning and charming. They have also beautiful feelings, thoughts and emotions. They radiate joy, peace and harmony. They have all the gifts of inspiring and of returning affection. Ruskin's remark that "Shakespeare has only heroines and no heroes" is certainly true to his comedies. "The hero has been dethroned, losing not only his rank but something of the personality; he has been replaced by the heroine. It is a commonplace that the main men of these comedies are but pigmies compared in stature with the heroines. Moreover, these ladies are not only heroines in the material and formal sense that the/ have most of the sense of the play. They are heroines in the sense that they provide the efficient force which resolves the dilemma of the play into happiness. That happiness is palpably a state of affairs which, in so far as it springs from human effort, it especially an outcome of their making."[1]

Shakespeare's tragic heroes - Hamlet, Macbeth and Othello are endowed with a subtle intellect, penetrating imagination and irresistible passion, but their personality is a mass of mighty forces out of equipoise, they lack the balance of a durable spiritual nature."

"In his women hand, heart and heart and brain are fused in a vital and practicable union, each contributing to the other, no one of them permanently pressing demands to the detriment of the other, yet each asserting itself periodically to exercise its vitality, even if the immediate effect be the temporary disturbance of equilibrium, for not otherwise will they be potent to exercise their proper function when the whole of their owner's spiritual nature is struck into activity."[2] They are simply human and patently natural in their response to emotional crises like that of falling in love. Roaslind's excitement when she first meets Orlando is a palpable as are her transparent endeavours to hide it.3 Male characters in Shakespearean comedy only play a second fiddle. His heroines know how to fulfill their desires and resolve crises. Rosalind plans to runaway to the forest of Arden along with Celia. It is she who devises the means of ensuring Orlando's frequent company. Viola immediately resolves the crises by disguishing herself as a page and by taking service with the Duke. Viola becomes the Duke's confident. She overcomes all the ceremonial obstacles which bar access to Olivia, using when need be, the bluster and rudeness which she learns from her opponents. All heroines in Shakespearean comedy are guided by

*Assistant Professor, Department of English, Raja Mohan Girl PG College, Faizabad (U.P.)

Dr. Kavita Singh*

intuitive insight. Kenneth Muir writes about heroines in Shakespearean comedy "It ... characteristics of nearly all Shakespeare's comedies that the heroines should largely escape his satire and that it is their qualities (wit, humour, initiative, balance, co... bring about a satisfactory resolution of the plot. Portia, Rosalind and Vio... values of the plays in which they appear and the falsities of society and the... sentimentality are revealed for what they are in the light of the comic ... praises the brilliant heroines of Shakespearean comedy : "They are the s... plays, obscured at times by clouds and storms of melancholy and misdoing, but neve... fair and handsome, but when re...

Shodh Drishti (An International Peer Reviewed Refereed Research Journal)
Vol. 16, No. 3.1, March 2025

Impact Factor : 7.0
ISSN : 0976-6650

Odour of Gandhian Ideology in the Novels of Bhabani Bhattacharya

Dr. Kavita Singh
Associate Prof., Dept. of English, Raja Mohan Girls P.G College, Ayodhya

Abstract

All the novels written by Bhabani Bhattacharya deal with some contemporary problems or the other because he believes that a novelist can always find plenty of material in the happenings of the day. This is particularly true of our country which has passed and is still passing through a very significant phase in her history. Though some critics are of the opinion that writing about the contemporary events may give a journalistic touch to a piece of writing, Bhattacharya feels otherwise. He says that an immediate and acute problem of the time does bring about a spontaneous reaction in the creative artist and this may result in an excellent, realistic piece of fiction, emanating from inner compulsion. Bhabani Bhattacharya's first novel, 'So Many Hungers'! (1947) was published two months later after India attained freedom. The hunger for food and for freedom is the main theme of the novel. Blessed with a well-developed sensibility, Bhattacharya could not remain unaffected by the epoch-making events of the country. The emotional stirrings he felt were a sheer compulsion to creativity. Consequently, the Bengal Famine of 1943 and the Quit India Movement 1942 play a very prominent role in the novel. There are two main strands of plot, the young scientist Rahoul and his family, representing in miniature the struggle for freedom and the poor Kajoli and her family, depicting the sad tale of millions of people who became victim of a man-made hunger. Non-violence, Role of women, Ahimsa, fearlessness, social reawakening all these philosophies of Gandhi Ji are reflected in the novels of Bhabani Bhattacharya.

Keywords : Realistic, sensibility, emotional stirrings, Bengal Famine, Quit India Movement, struggle for freedom, man-made hunger, non-violence, Ahimsa, fearlessness, role of women.

Aim of the study

This article aims at depicting Gandhian philosophy in the novels of Bhabani Bhattacharya who was highly influenced by Gandhi Ji and his theories.

Introduction

In 'So many Hungers' Rahoul wants to join the Struggle for Freedom but he refrains from active participation and gives the impression to the British of working on some phenomenal discovery. His brother, Kunal, joins the army and is declared missing in the end. His father, Samarendra Basu, is a greedy hoarder. His grandfather, Devendra Basu, is a Gandhian character in the real sense of the term. He is a true patriot and has immense love for the common man. He is known as 'Devata' because the people of the village love and revere him a lot. Rahoul is deeply influenced by him and had consulted him when his father wanted to send him to Cambridge to avoid his getting involved in the struggle for freedom. His grandfather had unhesitatingly told him that the call off the country came first.

Devata is especially fond of a peasant family, consisting of a peasant, his wife and three children. The peasant and the elder boy, Kunu, are in prison for their participation in the Civil Disobedience Movement. Devata often visits the wife whom he treats as his daughter Kajoli, the daughter of the peasant as well as the heroine of the novel and youngest son Onu. He gives advice and guidance to the villagers and advises them to be non-violent. When they join the national movement Devata himself has been in prison and had exhorted the people before being taken away. "The supreme test has come. Be strong, be true, be deathless."[1] He even undertakes a fast in the prison when the Quit India Movement is at its height. Height

Though initially Rahoul's participation is indirect, his heart is with the people of the country whether fighting for their freedom or suffering in the feminine- stricke Bengal. When

Shodh Drishti (An International Peer Reviewed Refereed Research Journal)
Vol. 16, No. 3.1, March 2025

Impact Factor : 7.0
ISSN : 0976-6650

students in enlarge numbers join the Quit India Movement, he feels that it is his duty ... them. He consults his grandfather who is in prison. Debra Dun and joins the ... indirectly and is taken to prison. The novel closes with the people seeking im... voluntarily.

Review of Literature

Various literature on Gandhian philosophy has been studied to write this article. Bhattacharya is very critical of the British administration and their apathetic attitude to the

डिजिटल साक्षरता और भारतीय ग्रामीण महिलाएं

डॉ. पूनम शुक्ला
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग
राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कालेज रिकाबगंज अयोध्या उत्तर प्रदेश

जटिलता आज के वातावरण का अभिन्न अंग है सही समय पर सही सूचना को खोजना और उसका सही उपयोग करना भी एक जटिल प्रक्रिया है ऐसी परिस्थिति में डिजिटल इंडिया साक्षरता ऐसे माध्यम साधन या दक्षता के रूप में उभर कर आयी है जो कि व्यक्ति में मूल्य संवर्धन करती है जिससे कि नेटवर्क वातावरण में इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का उपयोग कर हम वांछित सेवा और संसाधन का दोहन कर सकते हैं. ज्ञान के दिनों-दिन विकास ने लैंगिक विभेद को अल्पतम करने का प्रयास किया है. वैसे भारतीय परंपरा में लैंगिक विभेद को लेकर बहुत उदार और समान भाव देखने को मिलता है. महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए भारतीय परंपरा में समान अवसर प्रदान करने के साथ-साथ महिलाओं को प्राथमिकता देने की बात कही गई है .इसे कुछ इस तरह से भी देखा गया है. वैदिक काल में ऋषिकाओं के नाम पर नाम मिलते हैं जैसे गायत्री,सावित्री,लोपामुद्रा, अपाला ,घोषा आदि. ऐतरेय उपनिषद का नाम ही म [illegible] सत्यकाम, जवाली की कथानक से सभी परिचित हैं. महाराज दशरथ के युद्ध में कैकेयी का वर्णन मिल [illegible] की संकल्पना इस तथ्य को प्राकृतिक करती है की दोनों का सम्मिलित और एक रूप प्रयास ही समाचार ठीक विकास का आधार है देवताओं के नाम भी देवी के नाम के पहले लिए जाने की परंपरा है विवाह को 16 संस्कारों में उन्हें स्थान दिया गया. आज हमारा भारतीय संविधान महिलाओं को समान अवसर प्रदान करने के लिए कानूनी आधार प्रदान कर रहा है. भारतीय जनमानस की मनः स्थिति में बदलाव की बयान दिखाई देने लगी सिर्फ आवश्यकता इस बात की है कि इस बदलाव को और गति कैसे प्रदान की जाए जिससे कि जनमानस में लैंगिक समानता को लेकर कोई भेद न रहे वर्तमान सूचना संचार प्रौद्योगिकी ने अवसरों की भरमार कर दी है लेकिन सूचना संचार प्रौद्योगिकी जनित अवसरों का लाभ तभी उठाया जा सकता है जब सभी डिजिटल साक्षर हों. महिलाओं का डिजिटल साक्षर होना समाज के आर्थिक विकास के लिए अपरिहार्य है. भारत सरकार ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है तथा डिजिटल साक्षरता की दिशा में अनेक अनेक कदम उठाए हैं. डिजिटल साक्षरता को समझने से पूर्व हमें साक्षरता को भी समझना आवश्यक होगा. ओडी एलआईसी के अनुसार- न्यूनतम स्तर की दक्षता के साथ पढ़ने और लिखने की क्षमता.[1]

इस परिभाषा में दक्षता के न्यूनतम स्तर के रूप में साक्षरता को संदर्भित किया गया है लेकिन यहां समस्या यह है कि दक्षता इस न्यूनतम स्तर के साथ वर्तमान प्रौद्योगिकी के माहौल में उपलब्ध सूचना एवं ज्ञान की तमाम संसाधनों का दोहन नहीं किया जा सकता साक्षरता को इस प्रकार से भी कुछ लोगों ने परिभाषित किया है -यह पढ़ने और लिखने की क्षमता है हाल ही में शब्द साक्षरता जानकारी के साथ जुड़े हुए व्यवहारिक कौशल की एक श्रृंखला को इंगित करने के लिए प्रयोग किया जाता है.[2] यह परिभाषा भी पढ़ने और लिखने की क्षमता में व्यवहारिक कौशल को जोड़ने के माध्यम से साक्षरता के क्षेत्र को विस्तृत करती है यूनेस्को के लैब के अनुसार साक्षरता अलग-अलग संदर्भों के साथ जुड़े मुदित और लिखित सामग्री के उपयोग करने के द्वारा पहचान करने समझने व्याख्या करने संवाद करने और गणना करने की क्षमता है.[3] एक व्यक्ति को अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपने ज्ञान और क्षमता को विकसित करने और समुदाय तथा विस्तृत समाज में पूरी तरह से भाग लेने में सक्षम करने के लिए साक्षरता को कुछ महत्वपूर्ण कौशलों और दक्षताओं के साथ जोड़ा जा सकता है जैसे पढ़ने और लिखने की क्षमता, विभिन्न घटनाओं को समझने की क्षमता,jjjbbjjfj शैक्षणिक गतिविधियों में सहभागिता. साक्षरता को समझने के साथ-साथ डिजिटल साक्षरता को भी समझने की आवश्यकता है. राष्ट्रीय डिजिटल साक्षरता मिशन ने डिजिटल साक्षरता को इस तरह से परिभाषित किया है-डिजिटल साक्षरता जीवन

आलेख

रामचरितमानस में पर्यावरणीय चेतना : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. पूनम शुक्ला

प्रकृति और मनुष्य का संबंध अटूट है। भारतीय मनीषियों ने समूची प्रकृति और प्राकृतिक शक्तियों को पूजनीय माना है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में प्रकृति के जीवंत रूप की अभिव्यंजना अपनी पूर्ण भव्यता के साथ उजागर की है। तुलसीदास जी ने प्रकृति के भौतिक व जैविक दोनों घटकों को मानस में समाहित किया है। प्राकृतिक अनुराग एवं प्रकृति संरक्षण की चिन्तनधारा से संबंधित अनेक प्रसंग मानस में रचे गए हैं। भारत के विशाल आकार ने इसे विशिष्ट भौतिक विविधता प्रदान की है। उत्तर में गगनचुंबी हिमालय तथा गंगा, यमुना सरयू, गोदावरी जैसी बड़ी नदियाँ, दक्षिण में प्रायद्वीपीय पठारी भाग, पश्चिम में विशाल मरुस्थल, तीन ओर से भारत को घेरे हुए अरब सागर, हिंद महासागर तथा बंगाल की खाड़ी एक वृहद भौगोलिक इकाई है जो भारतीय प्रायद्वीप को प्राकृतिक रूप से समृद्ध और विशिष्ट बनाती है। हिमालय के घर में जन्म लेने के प्रसंग में तुलसीदास हिमालय के प्राकृतिक सौंदर्य के साथ उसके आर्थिक एवं पर्यावरणीय महत्व की ओर भी संकेत करते हैं।

सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति।

महात्मा तुलसीदास ने मानस में लगभग सभी भारतीय पर्वतों का उल्लेख किया है। उदयाचल, अस्ताचल, कैलाश, मंदराचल, सुमेरु, विन्ध्याचल, मैनाक आदि पर्वतों की भौगोलिक स्थिति व संरचना का विवरण तुलसीदास ने बखूबी किया है। जिस प्रकार तुलसीदास ने पर्वतों, द्वीपों या अन्य क्षेत्रों की स्थिति व संरचना अभिव्यक्त की है उससे उनके भौगोलिक ज्ञान को भी स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक ...स में नदियों का योगदान और स्थान अत्यधिक ...पूर्ण है। इसके अलावा भारत में नदियों का धार्मिक ... भी बहुत अधिक है। अधिकांश मंदिर व नगर इन्हीं ... पर स्थित हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस ... सी नदियों का भी उल्लेख किया है। तुलसीदास जी मंगल और आनंद का मूल भगवती गंगा को ही मानते हैं। रामचंद्र जी के चित्रकूट प्रसंग में तुलसीदास ने अनेक नदियों का उल्लेख करते हुए उन्हें पुण्यमयी नदियाँ कहकर सम्मानित किया है। इसी तरह से जीव-जंतु भी प्रकृति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई माने जाते हैं। तुलसीदास जी ने मानस में प्रकृति में उपस्थित जीवों के प्रकार भी कुछ इस तरह से बताए हैं-

जलचर थलचर नभचर नाना जे जड़ [illegible]
आकर चारि लाख चौरासी, जाति [illegible]

प्रकृति में उपस्थित अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों, वृक्षों, वनस्पतियों तथा वनों का बड़ा ही सूक्ष्म किन्तु मनोहारी चित्रण गोस्वामी तुलसीदास जी ने किया है। पशु-पक्षी हमारे पर्यावरण विशेष रूप से परिस्थिति तंत्र के अभिन्न अंग हैं। भारत की भौगोलिक स्थिति इस प्रकार की है कि यहाँ विश्व की समस्त प्रकार की जलवायु, वनस्पति, जीव-जंतु आदि विद्यमान हैं। तुलसीदास जी ने मानस में विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों को चित्रित किया है।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी,
तुम्ह देखी सीता मृगनैनी
खंजन सुक कपोत मृग मीना
मधुप निकर कोकिला प्रबीना।

प्रकृति में उपस्थित जीव से मानव अपने उल्लास, अवसाद, क्रोध, पश्चाताप साझा करते हैं। तुलसी के राम सीता के वियोग में व्याकुल होकर वृक्षों, लताओं और पशु-पक्षियों से ही अपना दुख साझा करते हैं। तुलसीदास ने रामचरितमानस में अनेक वनस्पतियों, वृक्षों और वनों का सौंदर्यात्मक वर्णन किया है, इसके साथ ही उनके सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय महत्व का भी रेखांकन किया है। भोज्य पदार्थ के रूप में कंदमूल फल का वर्णन रामचरितमानस में किया गया है। श्रीरामचन्द्र जी के आगमन का समाचार जब कोल भील जातियों को प्राप्त हुआ तो वे इतने प्रसन्न हुए मानों उन्हें सब कुछ प्राप्त हो गया हो। और वे कन्दमूल फल भर-भरकर ऐसे भागने

ऋग्वेद में सृष्टि विषयक अवधारणा

डॉ0 सुषमा शुक्ला*

सृष्टि-उत्पत्ति विषयक यक्ष-प्रश्न आदिकाल से ही मानव के चिन्तन का विषय रहा है। यहाँ तक कि आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं के अन्तर्मन में भी वही आदि जिज्ञासा के रूप में चिन्तन का विषय बना हुआ है। वे भी स्वयं से प्रश्न करते नजर आते हैं कि सृष्टि क्या है? सृष्टि की उत्पत्ति का कारण क्या है? इन प्रश्नों के समाधान हेतु वैदिक दर्शन की सृष्टि संरचना के विविध दार्शनिक पक्ष अपने आयामों को प्रकट करने लगे, क्योंकि सृष्टि की प्राचीनतम रचना वेदचतुष्टय (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद) सभी विद्याओं के स्रोत हैं। यही ज्ञान-प्राप्ति के उद्गम एवं भण्डार हैं। यहीं ईश्वरीय ज्ञान वेदों में सृष्टि उत्पत्ति एवं क्रम का विशद वर्णन प्राप्त होता है। ऋषियों ने प्रकृति के सूक्ष्म एवं स्थूल तत्वों का प्रत्यक्षीकरण करते हुए सृष्टि-उत्पत्ति सम्बन्धी अवधारणाओं को प्रस्तुत किया है। इन दो प्रश्नों को आधार बनाकर ही ऋषियों ने सृष्टि-प्रक्रिया का प्रत्यक्षीकरण किया है। 'प्रकृत प्रसंग' में ऋग्वेदीय दशममण्डलान्तर्गत नासदीय सूक्त, देवसूक्त, पुरुषसूक्त और प्रजापतिसूक्त विशेषतया उल्लेखनीय हैं। सृष्टि के मूल तत्वों में परमेश्वर, पुरुष एवं प्रकृति तत्त्व को मूल कारण माना गया है। भागवतकार ने कहा है कि चराचर की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्व से प्रकाशित होते हैं, उसे ब्रह्म कहते हैं अथवा उसे परमात्मा भी कहा गया है।

'सः आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते।' (भागवतपुराण, 2.10.7)

सृष्टि के उत्पत्ति के पूर्व का वर्णन करते हुए 'नासदीयसूक्त' में ऋषि कहता है कि उस समय न असत् था, न सत् था, लोक लोकान्तर भी नहीं थे। न व्योम एवं अन्तरिक्ष ही था तथा उस परे द्युलोक से लेकर सत्यलोकपर्यन्त ब्रह्माण्ड को ढँकने वाला आवरण कहाँ था? इसी सत्य को प्रकट करते हुए ऋषि कहता है कि उस अवस्था में उस अद्वितीय 'परमतत्त्व' के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

न मृत्युरासीदमृतं तर्हि न रात्र्या अहन् आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्न परः किं चनास॥ (ऋ0, 10.129)

इस जगत् की सृष्टि के पूर्व सर्वप्रथम ईश्वर ही सिसृक्षारूप काम की उत्पत्ति हुई। सृष्टि प्रागवस्था का वर्णन करते हुए 'नासदीयसूक्त' में ऋषि कहता है कि तम से आवृत्त तम तक था। इस समय यह सारा दृश्यमान जगत् अज्ञायमान ब्रह्म या सलिल के रूप में अविभागापन्न था और सर्वव्यापी वह सलिल तुच्छ अज्ञान रूप से ढँका हुआ था। जैसे अन्धकार में लीन विश्व अप्रकृत रूप से रहता है, वैसे ही अप्रज्ञात अवस्था थी। ऐसी स्थिति में वह अकेले ब्रह्म की महिमा से उत्पन्न हुआ।

तमासीत्तमसा गूढमग्रे प्रकेतः सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छेनाभ्वादिहितं समर्तताधि यदासीत्तपसस्तन्महिमाजायतैकम्॥ (ऋ0 19.129.3)

* एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी0 जी0 कालेज, अयोध्या (उ0 प्र0)।

62

इन मंत्रों में सृष्टि के हेतु भूत अविद्या, काम और कर्म में इनकी चर्चा की गयी है। अविद्या काम और कर्म इनकी रश्मियाँ तिरछी, नीचे एवं ऊपर चारों ओर से फैल गयी। इनमें से रेतस अर्थात् बीज भूत कर्म को धारण करने वाले भोक्ता जीव उत्पन्न हुए। इनमें से स्वधा अर्थात् अन्य भोग रूप, प्रपंच और निकृष्ट कहलाया और प्रयाति अर्थात् उनका भोक्ता उत्कृष्ट बना।

कामस्तग्रे समवर्ततताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। (ऋ0 10.129.3)

Comment Highlight Underline Strikethro... Draw More tools

ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-5* August- 2021
Anthology : The Research

ऋग्वेद में पर्यावरण चिंतन

Environmental Reflections in Rigveda

Paper Submission: 16/08/2021, Date of Acceptance: 26/08/2021, Date of Publication: 26/08/2021

सुषमा शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
राजा मोहन गर्ल्स पी०जी०
कालेज, अयोध्या उ०प्र०,
भारत

सारांश

ऋग्वेद में पर्यावरण को जब हम देखते है तो पाते है कि समस्त वेद यज्ञ-प्रक्रिया पर आधारित है और यज्ञ प्रक्रिया सम्पूर्ण को संतुलित करती है। पर्यावरण-परि$आन वृड-ल्युट धातु से बनता है। अर्थात् जो चीज हमें आच्छादित करे या प्रवाहित करें, उसका नाम पर्यावरण है। पर्यावरण का अर्थ है- स्वच्छ हवा, पानी और भौगोलिक स्थिति। इससे सिद्ध होता है कि वेदों में प्रतिपादित यज्ञ-प्रक्रिया वातावरण में विद्यमान, हवा पानी को प्रदूषित होने से बचाती है। प्रकृति से सामंजस्य बना रहे इसके लिए हमारे ऋषि-मुनियों ने विभिन्न धर्मशास्त्रीय महत्व रखकर यज्ञ-प्रक्रिया को विभिन्न धर्मशास्त्रीय महत्व यज्ञ-प्रक्रिया को मनुष्य के समक्ष प्रस्तुत किया।

अग्नि में भलीभाँति दी गई हवन-सामग्री की आहुति सूर्य को प्राप्त होती है। सूर्य से वर्षा होती है। वर्षा से अन्न उपजता है। उससे प्रजा प्रसन्न होती है।

अग्नौप्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।

आदित्याज्जायते वृष्टि वृष्टेरन्नं ततः प्रजा॥ मनस्‌ मृति 3/76

वर्षा करने वाला पर्जन्यदेव कैसे औषधियों में जल को स्थापित करता है इसका वर्णन पर्जन्य सूक्त (ऋ0 5.83) में किया गया है-

इस तरह पर्यावरण शिक्षा का इतिहास हमारे प्राचीनतम संस्कृत वाङमय वेदों शिक्षा का इतिहास हमारे प्राचीनतम संस्कृत वाङमय वेदों से आरम्भ होती है। जहा नदियों, वृक्षों, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि को देवता के रूप में पूजा करने का आदेश दिया गया है। यज्ञ, पूजा, प्रकृति प्रेम पारस्परिक सौहार्द जीव-मात्र के प्रति प्रेम और अहिंसा का भा दीर्घ-जीवन की कामना मंगलकार्य भावों के बीच ही वैदिक-समाज का विकास हुआ है। इसलिए वृक्षों को मत काटो, यह मानकर उनकी पूजा की गयी, तुलसी, बट, केला आदि वृक्षों की उनकी उपयोगिता के आधार पर ही पूजा जाता था जिससे कि मानव का पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो सके।

When we look at the environment in the Rigveda, we find that all the Vedas are based on the process of sacrifice and the process of sacrifice balances the whole. The environment-pari$on is made of the metal Vrid-Lute. That is, the thing which covers or flows us, its name is the environment. Environment means clean air, water and geographical location. This proves that the process of sacrifice as enunciated in the Vedas, existing in the atmosphere, saves the air from getting polluted. In order to remain in harmony with nature, our sages and sages, keeping various theological importance, presented the process of yagya to man with different theological significance.

The sacrificial offerings given well in the fire are received by the Sun, It rains from the sun. Others are produced by rain. The people are pleased with him.

Agnoprasthahuti: Samyagadityamupatishte.

Aditya Jayate Vrishti Varshterunnam Taha Prajah, Mansu Mrity 3/76

How Parjanyadev, who gives rain, establishes water in medicines, it has been described in Parjanya Sukta (R. 5.83)-

In this way, the history of environmental education begins with our oldest Sanskrit Vamayya Vedas. Where rivers, trees, earth, water, fire etc. have been ordered to be worshiped as deities. The Vedic society has developed in the midst of yagya, worship, love of nature, mutual harmony, love for all living beings and ego's desire for long life. Therefore, do not cut the trees, believing that they were worshiped, Tulsi, Vat, Banana etc.

मुख्य शब्द- ऋग्वेद, पर्यावरण, यज्ञ प्रक्रिया, इन्द्र सूक्त, प्रकृति।

Keywords: Rigved, Environment, Yojna Process, Indra Sakta, Nature.

ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-5* August- 2021
Anthology : The Research

प्रस्तावना

विश्व साहित्य की प्राचीनतम रचना वेद है। वे ज्ञान के भण्डार एवं आर्य जाति के इतिहास के मूल स्रोत माने जाते है। वस्तुतः वेदों के द्वारा ही प्राचीन भारतीय इतिहास और सभ्यता एवं संस्कृति का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है। वेदों ने न केवल आर्य जाति अपितु समस्त मानव-जाति को सर्वप्रथम ज्ञान का भण्डार दिया है। उस ज्ञान के फलस्वरूप ही मानव ने प्रकृति के अनेकानेक रूपों से सामंजस्य कर उससे अनेक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। वेदों के अध्ययन के महत्व के विषय में शतपथ-ब्राह्मण में लिखा है&"धन से परिपूर्ण पृथ्वी के दान करने से जितना फल होता है। वेदों के अध्ययन से भी उतना ही फल मिलता है। उतना ही नहीं] अपितु उससे भी

ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-7* August- 2021
Innovation The Research Concept

संस्कृत वाङ्मय एवं नारी शिक्षा

Sanskrit Literature and Women's Education

Paper Submission: 10/08/2021, Date of Acceptance: 23/08/2021, Date of Publication: 24/08//2021

सुषमा शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
राजा मोहन गर्ल्स पी०जी० कालेज, अयोध्या,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

स्त्री सृष्टि की अधिष्ठात्री है बिना स्त्री के हम सृष्टि की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। नर एवं नारी को ईश्वर ने समान बनाया है। बौद्धिक या शारीरिक दृष्टि से नारी कहीं भी पुरुष से कम नहीं है। यदि स्त्री को भी समाज में बाल्यकाल से ही पुरुष के समान समस्त सुविधाएं और अधिकार मिले तो वह भी पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर चल सकती है।

बीसवीं शताब्दी में नारी भी अपने अधिकारों के लिए जागरूक हो चली है। इसी जागृति का परिणाम है कि आज नारी सशक्तिकरण की गूंज सर्वत्र व्याप्त है। आज 'मिशन शक्ति' के अन्तर्गत महिलाएं प्रत्येक क्षेत्र में स्वरोजगार के नये-2 आयामों को प्रस्तुत कर रही है। इस नारी सशक्तिकरण का प्रमुख आधार शिक्षा है। शिक्षा के अभाव में नारी कहीं अपने अधिकारों के प्रति सजग ही नहीं हो सकती है।

अध य इच्छेद-दुहिता मे जायेत (बृ030 4.4.18)

वेदों के सहस्रों मंत्रों में नारी की गरिमामयी छवि को अंकित किया गया है। मंत्र द्रष्टा नारी ऋषिकाओं की एक सूची बृहद्देवता के 24 वें अध्याय में (श्लोक 84, 85, 86) में उपलब्ध है। प्राचीनकाल में भी कन्या की शिक्षा पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

दर्शनशास्त्र गूढ़ विषयों में भी स्त्रियां पारंगत थी। शतपथ ब्राह्मण तथा बृहदारण्यो पनिषद् में वाचक्नवी गार्गी का आख्यान अनेकत्र है। मोक्षमार्ग में रुचि दर्शाती हुई मैत्रेयी का भी वर्णन- येनाहं नामृतास्यां किमहं तेन

कुर्याम - उपनिषद्कालीन नारियों का आत्मज्ञान भारत की प्रोज्ज्वल निधि है।

भारतीय साहित्य में सरस्वती को विद्या की अधिष्ठात्री-देवी पद पर प्रतिष्ठित करने की कल्पना यह सिद्ध करती है कि स्त्रियों को धार्मिक दृष्टि से विद्या प्राप्ति में कोई रुकावट नहीं थी सम्पूर्ण वाङ्मय में हम पाते हैं कि वैदिक काल से लेकर महाकाव्य काल तक नारियों की शिक्षा उत्तम कोटि की थी। आज की आधुनिक नारियों ही नहीं बल्कि पूर्व वैदिक, उत्तर वैदिक एवं महाकाव्य कालीन, घोषा, गोगीं, द्रौपदी एवं कैकेयी जैसी नारियों अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर नारी सशक्तिकरण एक प्रथम एक सफल सोपान रही है।

Woman is the master of the universe, without a woman we cannot even imagine the world. God made man and woman equal. In intellectual or physical terms, women are nowhere less than men. If a woman also gets all the facilities and rights like a man in the society from childhood, then she too can walk shoulder to shoulder with men.

In the twentieth century, women have also become aware of their rights. The result of this awakening is that today the echo of women empowerment is prevalent everywhere. Today, under 'Mission Shakti', women are presenting new dimensions of self-employment in every field. The main basis of this women empowerment is education. In the absence of education, women cannot be aware of their rights.

Meaning Ichched-duhita in jayt (Br. 4.4.18)

The dignified image of woman has been inscribed in the thousands of mantras of the Vedas. A list of matra seers female sages is available in the

ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-7* August- 2021
Innovation The Research Concept

24th chapter of Brihaddevata (Verse 84, 85, 86). Even in ancient times there was no restriction on the education of girl child.

Women were well versed in the esoteric subjects of philosophy. In the Shatapatha Brahma and the Brihadarishya Parishad, the narrative of Vachaknavi Gai is numerous. The knowledge of Maitreyi showing interest in the path of salvation- Yenaham Namrtasyan Kimhan Ten

Kuyami - Enlightenment of Upanishad

ब्रह्मा का स्थान ग्रहण करने के योग्य बताया गया है। ऋग्वेद में ही सरस्वती रूपा विदुषी नारी का आह्वान करने वाला निम्न मंत्र दृष्टव्य है-

सरस्वती देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने (10/17/7)

तथा मम पुत्रः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्। (10/156/3)

पुरुष ऋषियों की भाँति स्त्री ऋषिकाओं ने भी वेदों के

National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

SSN: 2454-9177
HSR 2021; 1(37): 101-105
2021 NJHSR
www.sanskritarticle.com

. (श्रीमती) सुषमा शुक्ला
सोसिएट प्रोफेसर,संस्कृत विभाग,
जा मोहन गर्ल्स पी.जी.कालेज,
बाद, अयोध्या, उ.प्र.

रामायण कालीन समाज, एक विवेचना

डॉ. (श्रीमती) सुषमा शुक्ला

संक्षिप्तिका -

संस्कृत साहित्य के आदिकवि वाल्मीकि द्वारा रचित आदित्यकाव्य रामायण एक ऐसा विराट वटवृक्ष है, जो अपनी शीतल छाया से समस्त मानव समाज को संतृप्त करता हुआ सुशोभित हो रहा है। यह एक महाकाव्य है और अवान्तरकालीन सभी महाकाव्यों का उपजीव्य काव्य भी है। रामायण भारतीय समाज में महाकाव्यों की अपेक्षा धार्मिक ग्रंथ के रूप में अधिक सुप्रसिद्ध है। भारत में रामराज्य को सदैव ही एक सामाजिक एवं राजनैतिक आदर्श माना गया है किन्तु वह रामराज्य कैसा था? उसकी क्या विशेषताएं थी? उसको आज भी गौरवपूर्ण स्थान क्यों प्राप्त है? इसे जानने एवं समझाने के लिए हमें उस युग का ऐतिहासिक सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन करना आवश्यक है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह युग भारतीय इतिहास की वह कड़ी है जो वैदिक युग को भारत के आधुनिक युग से जोड़ती है। रामायण काल में सम्पूर्ण देश पर आर्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव नहीं हो पाया था। उत्तर में आर्य प्रभाव जम चुका था एवं दक्षिण में अनार्य संस्कृति विद्यमान थी। वस्तुतः यह युग दो संस्कृतियों के टकराव का युग था। रामायणकालीन समाज वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था पर आधारित था। सम्पूर्ण चार वर्णों में विभक्त था। (अयोध्याकाण्ड 17/15) चारों वर्णों के अपने-अपने अधिकार एवं कर्तव्य थे। रामायणकाल में चारों आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम का सम्पूर्ण समाज में परिपालन दृष्टव्य है। रामायण कालीन समाज की महत्वपूर्ण बात यह है यह कि परिवार को समाज की महत्वपूर्ण इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। समाज में परिवावारिक रीति-रिवाजों को समाज मान्यता देता था। आदिकवि ने राम के गृहस्थ जीवन का जो आदर्श रामायण में लिखा है, वह समाज के सभी वर्गों के लिए अनुकरणीय एवं चिरस्मरणीय बना रहेगा। रामायण युग में राजागण जनमत का अत्यधिक ध्यान रखते थे। आर्य, वानर एवं राक्षस राजा भी पहले से जनमत को जानकर उसके अनुरूप अपने क्रियाकलापों को नियंत्रित करते थे। अतः राजा के प्रति प्रजा क्या विचार रखती है? यह धारणा सर्वोपरि थी। (उत्तरकाण्ड 43-5 5-10) राम जैसे शक्तिशाली राजा भी लोकनिन्दा की अवमानना न हो इसी कारण निर्दोष सीता का परित्याग कर बैठे। अतः यह सिद्ध होता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु राजा ही था। तथा उसका कर्तव्य अपने राज्य में ऐसी व्यवस्था स्थापित करना था जिसमें नागरिक इहलौकिक एवं पारलौकिक विकास कर सके। समाज के उच्च से लेकर निम्नतम वर्गों पर रामायण का इतना व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ा है कि इसकी तुलना में किसी भी अन्य साहित्यिक या धार्मिक कृति को प्रस्तुत नही किया जा सकता। इस ग्रंथ ने ही लोगों के हृदय में राम-राज्य की स्वर्णिम कल्पना को अंकित किया है।

संस्कृत साहित्य के आदिकवि वाल्मीकि द्वारा रचित 'आदिकाव्य' रामायण एक ऐसा विराट वटवृक्ष है जो अपनी शीतल छाया से समस्त मानव-समाज को संतृप्त करता हुआ सुशोभित हो रहा है। यह एक

Correspondence:
. (श्रीमती) सुषमा शुक्ला
सोसिएट प्रोफेसर,संस्कृत विभाग,
जा मोहन गर्ल्स पी.जी.कालेज,
बाद, अयोध्या, उ.प्र.

Generative summary Continue

By using AI tools, you agree to the Generative AI User Guidelines.

UJAS, JUNE 2008, Vol 2 (2), 111-115

वैश्वीकरण का भारतीय अर्थ व्यवस्था पर प्रभाव

सुषमा शुक्ला*

वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण का शाब्दिक अर्थ देश की तमाम आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संबंधों के अन्तर्गत अन्तर्संसम्बन्धों की स्थापना करना है। सम्पूर्ण विश्व में आर्थिक सुधार, उदारीकरण, बाजार-व्यवस्था एवं वैश्वीकरण आदि अनेक उपनामों से आधुनिक विश्व-व्यवस्था के निर्माण की अनेक प्रक्रियाएं सक्रिय हैं। फ्रायडमैन के अनुसार -वैश्वीकरण यथार्थ में बाजारों, वित्त और प्रौद्योगिकी का व्यापक एकीकरण हैं । इस एकीकरण में विश्व वृहद आकार से सूक्ष्म आकार का रूप ग्रहण कर रहा है, जिससे संसार के एक कोने से दूसरे कोने में कम समय तथा कम मूल्य में हम पहुँच सकते हैं। कुछ विद्वान तीव्र आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के रूप में वैश्वीकरण को देखते हैं, जिसका सम्बन्ध आधुनिक औद्योगिक क्रान्ति एवं तकनीकी आविष्कारों से है। विशेष रूप से तकनीकी आविष्कारों में 'इण्टनेट' ने वैश्विक सम्बन्धों तथा सम्पर्कों की तीव्रता को अधिकाधिक बढ़ा दिया है। वैश्वीकरण के बाजार एवं उपभोक्ता की प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान की है। इलेक्ट्रानिक मीडिया का प्रसार एवं उपग्रह के माध्यम से प्रसार-सुविधा, सूचना तकनीकी को घर-घर पहुँचने से राष्ट्रों की भौगोलिक सीमाओं को अर्थहीन बना दिया है। दूरियों का अब कोई महत्व नहीं रहा। सम्पूर्ण संसार ग्लोबल गाँव (Global Village) बन गया है ।

वैश्वीकरण अब एक यथार्थ तथ्य है, विश्व समाज में इसकी प्रक्रिया चल पड़ी है, जो कि अब रूकती नहीं दिखाई पड़ती है। इस व्यवस्था का मुख्य-उद्देश्य कीमत का सही निर्धारण एवं बाजार में उतार-चढ़ाव के आधार पर परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल अथवा लाभदायक बनाना है। इस व्यवस्था का आशय है कि देशों को विश्व के साथ जोड़ना अथवा इसी प्रकार का इसी प्रकार का बनने या बनाने का प्रयास करना जैसा कि विश्व है।

वैश्वीकरण आज के युग का सबसे चर्चित विषय है। यह एक बहुआयामी और खुली प्रक्रिया है। यह एक व्यापक और बृहद सामाजिक प्रक्रिया है, इसमें वस्तुओं सेवाओं और पूँजी के आदान-प्रदान का समन्वय है। इन्द्रा और रोसाल्डो के अनुसार-वैश्वीकरण एक जटिल प्रक्रिया हैं, इसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक सम्बन्धों के माध्यम से विश्व अत्यधिक अन्तर्सम्बन्धित हो रहा है।

इसमें वैश्विक अन्तर्सम्बद्धता का तीव्रीकरण आन्दोलन तथा मिश्रण से परिपूर्ण विश्व सम्बन्ध ओर सम्पर्क चिरस्थायी, सांस्कृतिक अन्तर्क्रियाएं और विनिमय पर बल दिया जाता है। हात के अनुसार-नये स्थान और समय में संस्कृतियों और समुदायों के एकीकरण और उससे जोड़ने वाले तथा दुनिया को एक वास्तविकता और अधिकाधिक अन्तर्सम्बन्धित बनाने वाले अर्थ में वैश्वीकरण को देखा जा सकता है। अर्थव्यवस्था एवं प्रौद्योगिकियों का एकीकरण है, इसमें विश्व के माध्यम से छोटे से रूप में ऐसा संकुचन हो रहा है, जिससे हम सम्पूर्ण विश्व के हर कोने में इतनी जल्दी और सस्ते में पहुँच जायें जितने में पहले कभी सम्भव नहीं था। प्रो. आनन्द कुमार के अनुसार 'वैश्वीकरण की प्रक्रिया समय और दूरी का राष्ट्र राज्य से आगे संकुचन उत्पन्न करती है। यह एक बहुआयामी

* रीडर : संस्कृत विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी.- कालेज, फैजाबाद ।

Generative summary Continue

By using AI tools, you agree to the Generative AI User Guidelines.

National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2021; 1(39): 74-78
© 2021 NJHSR
www.sanskritarticle.com

बौद्धकालीन वर्ण व्यवस्था, एक विवेचन

डॉ. (श्रीमती) सुषमा शुक्ला

डॉ. (श्रीमती) सुषमा शुक्ला
एसोसिएट् प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
राजा मोहन गर्ल्स पी.जी.कालेज,
अयोध्या, उ.प्र.

प्राचीन भारतीय परम्परा में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चार प्रमुख वर्गों अथवा वर्णों की व्यवस्था निर्धारित की गयी है। इसमें सर्वप्रथम इसे दैवीय-व्यवस्था मानने का प्रमाण ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (10/90/12) में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में चारों वर्णों की उत्पत्ति विराट्पुरुष के चारों अंगों में प्राप्त होती है। वस्तुतः वर्ण व्यवस्था का मूलतः सम्बन्ध तीनों वर्णों क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य की उत्पत्ति के लिए दैवीय सिद्धान्त की तुलना में गुण और कर्म से अधिक था। वस्तुतः गुण एवं कर्म ही इस व्यवस्था की उत्पत्ति में प्रधान तत्व बताये गये है। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में समाज में कुल तीन ही वर्ग अथवा वर्ण थे। पुरोहित (ब्राह्मण) योद्धा (क्षत्रिय) तथा सर्वसाधारण जनता (वैश्य)। इस अवस्था में वर्ण-चेतना जैसी कोई बात नहीं मिलती क्यों एक मंत्र में ऋषि कहता है, वह इन्द्र से प्रार्थना करता है कि वह उसे 'जन' का 'राजा' बना दे या सोमपायी ऋषि बना दे और नहीं तो उसे धन-दौलत सम्पन्न बना दे (यजुर्वेद 9.22) इस प्रकार ऋग्वैदिककाल में सामाजिक वर्ग विभाजन की स्वरूप या तो बन नहीं पाया था या बन रहा था जो मात्र सामाजिक और आर्थिक-संगठन की सुविधा के लिए था। आरम्भ में व्यवसाय भी पैतृक नहीं थे और उनमें वैवाहिक सम्बन्धों के लिए कोई सर्वमान्य नियम भी नहीं थे। किन्तु कालान्तर में वर्ण व्यवस्था की दिशा में पहला महत्वपूर्ण कदम उसे माना जा सकता है, जिसमें आर्यों ने दास और दस्युओं को अपनी सामाजिक व्यवस्था में रखकर उन्हें अपने से परे मानना प्रारम्भ कर दिया। आर्यों ने दासों को अपने सामाजिक ढांचे से परे मानना सम्भवतः इसलिए कर दिया क्योंकि उनका वर्ण अर्थात् रंग काला था तथा वे आर्येतर संस्कृति के लोग थे। (यो दास वर्णमधरं गुहाकः) इन्द्र सूक्त 12/12/4

आर्य लोग अपने को 'द्विज' अर्थात् दो बार जन्म लेने वाला प्रथम भौतिक जन्म, द्वितीय संस्कार-ग्रहण रूपी जन्म कहते थे, जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सम्मिलित थे। तत्पश्चात् इनसे इतर तत्कालीन अन्य लोगों को एक पृथक 'शूद्र' वर्ग में परिगणित कर लिया।

उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र को उनके व्यवसाय अथवा वंशानुगत सामाजिक वर्ग के रूप में स्वीकार कर लिया गया था।

महाभारत के एक उल्लेख में दृष्टव्य है कि पहले केवल ब्राह्मण ही थे बाद में चालक विभिन्न कर्मों के कारण अनेक वर्ण हो गये।

"न विशेषेऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥"

Correspondence:
डॉ. (श्रीमती) सुषमा शुक्ला
एसोसिएट् प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
राजा मोहन गर्ल्स पी.जी.कालेज,
अयोध्या, उ.प्र.

स्वयं भगवान कृष्ण ने भी कहा है कि मैंने चातुर्वण की सृष्टि गुण एवं कर्म के आधार पर की है-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।

महर्षि मनु ने चारों वर्णों का विस्तृत विवेचन मनुस्मृति में किया है। उन्होंने भी अनेक स्मृतिग्रंथों की तरह ही ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को द्विज की श्रेणी में एक शूद्र को उससे भिन्न। उन्होंने भी इस चतुर्विध वर्ण-व्यवस्था को वेद से ही सिद्ध माना है। इन चारों वर्णो में ब्राह्मण की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए उन्होंने कहा है कि जीवों में प्राणधार, प्राणधारियों में बुद्धिमान, बुद्धिमानों में मनुष्य और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ होते है। (मनु0 1.96) वे कहते है कि 'ब्राह्मण की उत्पत्ति ही धर्म का अविनाशी शरीर है। वह धर्म के लिए उत्पन्न हुआ है और उसे आत्मज्ञान में मोक्ष की प्राप्ति होती है। वह पृथ्वी पर श्रेष्ठ इसलिए है क्योंकि वह सभी प्राणियों के धर्म-समूह का रक्षक होता है। श्रेष्ठ होने के कारण पृथ्वी का सारा धन उसी का है। अन्य जातियां जो भी भोजन आदि करती है, वह ब्राह्मणों की कृपा से ही करती है। (मनु 1.98-101)। जाति की

विक्रय द्वारा जीविका चला सकता है, परन्तु वह कभी ब्राह्मण की जीविका की अभिलाषा न करें। यज्ञ करना, पढ़ाना और दान लेना क्षत्रिय के लिए पूर्णतया वर्जित है। (मनु. 10, 95 तथा 10, 77)

यदि हम वैदिककाल का विवेचन करें तो पाते हैं कि ब्राह्मणों के वर्चस्व के विरोध में ही बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का उदय हुआ। बौद्ध धर्म की उत्पत्ति आकस्मिक नहीं बल्कि वैदिक युग के पुंजीभूत विचारों के सत्यान्वेषण का प्रतिफल था। यह धर्म ऐसे काल में उत्पन्न हुआ जबकि मनुष्य की जिज्ञासा युगपुरातन के संचित विचारों के आवरण को चीर कर प्रत्येक वस्तु की वास्तविकता को देखना चाहती थी। वस्तुतः बौद्धर्थ ब्राह्मणधर्म के घोर कर्मकाण्ड की बलवती प्रतिक्रिया थी। वस्तुतः बौद्धर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, संघर्ष का युग था। जिसमें ब्राह्मण जोकि समाज मस्तिष्क था जो पठन-पाठन तथा यजन-याजन द्वारा समाज की बौद्धिक एवं धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। इन्हीं उदात्त कर्मों के कारण उसे सम्पूर्ण समाज अनन्य श्रद्धा-भक्ति और दया-दान का अधिकारी समझता था। द्वितीय वर्ग क्षत्रियों का था जो शासक थे। वह समाज

National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2021; 1(37): 111-113
© 2021 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. (श्रीमती) सुषमा शुक्ला
एसोसिएट्ट प्रोफेसर,संस्कृत विभाग,
राजा मोहन गर्ल्स पी.जी.कालेज,
फैजाबाद, अयोध्या, उ.प्र.

वेदों में नारी की स्थिति, एक विश्लेषण

डॉ. (श्रीमती) सुषमा शुक्ला

विश्व की प्राचीनतम सारस्वत कृति एवं ज्ञान-प्रसि के मूल-उद्गम वेद ही है। यह सर्वविदित है। वेदों में ही प्राचीन भारतीय समाज का तत्कालिक स्वरूप भी चित्रित है। समाज के दो प्रधान घटक नर एवं नारी का भी चित्रण उनमें किया गया है। आज की आधुनिक नारियों का स्वरूप तो हमारे समक्ष है ही, किन्तु उनका प्राचीनतम रूप क्या था, इसकी जानकारी हमें वैदिक साहित्य का अवलोकन करने पर ज्ञात हो सकता है। वैदिक साहित्य का अनुशीलन करने पर तत्कालीन समाज में नारी के महत्त स्थान का बोध होता है। वैदिक साहित्य में नारी कहीं पुत्री, कही भगिनी, कहीं पत्नी तथा कहीं माता रूप में दृष्टि गोचर होती है। उपर्युक्त के अतिरिक्त यह साहित्य में ऋषिका जैसे गुरुतापूर्ण पद पर भी आसीन दृष्टि गोचर होती है। नारी के लिए प्रयुक्त दुहितृ, गोधा-मातर, जनिनी, जामिजाया-वधू अम्बा इडा-काम्मा, चन्द्रा आदि वैदिक शब्द उसके, वैशिष्ट्य को द्योतित करते हैं। वेदों में नारी की स्थिति उद्योलिखित रूप में देखी जा सकती है-

1.पुत्री-

नारी का प्राचीनतम रूप हमें ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद में नारी की श्रेष्ठ स्थिति का परिचय प्राप्त होता है। इस काल की कन्याओं का बालकों की भांति ही उपनयन आदि संस्कार होते थे और वे सन्ध्यापूजन की विधि भी करती थी। बाल-विवाह की प्रथा न होने से यौवनावस्था में पदार्पण करने के पूर्व ही उनको शिक्षा प्राप्ति का पूर्ण अवसर प्राप्त था। इस युग में कन्याओं को विदुषी बनाने की कल्पना इस बात से भी पुष्ट होती है कि विदुषी कन्याओं की प्राप्ति हेतु विशिष्ट योजनांए सम्पादित करते थे। (अथ य इच्छेत् दुहिता में पण्डिता जायेत.....) (वृ.उ. 6/1/17) ऋग्वेद में दुहिता के महनीय महत्व की उद्घोषणा है। ('मम पुत्रा शत्रूहणोऽथो में दुहिता विराट') (ऋ. 10/159/3)। अथवा ऋषि ने भी कन्या के यज्ञ एवं वर्चस्व को स्वीकार किया है। ("ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।") (अथर्व 11/5/18) अर्थात् कन्या स्वंय पति का वरण कर सकती है। ऋग्वैदिक काल में नारियां प्रतिदिन यज्ञ करती थीं (ऋक् 5.28.1)

वैदिक युग में भाईयुक्त कन्या का पैतृक-सम्पत्ति से भाग प्राप्त नही होता था। (न जामये तान्वो रिक्थ मारैक्) ऋ 3.31.2) किन्तु भाई के अभाव में जब पुत्री अपने पुत्र द्वारा माता-पिता का पिण्डदान करवाती थी तो वह अपने पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी। (अभ्रातेव पुंस एति प्रतीचि गर्तारुमिव सनये धनानाम्) (ऋ. 1. 124. 7)

किन्तु जो कुमारी पुत्री अविवाहित रहकर पिता के घर में जीवन-यापन करती थी वह पिता के सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी। (अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानदा सदसस्त्ववामि में भगम्) (ऋ. 2. 17. 7)

Correspondence:
डॉ. (श्रीमती) सुषमा शुक्ला
एसोसिएट्ट प्रोफेसर,संस्कृत विभाग,
राजा मोहन गर्ल्स पी.जी.कालेज,
फैजाबाद, अयोध्या, उ.प्र.

20

80

2.भगिनी :

किन्ही सूक्तों में स्त्री देवता एवं पुरूष देवता के मध्य भगिनी स्वरूप का भी चित्रण प्राप्त होता है। (ऋ.1/123/5.) सगोत्र विवाह का निषेध होने के कारण ऋग्वेद में यमी (यम) भाई से विवाह का प्रस्ताव रखती है। इस पर यम ने स्पष्ट रूप से कहा कि तुम मुझसे भिन्न किसी शक्तिशाली समर्थ पुरूष को पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा करो। (उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छ-स्वसुभगेयतिंमता) (ऋ.10/10/10)।

हुए चित्रित किया गया है। अतः संहिताओं में नारियों की समुन्नत - अवस्था को देखने के पश्चात् संहितेतर साहित्य अर्थात् - ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् साहित्य में नारियों की स्थिति का अवलोकन करने पर ब्राह्मण साहित्य में पत्नी तथा स्त्री-विषयक ऐसे अनेक संदर्भ प्राप्त होते हैं। जिनमें नारियों की गरिमा परिलक्षित होती है। पत्नी पति की अर्धांगिनी मानी गयी है। (अर्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी) (तैति. ब्रा. 3/3/3/5) शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ईश्वर केवल पति द्वारा समर्पित हवि को स्वीकार नहीं करता है, वरन् दम्पति की

मानवाधिकार एवं नारी की सामाजिक स्थिति

—डॉ० सुषमा शुक्ला

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य को कुछ शक्तियाँ तो प्रकृति-प्रदत्त है किन्तु कुछ शक्तियाँ अधिकार के रूप में समाज या राज्य से प्राप्त करनी पड़ती है। इन्हीं शक्तियों या अधिकारों को हम मानवाधिकार के रूप में ग्रहण करते हैं। लास्की के अनुसार— ''अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ हैं जिनके अभाव में सामान्यतया कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता है।''

मानव ने जब धरती पर सर्वप्रथम आँखें खोलीं तो उसे माँ के रूप में नारी की गोद ही मिली। अतः जब मानवाधिकार की बातें होती हैं तो नारी के अधिकार की चर्चा करना प्रथमतः महत्वपूर्ण हो जाता है। नारी के यही अधिकार ही आज के युग में महिला सशक्तीकरण के मुख्य आधार हैं। क्योंकि किसी भी देश के सांस्कृतिक विकास का निर्माण नारियों पर ही अधिक केन्द्रित होता है। तभी तो 'नेपोलियन बोनापार्ट' ने कहा था 'तुम मुझे एक योग्य माता दे दो, मैं तुम्हें एक योग्य राष्ट्र दूँगा।' अतः नारियों के अधिकार या शक्तियों की जब बात आती है तो हम सर्वप्रथम वैदिक युग पर दृष्टिपात करते हैं क्योंकि विश्व की प्राचीनतम 'सारस्वत कृति और ज्ञान-प्राप्ति के मूल उद्गम वेद ही हैं। यह सर्वविदित है। वेदों में प्राचीन भारतीय समाज का तत्कालीन स्वरूप भी उन्हीं में चित्रित है। समाज के दो प्रधान घटक नर एवं नारी का चित्रण भी उन्हीं में किया गया है। आज की आधुनिक नारियों का स्वरूप तो हमारे समक्ष है ही, किन्तु उनका प्राचीनतम रूप क्या था। इसकी जानकारी हमें वैदिक वाङ्मय का अवलोकन करने पर ही ज्ञात हो सकता है। वैदिक-साहित्य का अनुशीलन करने पर तत्कालीन समाज में नारी के महत्वपूर्ण स्थान का बोध होता है। वैदिक वाङ्मय में नारी कहीं भगिनी, कहीं पुत्री, कहीं पत्नी एवं कहीं माता के रूप में दृष्टिगोचर होती है। परन्तु अब के अतिरिक्त वह साहित्य में ऋषिका जैसे गुरुतापूर्ण पद पर भी आसीन दृष्टिगोचर होती है। नारी के लिए प्रयुक्त दुहितृ, योषा-मातर-जनिनी, जाया-पत्नी-अम्बा-अदिति-काम्या-चन्द्रा आदि शब्द उसके वैशिष्ट्य को द्योतित करते हैं।

वेदकालीन नारी का प्राचीनतम रूप हमें ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद में नारी की श्रेष्ठ स्थिति का परिचय मिलता है। इस काल की कन्याओं का बालकों की भाँति ही उपनयन आदि संस्कार होते थे वे सन्ध्यावन्दन की विधि भी पूरी करती थी। बाल-विवाह की प्रथा न होने से यौवनावस्था में पदार्पण करने के पूर्व ही उनको शिक्षा-प्राप्ति का पूर्ण अवसर प्राप्त था। उस समय अनेक विदुषी नारियों (ऋषिकाओं) ने अनेक सूक्तों की रचनाएँ भी की। ब्रह्मवादिनी घोषा ने दशम मण्डल के 39वें एवं 40वें सूक्तों का साक्षात्कार किया था। इन्द्रदेव की पत्नी इन्द्राणी ने ऋग्वेद के दशम मण्डल के सूक्त की रचना की। अपाला एवं रोमशा के साथ सूर्यपुत्री सूर्या ने भी मंत्रों की रचना में योगदान किया। ऋग्वेद के 151वें सूक्त की ऋषिका पुलोमपुत्री शची कही गयी है। अपने पति अगस्त्य के साथ लोपामुद्रा ने 179वें सूक्त का दर्शन किया। तत्कालीन नारी अपनी उपार्जित उपयोगी विद्या से सन्तान, परिवार निकट के पर्यावरण एवं समाज को पूर्ण लाभ प्रदान करती थी। नारी का वैदिक कालीन समाज में अत्यधिक सम्मान था और उसे पारिवारिक संगठन में पूर्ण स्वतन्त्रता थी। संहिताओं में नारी की पारिवारिक स्थिति अधोलिखित रूपों में देखी जा सकती है—

*रीडर, संस्कृत विभाग एवं परियोजना अधिकारी, राष्ट्रीय सेवा योजना, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कालेज फैजाबाद

(1) पुत्री— यद्यपि वैदिक-संहिताओं में स्त्रियों के मातृ एवं पत्नी रूप को ही उत्कृष्ट-रूप में चित्रित किया गया है, किन्तु उनमें 'मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्' (ऋ- 10/159/3)। इस मन्त्र में दुहिता के महनीय महत्व की उद्घोषणा है। अथर्वा ऋषि ने अथर्ववेद में कन्या के यश एवं वर्चस्व को स्वीकार किया है— ''ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्'' अर्थात् कन्या स्वयं पति का वरण कर सकती है (अथर्व.-10/3/20, 12/1/25, 11/5/18)।

(2) भगिनी— किन्हीं सूक्तों में स्त्री-देवता एवं पुरुष-देवता के बीच भगिनी स्वरूप का चित्रण किया गया है (ऋ. 1/123/5)।

(3) पत्नी— वैदिक-संहिता में नारी परिवार की केन्द्र-बिन्दु मानी गयी है। 'गृहिणी गृहमुच्यते' की भव्य भावना का मूल-वैदिक साहित्य में परिलक्षित होता है। वैदिक परिवार का मंगल, सौभाग्य और कल्याण सब कुछ पत्नी पर निर्भर करता था।

(4) माता— मातृत्व-रूप में वैदिक महिला पूजनीया थी। 'मधुमेयं पृथिवी महीनम्' (ऋ 1/14/33) तथा माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः (अथर्व. 12/1/12) के द्वारा मातृरूप में उसकी पग-पग पर संस्तुति की गयी है।

संहिताओं के मनन-चिन्तन से ज्ञात होता है कि वैदिकयुगीन नारियाँ सुशिक्षित एवं ज्ञान सम्पन्न होती थीं। वेद-विद्याओं में पारंगत होने के साथ-साथ वे स्त्रियाँ यज्ञादि कर्मों में निपुण, शास्त्रार्थ में पटु एवं मन्त्र-द्रष्टा होती थी। वेद में अनेक मन्त्र-द्रष्टा ऋषिकाओं की चर्चा है जिनमें विश्ववारा, आत्रेयी (ऋ. 5/28), अपाला (ऋ. 8/91), घोषा कक्षीवती (ऋ. 10/39-40) इत्यादि प्रमुख थीं।

ब्राह्मण साहित्य का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि ब्राह्मण-संहिता में पत्नी तथा स्त्री-विषयक ऐसे अनेक संदर्भ प्राप्त होते हैं जिनसे नारियों की गरिमा परिलक्षित होती है। नारी 'सावित्री' संज्ञा से समलंकृत की गयी है। (स्त्री सावित्री- जै. ब्राह्मण 4/27/17) ऐतरेय ब्राह्मण 'जाया' को 'गार्हपत्य अग्नि' के रूप में स्वीकार करता है (जाया गार्हपत्यो अग्निः (ऐ.ब्रा. 8/24) पत्नी पति की अर्धाङ्गिनी मानी गयी है (अर्धो वा एष आत्मनः यद् पत्नी, तैत्ति. ब्रा. 3/3/3/5) शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ईश्वर केवल पति द्वारा समर्पित हवि को स्वीकार नहीं करता है, वरन् दम्पति की दी हुई हवि ही उसे स्वीकार्य होती है (श.ब्रा. 5/1/6/10)। शतपथ ब्राह्मण में एक आख्यान के माध्यम से बहुपत्नीत्व की आलोचना की गयी है (श.ब्रा. 5/2/2/10, 13/4/1/7) संहिता एवं ब्राह्मण साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि ब्राह्मणकालीन नारियाँ अधः स्थिति को प्राप्त हो रही थी। (कृपणं दुहिता, ऐ.ब्रा. 7/3) जहाँ स्त्री को सबला कहा जाता था वहीं श.ब्रा. 2/5/2/36 में उसे 'अवीर्या वा स्त्री' कहा गया है। ब्राह्मण ग्र. में स्त्रियों को दायभाग का अनधिकारी कहा गया है (तै. ब्रा. 6/5/8/2)।

इसके विपरीत उपनिषद् कालीन नारियों की समुन्नत अवस्था का परिचय मिलता है। बृहदारण्यक उपनिषद् भारतीय इतिहास के उस महत्वपूर्ण युग का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें नारियाँ दार्शनिक-सभाओं में भाग लेती थी और जीवन के आध्यात्मिक-तत्वदर्शन सम्बन्धी विषयों पर शास्त्रार्थ करती थी। ब्रह्मवादिनी नारियाँ उपनिषद् युग की विशिष्टता के रूप में जानी जाती है। दो ऐसी ही ब्रह्मवादिनी नारियाँ विदुषी के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। उनमें से एक उस युग के महान् तत्ववेत्ता याज्ञवल्क्य ऋषि की धर्मपत्नी 'मैत्रेयी' एवं दूसरी उनकी

National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2020; 1(30): 143-145
© 2020 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. सुषमा शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
राजा मोहन गर्ल्स पी.जी.कालेज,
फैजाबाद, उ.प्र.

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में संगीत (वैदिककाल)

डॉ. सुषमा शुक्ला

सम्यक् प्रकार से गाया हुआ गान संगीत कहलाता है। (सम्यक् प्रकारेण गीयते इति संगीतः।) सामान्यतः यह गान कला का बोध करता है किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से संगीत से अभिप्राय गान, वाद्य एवं नृत्य तीन कलाओं के समुच्चय से है गीत वाद्य तथा नृत्यं त्रयं संगीतम् उच्यते। संगीत रत्नाकर के अनुसार गीत, वाद्य तथा नृत्य इन तीनों के समुच्चय को संगीत कहते है। गायन का सम्बन्ध वाद्य से है और इन दोनों का अर्थात् गीत एवं वाद्य का संबंध नृत्य से है। अतः इन तीनों के समाहार को संगीत कहना ही उपयुक्त है।

संगीतकला का विकास वैदिककाल में पूर्णतया दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद के प्रत्येक मंत्र का जहाँ ऋषि, देवता व छन्द का उल्लेख है वहाँ उसके स्वर का भी उल्लेख अवश्य ही प्राप्त होता है। इसका कारण यही था कि मंत्र समीचीन स्वर तथा वर्ण से विहीन होने पर अनिष्ट का उत्पादक माना जाता था।

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो व मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।

अतः वर्णोच्चारण का संगीत तथा साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। वर्णोच्चारण के प्रमुख रूप से निम्न तीन स्थान माने गये है। उरस्, कण्ठ तथा शिरस्। इन्हीं तीनों से उद्भूत होने वाले स्वरस्थान 'सवन' कहलाते हैं। इन्हीं को क्रमशः संगीत में मन्द्र, मध्य एवं तार संज्ञा से जाना जाता है। (पा. शि. 7/8) वेद के पुरुष सूक्त में कहा गया है कि 'उस सर्वहुत यज्ञ में चाएं व सामगीत उत्पन्न हुए।' 'तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः च सामानि जज्ञिरे।' ऋग्वेद 10/90/9 पुरुष सूक्तका। पुरुष सूक्त परमात्मा के मुखारविन्द से उद्भूत है। अतः सामगीत की उत्पत्ति परमात्मा से हुई है। सामवेद का उपवेद गान्धर्ववेद है। संगीत कला का विकास गान्धर्वा द्वारा हुआ था अतः उसे गान्धर्वविद्या तथा उसके ग्रन्थ को गान्धर्व वेद भी कहा गया है। वैदिक साहित्य में गीतों के भी उल्लेख मिलते हैं। जिस समय सात स्त्रियां मिलकर इन्द्र के लिए सोमरस निकालती थी उस समय स्त्रियां गीत गाती थी। (ऋ. 10/146/2, 3/66/8) सामगीत दैवी गीत होते थे जो कि संगीत शास्त्र के अनुसार गाये जाते थे। पद्यात्मक गीतों को 'गाथा कहा जाता था'। (ऋ. 1/167/6)

गाथा नामक गीत सोमरस निकालते समय गाये जाते थे। गाथा गाने वालों को 'गाथिन' कहा जाता था। ऋग्वेद में गाथपति, गाथानी शब्दों का भी उल्लेख मिलता है। गाथा गाने के अर्थ में 'ऋजुगाथा' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है। ऐतरेय, ब्राह्मण में ऋक् व गाथा के अन्तर को समझाते हुए कहा गया है कि 'ऋक' 'दैवी' तथा 'गाथा' 'मानषी' है। दानस्तुतियां भी दान करने वालों की प्रशंसा में पायी

Correspondence:
डॉ. सुषमा शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
राजा मोहन गर्ल्स पी जी कालेज

सामंजस्य श्रेयस्कर माना गया है (पृ. उपनिषद 3,22) 'ऋक' गीत का बहिरंग है और साम उसी का अन्तरंग है- छान्दो 3/1/5 छान्दोग्य के अनुसार साम का आधार स्वर है तथा स्वर का आधार है प्राण। (छन्दो 8/4)

ऋग्वेद में संगीत के विभिन्न वाद्ययन्त्रों का भी उल्लेख प्राप्य है। 'दुन्दुभि' का वर्णन अनेकशः हुआ है। जिसका उपयोग युद्ध और शान्ति के समय होता था। (ऋग्वेद 1/28/5) इन्द्र के युद्धों में दुन्दुभि का बजाया जाना उल्लिखित है। 'कर्करी' बासुरी के समान एक वाद्ययन्त्र था। वीणा के समान एक अन्य वाद्य था जिसको 'क्षोणी' कहते थे। यह मरुतों के पास होता था (ऋग्वेद 2/35/13) ऋग्वेद के एक मंत्र में 'वाण' बजाये जाने का उल्लेख है। 'वाण' के दो अर्थ सम्भावित थे। एक बांसुरी तथा दूसरा वीणा। सायण ने इसका अर्थ 'वीणा विशेषम्' किया है। आघाति नामक एक वाद्य का भी उल्लेख है जिसे यज्ञों के अवसर पर बजाया जाता था। मैक्डानल व कीथ आदि विद्वान 'आघाति' का अर्थ मृदंग मानते है। जिसे नृत्य के समय बजाया जाता था। वैदिककाल में नृत्यकला का भी पूर्ण विकास दृष्टिगोचर होता है। वैदिक युग में स्त्री व पुरुष दोनों ही नृत्य करते थे। अथर्ववेद में पृथिवी सूक्त में मातृभूमि की वन्दना करते हुए गान के साथ नृत्य की महत्ता का भी वर्णन किया गया है। 'यस्या गायन्ति भूम्यामर्त्याश्चैत्सवा'।। गीत, वाद्य एवं नृत्य से प्राप्त आनन्द को अलौकिक माना गया है। कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता को संगीत के दिव्यानन्द का प्रलोभन देते हुए कहते हैं-

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामान्छन्दतः प्रार्थयस्व।

का चित्र भी अंकित था। (विष्णु पु. 2/10/20)।

कुछ उदाहरणों से प्रतीत होता है कि कन्याएँ गायन एवं वादन तथा नृत्यकला में प्रवीण होती थीं। कौपीतकि ब्राह्मण में एक कुमारी गन्धर्व-गृहीत अग्नि-होत्र में पारंगत बताई गयी है (कौ. ब्रा. 2/9) तैत्तिरीय संहिता और मैत्रायणी संहिता में कन्याओं की संगीत-नृत्य में अभिरुचि का भी वर्णन किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में मिलता है कि स्त्रियाँ सामगान करती थीं तथा उनमें मन्त्रों के शुद्धोच्चारण तथा स्वरों के उचित आरोह एवं अवरोह की सामर्थ्य होती थी।

नचिकेता द्वारा मृत्यु के अनन्तर क्या होता है? यह तृतीय वर मांगने पर यमाचार्य नचिकेता को अनेक प्रकार का प्रलोभन देते हुए सांसारिक भोग-ऐश्वर्यों की ओर खींचते हुए कहते हैं-'मृत्युलोक में जो भी दुर्लभ कामनाएँ हैं सबको बेखटके भोग। ये स्त्रियां हैं, रथों सहित गाजे-बाजे सहित। ऐसी स्त्रियां मनुष्यों को प्राप्त नहीं हो सकतीं। मैं इन्हें तुझे दूँगा। इनके साथ सुख भोग परन्तु हे नचिकेता 'मरण' के विषय में प्रश्न मत कर।

ओ३म् का उच्चारण इन पञ्च तत्वों में 'आकाश' तत्व की वृद्धि करता है जिससे में आकाश तत्व की प्रधानता होने लगती है। जिससे व्यक्ति के शरीर के गुंजन कक्ष पुष्ट होते हैं जिससे हमें अपने कण्ठ के मूल नाद ही नहीं बल्कि सहायक नादों की भी स्पष्ट अनुभूति होने लगती है एवं हम उन्हें एक-दूसरे से पृथक-पृथक बोलने, सुनने एवं समझने में सक्षम होने लगते हैं। आकाश तत्व ही ध्यान, एकाग्रता का भी मूल साधन है। आकाश तत्व की अतिशय वृद्धि हमें सहस्रासार

Generative summary
Continue
By using AI tools, you agree to the Generative AI User Guidelines.

काव्य रघुवंश में भी रघु दिग्विजय में
दृष्टव्य है। हमारी भारतीय संस्कृति
से ओतप्रोत है एवं भारतीय संस्कृति
, जीवन-मूल्य, स्वरूप, त्याग, तपस्या,
य, अहिंसा, परोपकार, मानवता का
तिनिधित्व करते हैं - 'यत्र विश्वं
भी होगी। वेदों में वर्णधर्म सम्बन्धी
ट की व्यवस्था से जुड़ना और परस्पर
न की वैश्विक परिकल्पना का मूर्त रूप

वार, जाति, राष्ट्र, दलित आदि रूप
। यज्ञीय भावना से ओत-प्रोत दायित्व
सर्वत्र दृष्टव्य है। यही यज्ञीय भावना
ी ऋषि परम्परा समस्त मानव जाति के
ी है वैदिक देवता राष्ट्रीयता की इसी

ामयाः
भाग भवेत्।

वैदिक देवता एवं राष्ट्रीयता

डॉ० सुषमा शुक्ला*

हमारा संस्कृत साहित्य ज्ञान की अक्षुण्ण धारा से ओत-प्रोत है। चाहे [illegible] लौकिक साहित्य हो अथवा वैदिक साहित्य। इसी ज्ञान की धारा के प्रवाह में [illegible] संस्कृत साहित्य में राष्ट्र प्रेम का स्वरूप द्रष्टव्य होता है, वह राष्ट्र प्रेम जो [illegible] भारतीय संस्कृति के स्वरूप को पूर्णतया स्पष्ट करता है। हमारे भारतीय [illegible] 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हैं। ऋग्वेद के समस्त देवता राष्ट्रहित के लिए अपने-अपने विभिन्न स्वरूप एवं कार्यों के द्वारा देश-प्रेम [illegible] द्योतित करते हैं। इसीलिए ऋग्वेद के 'अग्निसूक्त' में होमकर्ता प्रार्थना करता है कि [illegible] अग्नि देव! लोक में जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के लिए सुलभ रहता है तथा सभी प्रकार के विनाशों से बचाता हुआ उसका सर्वविध कल्याण करता है, उसी भाँति आप भी हमारे लिए सुगमता पूर्वक प्राप्त होने वाले तथा कल्याणकारी बनो।

"स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा [illegible] स्वस्तये।।"-1/1/1

ऋग्वेद में इन्द्र देवता अपने विशिष्ट कार्यों एवं यश के कारण ही राष्ट्रीय देवता बन गये हैं। इन्द्र के लिए ऋग्वेद में आता है कि 'जिसने चलायमान पृथिवी को स्थिर किया, जिसने चलते-फिरते पर्वतों को स्थिर किया, जिसने विस्तृत आकाश का मापन किया। जिसने भूलोक को स्थिर किया वही इन्द्र है।'

"यः पृथिवीं व्यथमानामदृंह.........स जनास इन्द्रः।।", 2/12/2

* [illegible], संस्कृत विभाग, राजा मोहन सर्न्मे पी.जी. कॉलेज, फैजाबाद, उ०प्र०

वेदों में प्रमुख देवता इन्द्र ही माने गये हैं। इनके विविध नाम हैं। धन प्रदान करने के कारण 'मघवा' तथा सैकड़ों कार्यों को करने की क्षमता रखने के कारण इन्हें 'शतक्रतुः' कहते हैं। दैत्यों के नगरों का विध्वंस करने के कारण 'पुरन्दर' उपाधि प्राप्त करते हैं। विशिष्ट गुणवत्ता के कारण ही इन्द्र आर्यजनों के 'जातीय' तथा 'राष्ट्रीय देवता' बन गये हैं। इन्द्र की ही तरह 'विष्णु' देव भी सर्वाधिक क्रियाशील एवं इन्द्र की सहायता करने वाले देवता के रूप में जाने जाते हैं। 'त्रिविक्रम' शब्द से तीनों लोकों को मापने वाला कहा गया है। (9/154) ऋग्वेद में वाक्सूक्त के अन्तर्गत आध्यात्मिक मन्त्रों में वाक्देवी की राष्ट्रीय भावना का पूर्णतया दर्शन होता है - 'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां' (10/125/3) इस संसार में जो भी प्राणी भोग करता है, वह सब वाक् के द्वारा ही करता है, जो देखता है, श्वास लेता है, वचन सुनता है, वह सभी वाक् देवी के द्वारा ही करता है।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति, यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्, 1/10/125/4

अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि, पुरुष सूक्त में उस परम पुरुष से सभी वसन्त आदि ऋतुओं का प्रादुर्भाव हुआ। सूर्य चक्षु है, वायु प्राण है, अग्नि मुख है और चन्द्रमा मन है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः उरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत्। (10/90/12)

यह पुरुष सूक्त ही अखिल सृष्टि का उत्पादक एवं नियामक है। ऋग्वेद का संज्ञान सूक्त (10/151) मानव जाति को एक उत्तम शिक्षा प्रदान करने वाला सूक्त है जो सर्वजन हितकारी सर्वमंगलकारी होकर राष्ट्र में ऐक्य-भाव दाता है।

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।(10/154/2)

❖ भारतीय परिवारों का परिवर्तित प्रतिमान
डॉ0 मदन मोहन सिंह 356-362
❖ विक्रमांक देवचरित, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
डॉ0 सुषमा शुक्ला 363-367
डॉ0 महेन्द्र पाठक

विक्रमांक देवचरित, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डॉ0 सुषमा शुक्ला
एसोसिएट प्रो0, संस्कृत विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी .जी. कालेज, फैजाबाद

डॉ0 महेन्द्र पाठक
प्रो0 का0 सु0 साकेत, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या

कश्मीर निवासी महाकवि बिल्हण ने अपनी प्रतिभा द्वारा भारतीय इतिहास दर्शन को एक नयी गति दी। कल्हण एवं बिल्हण की कृतियों का अनुशीलन करने पर स्पष्ट होता है कि बिल्हण का निम्ना कथन सद्यः सत्य है–

यत्र स्त्रीणां मसृण घुसृणालेपनोष्णा कुचश्री,
स्ताः कस्तूरी परिमल मुचः षट्टिका रा□ाणाम्।
नौ पृष्ठस्थाः शिशिर समये ते वितस्ता–जलान्तः,
स्नानावासाः प्रचुरमपि च स्वर्गसौख्यं दिशन्ति□

अर्थात–केसर एवं कविता कश्मीर के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं उपजती है। कश्मीर के शासक गोपादित्य के बिल्हण के प्रपितामह मुक्तिकलश को मध्य प्रदेश से लाकर अपने यहाँ सम्मान दिया था।[1] इनके पितामह एवं पिता का नाम क्रमशः पाठक का मत है कि ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में कश्मीर भूमि की शान्ति अनन्त के आक्रमण एवं कश्मीर के आन्तरिक संघर्ष के कारण भंग हो गयी थी। अतः अशान्तिमय वातावरण में बिल्हण को कश्मीर में उपयुक्त आश्रयदाता का अभाव खटकता रहा। इस प्रकार ज्ञानार्जन के उपरान्त बिल्हण ने अर्थ एवं प्रतिष्ठा के निमित्त सम्पूर्ण भारत की साहित्यिक यात्रा सम्पन्न की। अपने प्रवास के मध्य इन्होंने कश्मीर वृन्दावन, मथुरा के पण्डितों को ही नहीं बल्कि कान्यकुब्ज, प्रयाग, काशी, डाहल, धारा, गुजरात, अनहिलवाड़, सोमनाथ एवं कल्याण की यात्रा का दौरान कर्ण के सभापण्डित गंगाधर को भी पराजित किया। इस प्रकार प्रभावित होकर राजा कर्ण ने इनका प्रभूत सत्कार किया। दक्षिण भारत के कल्याण नगर के चालुक्य वंशी गुणग्राही राजा विक्रमादित्य षष्ठ ने इनकी विद्वता का सम्मान करते हुए इन्हें कश्मीरी विद्यापति विरूद से विभूषित किया। इन्होंने विक्रमादित्य षष्ठ द्वारा प्रदत्त सम्मान के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए विक्रमांकदेवचरित ग्रन्थ की रचना की। अशेष देश भाषाओं का ज्ञात एवं सर्वभाषाओं में सत्काव्य का प्रणेता बिल्हण केवल कश्मीर में ही नहीं प्रख्यात था, वस्तुत इसकी कीर्त्ति देशान्तरों भी पहुंची थी। इनकी प्रमुख कृतियाँ विक्रमांकदेव चरित (महाकाव्य) कर्ण सुन्दरी (नाटिका) एवं चौर–पंचाशिका (गीति काव्य) हैं, परन्तु प्रस्तुत परिच्छेद में ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण विक्रमांक देव चरित का ही वर्णन क्रम प्राप्त है।

114

स्मृति में समाज-कल्याण की भावना

डॉ. सुषमा शुक्ला

धर्मशास्त्र को स्मृति कहा है- श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः व्यापक अर्थ में 'स्मृति' शब्द
के अन्तर्गत षड्वेदांग धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण एवं नीतिशास्त्र आदि सभी का विषयों का अन्तर्भाव हो जाता
है, परन्तु स्मृतिकारों द्वारा 'स्मृति' शब्द को धर्मशास्त्र का पर्यायवाची ही माना गया है। धर्म शब्द भारतीय
चिन्तन परम्परा में व्यापक अर्थ में प्रयुक्त है। किन्तु इसका अर्थ किसी धर्म या सम्प्रदाय-मात्र से नहीं अपितु
आचरणीय नियम एवं कर्त्तव्यों से भी है। भारतीय मनीषा प्रारम्भ से ही सामाजिक कल्याण एवं मानव-मात्र
के कल्याण हेतु तत्पर रही है। धर्मशास्त्र तो लोकशास्त्र ही है और प्राणिमात्र के कल्याण को ध्यान में रखकर
अपनी व्यवस्थाएं एवं कर्तव्यों का निर्धारण करता है। चाहे हम संस्कारों की बात करें, या पर्वों की, चाहे आचार
व्यवहार से सम्बद्ध सिद्धान्तों की सभी में सामाजिक कल्याण की भावना के साथ ही सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टिकोण
भी अन्तर्निहित है। अतएव मनुस्मृति का दूसरा नाम मानव- धर्मशास्त्र है। मनुस्मृति के प्रत्येक अध्याय के अन्त
में 'भृगुप्रोक्तायां संहितायां' ऐसा लिखा मिलता है। जिस प्रकार वेदव्यास ने भगवान श्री कृष्ण और अर्जुन के
संवाद को 'संकलित कर श्रीमद्भगवत् गीता तैयार की। उसी प्रकार भगवान मनु से सारे धर्मों को पढ़कर
महर्षि भृगु ने मनु की आज्ञा से ही ऋषियों को पढ़ाया और लोकोपकार हेतु श्लोकबद्ध किया। यह स्मृति
मनुस्मृति के नाम से लोक में विख्यात हुई। स्मृतियां धर्म सूत्रों के बाद की रचनाएें हैं एवं उनकी भाषा-शैली
सरल एवं सुबोध है। प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि स्मृतियां धर्मसूत्रों की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित है जो स्मृतियां
उपलब्ध है, उनमें मनु की मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति प्रसिद्ध है। स्मृतियों में मनुस्मृति सर्वाधिक प्राचीन
है। इसकी रचना सम्भवतः ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व हुई थी। मनुस्मृति की श्रेष्ठता केवल प्राचीनता की दृष्टि
से नहीं अपितु उसकी श्रेष्ठता प्रतिपाद्य विषय की व्यापकता की दृष्टि से भी है समाज को सुचारू रूप से
चलाने के लिये कुछ नियमों की एवं कुछ आचार एवं विचार की भी आवश्यकता होती है धर्मशास्त्र भी है और
आचार को परम धर्म कहा गया है। आचारो परमोधर्मः।

डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार- शिष्ट व्यक्तियों द्वारा अनुमोदित एवं बहुमान्य रीति-रिवाजों को
आचार कहते है।[1] धर्मशास्त्रीय-चिन्तन न केवल व्यक्ति के बाह्य एवं आन्तरिक शुद्धि का प्रतिपादन करता
है अपितु अपने चारों ओर के वातावरण की शुद्धि पर भी बल देता है। स्मृतिग्रंथों में मुख्यतः तीन प्रकार के
पथ्यों का विवेचन होता है। आचार, व्यवहार और प्रायश्चित। 'आचारहीनम् न पुनन्ति वेदाः।' तथा
'आचारवान लभते ज्ञानम्' इत्यादि वाक्य यही सिद्ध करते है कि जीवन में आचार कितना अपरिहार्य है।
अतएव जहां समाज है, वहीं मानवसृष्टि है और वहीं सामाजिक-व्यवस्था है। मनुस्मृति में सामाजिक-व्यवस्था
आश्रम-व्यवस्था पर ही आधारित थी। मनुस्मृति ही एक ऐसी स्मृति है जिसमें चार पुरुषार्थ, चार आश्रमों का
पूर्णतया विवेचना प्राप्य है। स्मृतिग्रंथों में जिस-आश्रम-व्यस्था का उल्लेख मिलता है वह आज के समाज के
लिए भी कल्याणकारी है। प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम के प्रसंग में सोलह संस्कारो के अन्तर्गत यज्ञोपवीत
संस्कार का वर्णन करते हुए मनुस्मृति में कहा गया है कि यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् ही ब्राह्मण, क्षत्रिय,
वैश्य द्विज कहे जाते है। ब्रह्मचर्य के लिए अध्ययन को सर्वप्रमुख माना है वह आज भी प्रासंगिक है जीवन

एसो. प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कालेज, अयोध्या

115

के प्रारम्भिक दिनों में उचित रीति से अध्ययन द्वारा ज्ञान प्राप्त करना, सब मनुष्यों के लिए नितान्त आवश्यक
है। ब्रह्मचर्य जीवन में गुरु के समीप रहकर गुरु के प्रति कर्तव्यों का पालन करते हुए ब्रह्मचारी के नियमों
का कठोरतापूर्वक पालन करना पड़ता था।[2] अभिवादनशीलस्य ....यशोबलम् श्रेष्ठजनों को प्रणाम करने का
कारण बताते हुए मनुस्मृति में कहा गया है कि वृद्धजनों के आने पर युवा मनुष्य के प्राण ऊपर चढ़ने लगते
है और युवा मनुष्य प्रत्युत्थान तथा अभिवादन के द्वारा उन प्राणों को प्राप्त कर लेता है। मनुष्य को संस्कार
प्रदान करने का एक वैज्ञानिक कारण भी इस श्लोक द्वारा ज्ञात होता है जो कि मनुष्य के लिए कल्याणमयी
भावना से अनुप्रेरित है।[3]

मनु० द्वितीय अध्याय में संस्कार विधि का वर्णन कर समाज में मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक
विकास के लिये ऐहिक, एवं भौतिक जीवन की सर्वांगीण उन्नति तथा पारलौकिक जीवन में मोक्षप्राप्ति के लिए
संस्कारों का संयोजन किया गया है। संस्कार मनुष्य के धार्मिक एवं सामाजिक-एकता के आधार रहे है तथा
संस्कारों से मनुष्य के दोष नष्ट हो जाते है

(गार्भै ....द्विजानामपमृज्यते)

यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् ही व्यक्ति ब्रह्मचर्य जीवन में गुरु के समीप रहकर अनुशासनपूर्वक

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारत विकास एवं पर्यावरण

अस्सिटेंट प्रोफे.
राजा मोहन गर्ल्स पी. जी. कॉलेज अयोध्या (उ.

सारांश

आधुनिक युग में हम जिस प्रकार अपने भारत विकास की कल्पना को साकार करने की तरफ आगे बढ़ रहे हैं, उस दौर में पर्यावरण की सुरक्षा एक प्रमुख मुद्दे के रूप में उभरा है। देखा जाये तो विकास बनाम पर्यावरण एक विचारात्मक आंदोलन है, जिसकी जड़ मानव सभ्यता से जुड़ी हैं।

पर्यावरण 'जीवन की गुणवत्ता समृद्धि' को विकास की 'आर्थिक राजनीतिक नीतियों' से कहीं उच्च स्थान देता है।

राजनीतिक नीतियां मुद्दे, कायदे-कानून कहीं न कहीं सभी विकास पर केंद्रित होते है परंतु वह विकास हम नहीं चाहते जो हमारी प्रकृति के विनाश का कारण बन जाये। यही विकास यदि हमें प्राकृतिक सृजन की ओर ले जाये, तो निश्चय ही हम अपने पर्यावरण से और अधिक आत्मीय हो जायेंगे।

मुख्य शब्द- आर्थिक समृद्धि, पर्यावरण, विकास, राजनीतिक पर्यावरण कार्यक्रम, भारत, विनाश, सृजन।

भारत में पर्यावरण

भारत में पर्यावरण के संरक्षण का इतिहास अत्यंत ही प्राचीन व सनातन धर्म से जुड़ा हुआ है। भारत के संतों व ऋषि-मुनियों ने प्रकृति को माँ स्वरूप में माना है। हमारे देश में नदियों, वृक्षों पर्वतों व पशुओं की उपासना का प्रचलन है, जो हमें प्रकृति संतुलन व संरक्षण का संदेश देता है। भारतीय सनातन संस्कृति में पृथ्वी को माता मानते हुए कहा गया है-

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"

मध्य काल व मुगल काल के पश्चात भारत भारत में अंग्रेजों के आने के बाद से ही औद्योगिक विकास का क्रम तीव्र हो औद्योगीकरण की विनाशकारी दोहन प्रवृत्ति ने भारतीय कृषि प्रदेशों से लेकर वन-प्रदेशों को भी गंभीर हानि पहुँचायी है, जिसके कारण पर्यावरण असंतुलन प्रकट होने लगा।

स्वतंत्रता के पश्चात बढ़ता पश्चिमी प्रभाव, उपभोग की प्रवृत्ति व जनसंख्या विस्फोट के कारण हमारे पर्यावरण का क्षरण हुआ है। पर्यावरणीय समस्यायें आज भारत में गंभीर चिंतन का विषय बन चुकी हैं।

भारत में हैं 'दुनिया के सबसे प्रदूषित शहर'

दुनिया के सबसे प्रदूषित 121 देशों की सूची में भारत के तीन शहर राजधानी दिल्ली, कोलकाता और मुंबई है। इसके अतिरिक्त प्रदूषण के मामले में भारत विश्व में तीसरे स्थान पर है। अंधाधुंध वन- प्रदेशों के दोहन तथा आवासीय इमारतों के निर्माण पर्यावरणीय वायु की गुणवत्ता निचले स्तर पर चली गयी है।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refreed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

देश की प्रगति में बाधक दलगत राजनीति

डॉ. ज्योतिमा सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान)
राजा मोहन गर्ल्स पी. जी.
कॉलेज, अयोध्या (उ. प्र.)

दीपिका शुक्ला
शोध छात्रा (राजनीति विज्ञान)
राजा मोहन गर्ल्स पी. जी.
कॉलेज अयोध्या (उ. प्र.)

सारांश

भारत एक संघीय संसदीय, लोकतांत्रिक गणतंत्र है, जहाँ संविधान की सर्वोच्चता है। हमारे देश में बहुदलीय प्रणाली है। राजनीतिक दल हमारे सामाजिक समूहों, विचारधाराओं व मतदाताओं के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वर्तमान समय में राजनीतिक दल अपने पार्टी हितों व व्यक्तिगत स्वार्थ को प्राथमिकता देते हैं। ऐसी स्थिति में दलगत राजनीति अनावश्यक रूप से राजनीति में प्रवेश पा लेती है, जिससे राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

दलों में निरंतर तीव्र संघर्ष व अनुचित विवाद से देश में अस्थिरता की स्थिति के साथ ही भ्रष्टाचार व पक्षपात जैसी समस्याएँ अपनी जड़ें जमाने लगती है। देश की विकासशील योजनाओं व सामूहिक प्रगति में भी बाधा आती है। इन समस्याओं के समाधान हेतु लोकतंत्र में पारदर्शिता, जवाबदेही व दलीय सहयोग की भावना को विकसित करना अत्यंत ही आवश्यक है।

मुख्य शब्द : प्रगति, विकास, राजनीतिक अस्थिरता, दलीय भावना व सहयोग, दलीय राजनीति, पार्टी हित, व्यक्तिगत स्वार्थ, ध्रुवीकरण, राजनेता, भ्रष्टाचार।

दलदल बनती जा रही है दलीय राजनीति

हमारे देश में जितने राजनीतिक दल हैं; शायद ही किसी अन्य में इतने अधिक राजनीतिक दल होंगे। हमारे देश में एक प्रसिद्ध लोक कहावत है- 'कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर वाणी' आज हम गौर करें तो पायेंगे कि कुएँ तो अब अतीत की पहचान रह गये हैं और भाषा भी लगभग एक जैसी ही हो गयी है, जिसमें नैतिकता का स्तर गिर चुका है। जनता को अब कोस-कोस पर एक नया राजनीतिक दल मिलता है, जिनकी भाषा, भाषणों व विचारधारा का फॉर्मेट तो एक ही है। सभी दल एक-दूसरे के विरुद्ध कमर कसकर मैदान में उतरते हैं और अनर्गल प्रलाप, व्यर्थ प्रपंच, झूठे रोजगार के दावों को अधिक श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास करते हैं।

आम जनता का हित इनकी दलीय विचारधारा से अब गायब हो चुका है। अब तो जनता भी माननीय राजनेताओं के मन की बात को बखूबी समझती है इस कारण राजनीति को दलदल समझती है।

जब दलीय भावना गहरी व स्वार्थ से परे होती है तभी जनता भावनात्मक रूप से इनसे जुड़ती है। स्वतंत्रता के पहले भी हमारे देश में राजनीतिक दल थे परंतु तब दलीय राजनीति इतनी कुत्सित मानसिकता वाली नहीं थी। शायद यही कारण

Prof. PRAGYA MISHRA, HoD, Ancient History
RMGPG College, AYODHYA

RESEARCH PAPERS PUBLISHED IN JOURNALS (12)/SEMINAR (5) = 17

[1] Dr. Pragya Mishra, " Vayu Puran mein Gandharva, Gandharva-vidya evam murchchana" Proceedings of national Seminar on historical and cultural roots of puranas, published by Ishwar Saran degree college Allahabad, ISBN 978-81-922900-0-3, year 2011, PP(247-250). (National seminar peer reviewed).

[2] Dr. Pragya Mishra, " Lok Parampara mein Yaksha (Sahityik Anuseelan)" Proceedings of national conference on Indian art, Folk traditions and culture, Lokayatan, ISBN 97881-907895—7-8, year 2012, PP (355-357). (National conference peer reviewed proceedings).

[3] Dr. Pragya Mishra, "Samajik Vikas me Adhunik Mahilayon ki Bhumika evam Seemayen" Proceedings of National Conference on contribution of women in Indian Arts and culture, ISBN- 978-81-926241-0-5, December 2012, pp(398-402). (National conference peer reviewed proceedings).

[4] Dr. Pragya Mishra, "Kambuj desh me Sanskrit vangmaya evam bhartiya Sanskriti ka prabhav" Proceedings of International seminar on Sanskrit literature and progression of the universe, year november 12, ISBN 978-81-922900-2-7, year 2013, pp(737-741). (International seminar peer reviewed proceedings).

[5]. Dr. Pragya Mishra, "Mahabharat me Rashtra ki Avdharna", Proceedings of "Bhartiya-Rashtriyata ; Atit Se Vartman Tak, Part-1" Published by Prakashan Vibhag, Itihas Sankalan Yojna, IX National Convention at Gwalior dated 26-28 October, 2012. Published in year 2019, ISBN : 978-93-82424-41-3, Pp (331-341). (National seminar peer reviewed proceedings).

PAPERS PUBLISHED IN JOURNALS (12).

[6]. Dr Pragya Mishra; " Baudh Dharma Evam Paryavaran: Ashok ke Abhilekhon mein" Research journal of Akhil Bharatiya Itihas Sankalan yojana, Itihas Darpan, ISSN: 0974- 3065, Volume 17(1), year 2012, PP(96-99). (Refereed peer reviewed journal)

[7]. Virendra kumar singh and Dr Pragya Mishra; "Atharvaveda mein abhivyakta Rudra" International journal Avadh Archana ISSN-0974-004X, july 2013, pp(42-45).

Scanned with OKEN Scanner

[8]. Dr Pragya Mishra; "Cultural History of Indian Diaspora in Cambodia" International journal of Humanities and social sciences, ISSN (online) 2319-7722, ISSN (print) 2319- 7714 volume 2, issue-12, December 2013, pp(67-71). Refereed Peer reviewed international print and online journal.

[9]. Dr Pragya Mishra; "Itihas janane mein abhilekhon ka mahatva" International journal of shodh samiksha evam mulyankan; ISSN (online) 2320-5474, ISSN (Print) 09742832, volume-5, issue-59, December 2013 pp(102-104). (Refereed Peer reviewed international journal).

[10]. Dr Pragya mishra; "Lok Manas mein Som ki Avdharna" united journal of Awadh Scholars; ISSN 0974-0503, Volume-8, January 2014, PP(98-105). (Refereed peer reviewed journal).

[11]. Dr. Pragya Mishra, "Pramukh Baudha Bhikkshunian " Research Journal of Akhil Bhartiya Itihas Sankalan Yojana, Itihaas Darpan ISSN : 0974-3065 volume 21(1), year 2016, pp (63-66). (Refereed peer reviewed journal).

[12]. Dr. Pragya Mishra, "Bauddhasthal: SHRAVASTI" The Journal of Buddhisht history and culture BODHI – CHAKRA, ISSN:2277:3355 Volume (VII) year 2016,PP(106-112).

[13]. Dr. Pragya Mishra, "Itihaas lekhan ki drishti mein chalukyon ke Abhilekh",An Interdisciplinary Journal of Humanities and Social Sciences, MANVIKI, ISSN 09760830, Volume 7(1&2),year 2016,PP(42-48).

[14]. Dr. Pragya Mishra, "Shiksha ke Kshhetra mein Nari", Keshav Samvad, ISSN: 2581: 3528, RNI UPHIN/2000/3766, Volume (6) year 2019, PP(25 -26).

[15]. Dr. Pragya Mishra, "Ek Divasiya Rashtriya Sangoshthi, Aitihasik Pariprechhya mein Mahamari: Karan evam Nivaran" Itihas Darpan,ISSN:0974-3065, Volume (XXV 1 & 2) year 2020, PP(232-236).

[16]. Dr Pragya Mishra; "Purano mein Gandharva" International journal of Shodh Samiksha Aur Mulyankan, year 2021, ISSN 20974-283 (Print), E-ISSN-2320-5474, PP (123-126). (Refereed peer reviewed journal).

[17]. Dr Pragya Mishra; "Sanskritik dharoharon ka Sanrakshak: Sangrahalay" International Multidisciplinary Peer Reviewed and Refereed Research journal THE ETERNITY, year 2021, Volume XXII, No. 4, ISSN 0975-8690 (Print), UGC List 44958, PP (367-370). (Refereed peer reviewed journal).

Scanned with OKEN Scanner

वायुपुराण में गन्धर्व, गान्धर्व–विद्या एवं मूर्च्छना

डॉ. प्रद्या मिश्रा*

पुराण शब्द की उत्पत्ति यास्क के ग्रन्थ एवं पुराणों में प्राप्त होती है। यास्क के निरुक्त के अनुसार 'जो प्राचीन होकर भी नया होता है (पुरा नव भवति)', यह पुराण है। अर्थात् जो प्राचीनतम होकर भी आज के परिवेश, परिस्थितियों में उपयोगी एवं प्रासंगिक है; नवीन है, जीवन के लिये आवश्यक है, वह पुराण है। ऋग्वेद में 'पुराण' शब्द 'प्राचीन' या 'पूर्वकाल में' होने वाले अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पद्मपुराण[1] पुराण का तात्पर्य प्राचीन परम्पराओं की कामना से है। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार 'पुराण प्राचीन काल में ऐसा हुआ है।'[2] अथर्ववेद में स्पष्ट उल्लेख मिलता है 'ऋक् सामानि छन्दांसि पुराण यजुषा सह'[3] अर्थात् ऋक्, साम, छन्द (अथर्ववेद) और यजुर्वेद के साथ पुराण की उत्पत्ति हुयी। वायु पुराण[4] के अनुसार पुराण की उत्पत्ति 'पुरा अनति अर्थात् प्राचीन काल में जो जीवित था के रूप में मानी जानी चाहिए एवं वेद को इतिहास और पुराण द्वारा आगे बढ़ाया जाना चाहिए। शिव पुराण में उल्लिखित है कि 'सभी शास्त्रों के पहले ब्रह्मा ने पुराणों का स्मरण किया; इसके पश्चात् उनके मुख से वेद प्रकट हुये –

'पुराणं सर्व शास्त्राणां प्रथम ब्रह्मणा स्मृतम्
अनन्तर च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिः सृताः।'[5]

लगभग सभी पुराण यह घोष करते हैं कि पुराण सभी शास्त्रों से पूर्व थे पुराणों के बाद ही ब्रह्मा के मुख से वेद निकले। मेरा मानना है कि वृद्ध जनों से श्रुत कथाओं एवं मनोरंजक, ज्ञानवर्धक कहानियों को सुनकर जब ब्रह्मा को यह प्रतीति हुयी कि इन पौराणिक आख्यानों में सत्यांश निहित हैं जो जानने योग्य हैं तथा जिन्हें सभी को जानना चाहिए, तब उन्होंने वेद निःसृत किये। मेरी इस सोच की पुष्टि प्रो० शिवाजी सिंह के पुराणान्तर्गत इतिहास कार्यशाला 14 मार्च 2010 के उद्घाटन भाषण, गोरखपुर के सम्पादित अंश 'ऐतिहासिक सामग्री के अक्षय भण्डार: पुराण' की निम्न पंक्तियों से होती है– 'पुराण हमें वेदों से प्राचीनतर ले जाते हैं, जैसे ऋग्वेद में मान्धाता को प्राचीनतम शासकों में गिना गया है, जबकि पुराणों में मान्धाता के पूर्व की 20 पीढ़ियों का वर्णन है' ....।

अतएव इतिहास का सांगोपांग अध्ययन करने के लिये पुराणों का बृहद् अध्ययन आवश्यक है। इसीलिए आचार्य कौटिल्य ने इतिहास की परिभाषा करते हुये लिखा –

'पुराणम् इतिवृत्तम् आख्यायिका उदाहरणम्
धर्मशास्त्राम् अर्थशास्त्राम् चेति इतिहासः।'

ऋषियों ने किसी स्वार्थ से पुराणों की रचना नहीं की, अपितु उन्होंने समाज–हित, समाज–कल्याण हेतु पुराणों की रचना की। सार–रूप में पौराणिक–साहित्य अक्षय ज्ञान का भण्डार है; जिसमें ज्ञान, विज्ञान, लोकव्यवहार, समाज एवं संस्कृति के समस्त पक्षों की विशद् विवेचना है। व्याकरण की दृष्टि से पुराण शब्द का अर्थ होता है – पुरानी घटनाएँ। अर्थात् अत्यन्त प्राचीन काल में जो कुछ घटित हुआ उसे पुराण कहते हैं।[6] जो वस्तु आज प्राचीन है; अपने उद्भवकाल में यह नवीन थी और अपनी प्राचीनता के कारण यह आज पुराण है किन्तु बीज रूप पुराण ही हैं। मानव–जीवन काल–कलाओं से आवृत्त है। सृष्टि और प्रलय का प्रवाह आदि–अनन्त रूप से प्रवाहित हो रहा है। इसके पूर्व या प्रारम्भिक निर्माता कौन थे? उनके क्या नाम थे? उन्होंने क्या कार्य किये? सृष्टि के, सभ्यता के विकास में उनका क्या योगदान रहा? यह सभी तथ्य पुराणों से ज्ञात होते है।

'लोकचेतना, लोकरुचि और लोकहित की भावना से प्रेरित होकर ही पुराणों का प्रवर्तन किया गया। पुराण हमारे लौकिक और पारलौकिक जीवन के लिये एक अनुपम देन

---

* रीडर, प्रा०इति०पुरा० एवं संस्कृति विभाग, राजामोहन गर्ल्स पी०जी० कालेज, फैजाबाद

लोक परम्परा में यक्ष (साहित्यिक अनुशीलन)

डॉ. प्रज्ञा मिश्रा*

भारतवर्ष में यक्ष-पूजा का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन है। अथर्ववेद में वाद्भुत (एक अधिकारी) द्वारा यक्ष देवता के लिये बलि आहरण करने का भी उल्लेख है। इन्हें विश्व का अधिष्ठाता भी माना गया। ऋग्वेद में मित्र वरुण और अग्नि का स्थान यक्ष से ऊपर माना गया है। अग्नि को यक्ष का अध्यक्ष भी कहा गया है। यक्ष के रूप की समानता मरुत् से भी की गयी है। यद्यपि यह सत्य है कि प्राचीन वैदिक संहिताओं में यक्षों के प्रति भय, दुराचार एवं क्रूरता का अंकन किया गया किन्तु उत्तर वैदिक साहित्य में उन्हें सम्मान दिया गया एवं उनके प्रति सद्भावना भी व्यक्त की गयी। ऋग्वेद के अनुसार अग्नि-देव से यह प्रार्थना की गई कि वे यक्ष के पास न जाये। अन्य मंत्र में अभ्यर्थना की गई है कि देवता हमें न मिले। ऋग्वेद के इन दोनों मन्त्रों में यक्षों की विषम अवस्था लक्षित होती है। परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में यक्षों के प्रति सद्भावना व्यक्त की गयी है। आरण्यकों में इनका उल्लेख अन्य देवताओं के साथ किया गया। तैत्तिरीय आरण्यक में यक्षपति कुबेर देव के रूप में नमस्कृत एवं प्रार्थित हैं। वाल्मीकि रामायण में यक्षत्व की प्राप्ति अमरत्व की प्राप्ति मानी गयी है। कुमारस्वामी के अनुसार कुबेर वैश्रवण राजा एवं उत्तर दिशा का लोकपाल है।

महाभारत और रामायण में यक्ष के लिये 'ब्रह्म' शब्द का प्रयोग किया गया है। पाणिनि ने लेखन, सुन्दरि एवं विशाल नामक यक्षों के अतिरिक्त अर्यमा का भी उल्लेख किया है। आटानाटीय सूची में इन्द्र, सोम, वरुण और प्रजापति की गणना 'मणिभद्र' और 'आलवक' यक्षों के साथ की गयी है। यही नहीं आटानाटीय सूची में वरुण को देवता माना गया है।

डॉ अग्रवाल के अनुसार महाभारत, बौद्ध-साहित्य और पुराणों की यक्ष सूचियों से ज्ञात होता है कि वैदिक देवों को भी यक्ष मान लिया गया। महाभारत के अनुसार ब्रह्मा ने वैश्रवण को तीन वरदान दिये- अमरत्व, धनाधिपत्य और लोकपालत्व।

वस्तुतः यक्ष के रूप में ब्रह्मोपासना प्राचीन भारतीय इतिहास का एक मनोरंजक तथ्य है। उत्तर वैदिक-काल में विद्याओं की सूची के अन्तर्गत डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी के द्वारा उनके 'हिन्दू सिविलाइजेशन' में उल्लिखित 'ब्रह्मविद्या' पर इसी ग्रन्थ के अनुवादक डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल ब्रह्मविद्या का अर्थ यक्ष-विद्या करते हैं। वे अन्यत्र भी स्वीकार करते हैं कि यक्ष का एक महत्वपूर्ण पर्याय ब्रह्म है।

केनोपनिषद् में 'यक्षोपाख्यान' आता है जो यक्ष रूप में ब्रह्म की उपासना को इंगित करता है। ब्रह्म सम्बन्धी अवधारणा को व्यक्त करने के लिये ही यक्षों की विशालकाय मूर्तियाँ निर्मित की गयीं।

यक्षों को अत्यधिक सौन्दर्ययुक्त माना गया। गोभिलगृह्यसूत्र (3428) में एक छात्र यक्ष जैसा प्रियदर्शन होने की कामना करता है- "यक्षमिवचक्षुषो प्रियो भूयासम"। ऐसा ही साक्ष्य महाभारत में भी मिलता है कि किसी भी अपरिचित सुन्दर स्त्री से मिलकर उसका परिचय जानने हेतु कहा जाता था कि क्या तुम कोई यक्षी हो? इसी प्रकार स्वयंवर में नल को देखकर स्त्रियाँ सोचने लगीं- "इसका रूप और कान्ति कितनी सुन्दर है। यह कोई देव है? यक्ष है? या गन्धर्व है?" अश्वमुखी जातक (पदकुसलमाणव जातक) में एक अश्वमुखी यक्षिणी की कथा मिलती है जिसे मात्र कल्पना पर आधारित माना जा सकता है।

डॉ अग्रवाल के अनुसार "यक्ष पूजा लोक धर्म का व्यापक अंग थी जो ऋग्वेद-काल से लेकर अब तक निरन्तर प्रवाहमान है। ब्राह्मण, जैन, बौद्ध सभी ने इसे समान रूप से स्वीकार किया। इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा जैसे वैदिक देवताओं की यक्षों से तुलना की गयी।"

---

*. वरिष्ठ प्रवक्ता प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी. जी. कालेज, फैजाबाद।

(64)

Proceeding of CWIAC-2012 *ISBN NO.- 978-81-926241-0-5*

सामाजिक विकास में आधुनिक महिलाओं की भूमिका एवं सीमायें

डॉ. प्रज्ञा मिश्रा
रीडर-रा.मो.ग.पी.जी.कालेज,
फैजाबाद।

भारतीय परम्परा विचारों को आदर्श रूप देने में जितनी सिद्धहस्त है, उन आदर्शों को लागू करने में भेदभाव ग्रस्त रही है। इक्कीसवीं सदी नारी सदी के रूप में जानी जाती है। समय के साथ समाज तेजी से बदल रहा है। इस बदलाव का असर समाज के मध्यवर्ग और महिलाओं पर अधिक पड़ रहा है; जिसके लिये आधुनिकता और परंपरा के बीच संघर्ष सा छिड़ गया है। एक ओर समाज में छटपटाहट बढ़ रही है कि हर हाल में आधुनिक बनना है, और दूसरी ओर परंपरा से कटने का भय भी सता रहा है। इस आधुनिकता की दौड़ में महिलायें शामिल हैं प्रत्येक वर्ग की। जिसका सुख भी इन्हें मिलता है एवं दुःख भी, कार्याधिक्य का बोझ भी सर पर रहता है तो अस्तित्व के पहचान की खुशी भी उनके चेहरे पर दिखती है; कहीं अपमानित होना पड़ता है तो कहीं सम्मानित भी की जाती हैं। इसी सुख-दुःख की अनुभूति को हृदय में समाहित करती हुयी समाज से जूझती हुयी महिलायें आज प्रगति की प्रत्येक विधा पर आगे बढ़ रही हैं; किन्तु उनकी कुछ सीमायें हैं जिनका यदि वे समय रहते ध्यान रखती हैं; तो सफल होती हैं; अन्यथा दुष्परिणाम भोगना पड़ता है; प्रस्तुत लेख के माध्यम से यहाँ, आधुनिक महिलायें एवं उनकी सीमाये क्या हैं? सामाजिक विकास में उनकी भूमिका क्या है? इस विषय पर दृष्टिपात करेंगे।

भारतीय समाज पारम्परिक रूप से महिलाओं के सन्दर्भ में सुरक्षात्मक भाव-बोध होने के कारण रूढ़िगत रहा है। मनुस्मृति में उल्लेख है-

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने
रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।"

(मनुस्मृति, प्रकरण ९, श्लोक ३)

अर्थात् स्त्री बचपन में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन तथा वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहती थी।

आज इक्कीसवीं सदी में कम्प्यूटर युग में चलने के बाद भी कमोवेश महिलाओं की स्थितियाँ बदली तो हैं परन्तु बहुत अधिक नहीं। आज परिधान से, फैशन से, दिखावे से तो महिलायें आधुनिक बनकर समाज में अपने को प्रस्तुत करती हैं; परन्तु विचारों में संकीर्णता ज्यों की त्यों बनी रहती है। आधुनिकता से तात्पर्य है आज के परिवेश, परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करके चलना। आधुनिक वही है जो अपने वर्तमान परिवेश से सुचारू रूप से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम होता है। मूलभत आवश्यकताओं में रोटी, कपड़ा और मकान की गणना की जाती है। ध्यान देने की बात यह है कि रोटी और कपड़ा दोनों घर के अन्दर के अवयव हैं जिनकी व्यवस्था महिलाओं के द्वारा ही की जानी है। यदि महिला आधुनिक है तो अपने सफल व्यवस्थापन (मैनेजमेन्ट) के द्वारा मूलभत आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेती है। परिवार में

कम्बुज देश में संस्कृत वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति का प्रभाव

डॉ० प्रज्ञा मिश्रा *

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जिसका उद्भव, विकास एवं अन्त समाज की क्रोड़ में होता है। मनुष्य के द्वारा किये गये कार्य ही इतिहास का निर्माण करते हैं। इतिहास मानव-जातियों की यशस्विनी अभिव्यक्ति है जो प्रेरणा, प्रगति और उज्ज्वल भविष्य की अजस्र धारा प्रवाहित करती है। आज सूचनातन्त्र के प्रभावशाली एवं शक्तिशाली संजाल ने 'भूमण्डलीकरण' की अवधारणा को एक मजबूत आधार दिया है जिसके अन्तर्गत एक निर्बाध विश्व की कल्पना साकार होती दिखती है, किन्तु प्राचीन काल में भी भारतीय लोग व्यापारी के रूप में प्रवास करते रहे एवं विदेशी - व्यापार के माध्यम से भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को विश्व में प्रसारित करते रहे।

"ग्रीक संस्कृति में नौ-देवियाँ (Nine Muses) संगीत, कला, साहित्य और विज्ञान की संधात्री हैं, इनमें क्लिओ (Clio) इतिहास देवी है। क्लिओ का शब्दार्थ ख्याति या कीर्ति है; यह शताब्दियों की भव्य उपलब्धियों की कीर्ति है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत श्रवस् से हुयी है।" श्रवस् अजस्र कीर्ति का द्योतक है जो कालातीत है और सतत् ऊपर उठने का आवाहन करता है। श्रुति और स्मृति में श्रुति हमारे गौरव का मूल है और स्मृति समयानुसार परिवर्तन का। श्रुति सनातन है और स्मृति काल का प्रवाह अथवा प्रगति है। इतिहास देवी है जो भविष्य को दिव्य आलोक से प्रभावित करती है। द्वीपांतर (कम्बुज, इण्डोनेशिया) से प्राप्त संस्कृत शिलालेख भारतीय मनीषा के लिये चुनौती है और 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का आश्वासन है।[1] स्वतंत्रता प्राप्ति के छः वर्ष बाद आर०सी० मजूमदार अपनी कृति "कम्बुज के शिलालेख" (Inscription of Kambuj) की भूमिका में लिखते हैं - कि इन शिलालेखों का विश्लेषण अधिक सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा होना चाहिए।" रामकथा की विदेश यात्रा के रचना-क्रम में इंडोनेशिया, कंबुज (कम्बोडिया) तथा चंपा के (वियतनाम के) संस्कृत शिलालेखों को यत्र-तत्र बिखरे देखा जिनका अभी तक देवनागरीकरण भी नहीं हुआ।[2] किसी भी स्थिति में इंडोनेशिया, कंबुज (कम्बोडिया), चंपा (वियतनाम) मलेशिया, थाईलैंड तथा म्यांमा (बर्मा) के पहली से पन्द्रहवीं शताब्दी तक के संस्कृत शिलालेख भारत के गौरवशाली स्वर्ण-काल के अकाट्य प्रमाण हैं।[3] चीनी अभिलेखों के अनुसार कंबोडिया में फूनान साम्राज्य की स्थापना प्रथम शताब्दी ईसवी में हो गयी थी। यहाँ से प्राप्त प्रथम शिलालेख की तिथि तीसरी शताब्दी ईसवी है और पुरातात्विक सामग्रियों की तिथि दूसरी शताब्दी के मध्य तक चली जाती है। चीनी स्रोत के अनुसार उसी काल में मलय प्रायद्वीप में भी हिन्दुओं का एक छोटा सा राज्य था।[4] मजूमदार की मान्यता है कि यदि भारत और कंबोज का सम्पर्क समुद्र मार्ग से हुआ था; तो उस मार्ग में पड़ने वाले द्वीप अवश्य ही उसके पूर्व हिन्दुत्व के प्रभाव में आ गये होंगे।[5]

अधिकतर इतिहासकार दक्षिण-पूर्व-एशिया में भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव की तलाश में प्रथम शताब्दी के इर्द-गिर्द मंडराते हुये दृष्टिगत होते हैं जबकि कम्बुज में कौण्डिन्य द्वारा भारतीय उपनिवेश की स्थापना निर्विवाद रूप से प्रथम शताब्दी में हो गई थी।[6]

इस सन्दर्भ में कौटिल्य के अर्थशास्त्र के विवरण के अतिरिक्त यह उल्लेखनीय है कि सम्राट अशोक ने तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में शोण और भद्र नामक दूतों को बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु दक्षिण-पूर्व एशिया भेजा था।[7]

भारतीय लोग प्रागैतिहासिक काल से ही व्यापारी के रूप में प्रवास करते रहे एवं विदेशी-व्यापार को बढ़ावा देते रहे। उस

* रीडर- प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग रा०मो०ग०पी०जी० कालेज, फैजाबाद।

महाभारत में राष्ट्र की अवधारणा

डॉ० प्रज्ञा मिश्रा*

महाभारत को भारतीय ज्ञान का विश्वकोष कहा जा सकता है। विश्वकोष से तात्पर्य है ऐसा कोष, जिसमें विश्व को नानाविध ज्ञान के प्रकाशक तत्त्व उपलब्ध हैं। इस महाग्रन्थ में भारतीय मनीषा ने विश्व के विभिन्न पहलुओं को संचित कर दिया है। *महाभारत* में जिस राजधर्म को प्रतिष्ठित किया गया है, उसमें राष्ट्र का कल्याण निहित है। सम्प्रति लोकतन्त्र में लोकहित का जो उद्घोष किया जाता है, वह *महाभारत* में प्रतिपादित राजधर्म में पूर्णरूपेण मान्य किया गया है। इस ग्रन्थ में सुयोग्य राजा एवं राज्य की सत्ता को अनिवार्य एवं सर्वोपरि स्वीकृत किया गया है। इसमें राजा, प्रजा, मन्त्री, राज्य के उद्देश्य, सप्तांग, राज्यों के प्रकार, राज्य के कार्य, मण्डल-सिद्धान्त, षाड्गुण्य, दूत-व्यवस्था, गुप्तचर व्यवस्था, सैन्य संगठन, युद्ध आदि विविध राजनीतिक घटकों के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है जो तत्कालीन भारतीय राजनैतिक चिन्तनधारा की सत्ता को प्रमाणित करती है।

राज्य-हित या राष्ट्र-हित *महाभारत* में सर्वोपरि माना जाता था। भारतवर्ष में जो भिन्न-भिन्न राजाओं द्वारा शासित क्षेत्र थे, उन्हें ही 'जनपद' 'देश' अथवा 'राष्ट्र' कहा गया। *महाभारत* में जिस राजधर्म को प्रतिष्ठित किया गया है, उसमें राष्ट्र का कल्याण निहित है। सम्प्रति लोकतन्त्र में प्रजाहित (लोकहित) का जो उद्घोष किया जाता है, वह *महाभारत* में प्रतिपादित राजधर्म में पूर्णरूपेण मान्य किया गया है।[1]

राष्ट्रवाद ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अपनी परम्पराओं एवं संस्कृति को अक्षुण्ण बनाने वाले लोग एक राजनीतिक इकाई के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। सच्ची राष्ट्रीयता लोगों को पृथ्वी पर अपना स्थान स्थापित करने में सहायता करती

* रीडर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, रा.स्नो.ग.पी.जी. कॉलेज, फैजाबाद, उ.प्र.

मिश्रा, प्रज्ञा, इतिहास दर्पण 17 (1) : 96-99 | 2012 | ISSN 0974-3065
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली

"बौद्ध धर्म एवं पर्यावरण : अशोक के अभिलेखों में"

डॉ. प्रज्ञा मिश्रा*

बौद्ध साहित्य में पर्यावरण सम्बन्धी सन्दर्भ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। प्रकृति प्राणवान है, हमारी शक्ति है, प्रत्येक जीव के लिये इसकी उपयोगिता है। विनयपिटक के महावग्ग' में वृक्ष लगाने के विज्ञान में निपुण लोगों को "आरामिक" कहा गया है। मकजातक' के अनुसार वट या बरगद के वृक्ष नगरों के प्रधान द्वारों पर लगाये जाते थे जिनके नीचे 500 आदमी तक बैठकर भोजन कर सकते थे एवं रह सकते थे। बौद्ध साहित्य के अनुसार प्रत्येक ग्राम में एक सार्वजनिक चारागाह होता था जहाँ सभी पशु चरने हेतु जाते थे। खेतों में अन्न कटने के बाद पशु स्वच्छन्द रूप से चरा करते थे। उपयोगिता की दृष्टि से अश्वों के महत्व पर प्रकाश पड़ता है। बालोदक जातक 183 में उल्लेख है कि थके हुये घोड़ों को अंगूर का रस पिलाया जाता था।[1] वस्तुतः बौद्ध साहित्य में जीवमात्र के प्रति मैत्री एवं करुणा का भाव सर्वत्र दृष्टिगत होता है। अरब लेखक अल इद्रीसी को एक किसान द्वारा अनुपयोगी बूढ़े बैल की सेवा करते हुये देखकर आश्चर्य हुआ था। उसने उस किसान से कहा था कि इस बैल को व्यर्थ में भोजन देने से क्या लाभ? इसे मारकर इसके चमड़े का उपयोग भी किया जा सकता है। तब कृषक ने कहा था "हम अपने पशुओं की सेवा भी अपने परिवार के वृद्धों के समान ही करते हैं।" यह भारतीय संस्कृति की चिरन्तन चल रही विशेषता है।

भगवान बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन प्रकृति के साथ ही व्यतीत हुआ था। उनका जन्म लुम्बिनी वन में, बोधि प्राप्ति पीपल वृक्ष के नीचे, प्रथम धर्म चक्र प्रवर्तन सारनाथ के ऋषिपत्तन मृगदाव में तथा महापरिनिर्वाण कुशीनगर में दो शालवृक्षों के कुंज में हुआ था। बुद्ध ने अपने जीवन के चौबीस वर्षावास श्रावस्ती के उपवनों में व्यतीत किये थे।[2] प्रायः सभी विहार एवं संघाराम प्रकृति की गोद में, शुद्ध जल की व्यवस्था को ध्यान में रखकर बनाये जाते थे। अंगुत्तर निकाय' में उल्लेख है कि समृद्ध नागरिक का प्रमुख लक्षण माना गया था कि उसके उपभोग के लिये उपवन हो। कल्हण की राजतरंगिणी' में उल्लेख है- "उपवनों की लोकप्रियता का बहुत बड़ा कारण मानव की चित्तवृत्तियों को प्रफुल्लित करना था। सुख और दुःख में इन्हीं वृक्षों के नीचे मानव ने सम्वेदनाओं का अनुभव किया है।" मेगस्थनीज के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य के राजप्रासाद के समीप मनोरम उपवन था। इस उपवन में देश-विदेश से पौधे मँगाकर लगाये गये थे। ये वृक्ष सौन्दर्य-सम्वर्द्धन करते थे।

अशोक मौर्य वंश का प्रतापी शासक था; जो अपनी प्रशासनिक क्षमताओं, विजयों एवं धम्म-नीति के कारण विख्यात है। मौर्य वंश के सर्वाधिक यशस्वी शासक के रूप में जहाँ अशोक अखण्ड जम्बुद्वीप विजयी है; वहीं धर्म के क्षेत्र में भी इसकी पताका आसेतु हिमालय फहराती रही एवं विदेशों तक धम्म-ध्वजा फहराई। अशोक के द्वारा खुदवाये गये स्तम्भ-लेख एवं शिलालेख स्वयं उसकी कीर्ति प्रकट करते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में मैंने अशोक के अभिलेखों में वर्णित बौद्ध धर्म एवं पर्यावरण पर प्रकाश डालने की कोशिश की है।

मौर्य सम्राट अशोक के ब्राह्मी, खरोष्ठी, अरामायिक और यूनानी लिपियों में अंकित अभिलेख देश के विभिन्न भागों से प्राप्त हुये हैं। ब्राह्मी लिपि में लिखे अभिलेख अब तक 34 स्थलों से मिले हैं और विभिन्न स्थलों से इनकी कई-कई प्रतियाँ पायी गयी हैं। खरोष्ठी लिपि के अभिलेख अफगानिस्तान और पाकिस्तान से ही मिले हैं। इन अभिलेखों को अध्ययन की दृष्टि से तीन भागों में रखा जा सकता है -

1. **गुहा अभिलेख :-** बिहार प्रदेश के गया जिले में बराबर पहाड़ में कुछ गुफाएँ हैं जो कर्ण चौपर गुफा, सुदामा गुफा एवं विश्वझोपड़ी गुफा के नाम से प्रसिद्ध है, जिन्हें अशोक ने आजीविकों के रहने के लिये बनवाया था।

2. **शिलाभिलेख :-** ये अभिलेख पर्वतीय चट्टानों पर टंकित कराये गये हैं इनकी संख्या 14 है। ये चौदह लेख एक ही क्रम में एक साथ लिखे गये हैं।

3. **स्तम्भ अभिलेख :-** पर्वतीय चट्टानों के अतिरिक्त अशोक ने कुछ अभिलेख पत्थर के बने स्तम्भों पर अंकित कराये थे।

---

*. रीडर-प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कालेज, फैजाबाद-224001 फोन नं. 9450922725

अथर्ववेद में अभिव्यक्त रुद्र

डॉ० प्रज्ञा मिश्रा * वीरेन्द्र कुमार सिंह **

अथर्ववेद में रुद्र का स्वरूप वर्ण के सदृश ही प्राप्त होता है किन्तु यत्र–तत्र उनके विषय में कुछ नवीन तथ्यों का उल्लेख भी हुआ है।

ऋग्वेदीय रुद्र आकाश में मध्यमवर्गीय देवता है। अथर्ववेद में रुद्र को कहा गया है कि वे धनुर्धारी और नीलकेश वाले (नील शिखण्डित) है।[1] इसमें रुद्र को कृष्णोदर और लाल पीठ वाला कहा गया है।[2] अन्यत्र कहा गया है कि रुद्र सहस्त्राक्ष है।[3] रुद्र के इस सम्बोधन को उसके वर्तमान प्रभाव का सूचक माना जा सकता है। इसमें भी ऋग्वेद की भाँति रुद्र की स्तुति उग्र और सौम्य दोनों रूपों में की गई है। फिर भी उग्र रूप पर विशेष बल दिया गया है। यहाँ भी रुद्र को सौम्य रूप में 'जलाशभेषज' कहा गया है[4] और व्याधियों के नाश के लिए उसका आवाहन किया गया है।

अथर्ववेद में रुद्र को प्रायः पशुपति भी कहा गया है। तथा रुद्र के इस विरुद का सर्वप्रथम प्रयोग इसके बाद ही किया गया है। चूँकि ऋग्वेद में भी उनके द्वारा पशुओं के कल्याण का संदर्भ प्राप्त होता है इसलिए यह विरुद ऋग्वेदीय वर्णन का विकास ही माना जा सकता है।

अथर्ववेद के रुद्र अपने रौद्र रूप में अपने विषधर शिरों से व्याधियों को फैलाते है। रुद्र से प्रार्थना की गई है कि अपने विद्युत् शिरों को अपने स्त्रोताओं से दूर रखें।[5] एक अन्य स्थल पर रुद्र के मात्सर्य की भर्त्सना की गई है।[6] अन्यत्र स्थल पर रुद्र को ज्वर और विष से त्रस्त करने वाला कहा गया है।[7]

अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों में रुद्र का सम्बन्ध नरमेध से भी परिलक्षित होता है। यहाँ एक स्थल पर रुद्र को यज्ञ में आहुति के रूप में पाँच प्राणी समर्पित किए गए है। उन प्राणियों में से एक प्राणी मनुष्य है।[8] इस आलेख से ऐसे संकेत प्राप्त होते है कि रुद्र को प्रसन्न करने के लिए कभी–कभी नर–बलि भी दी जाती थी। इस प्रथा से रुद्र की भयंकर प्रकृति उद्भासित होती है।

एक अन्य स्थान पर रुद्र के भौंकने वाले विकराल श्वानों (कुत्तों) का संदर्भ प्राप्त होता है जो भक्ष्य वस्तु को बिना चबाए ही निगल जाते है।[9] परवर्ती युग के ग्रन्थों में श्वानों को यम का सहचर बताया गया है। यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि इस युग में रुद्र को मृत्यु के देवता के रूप में भी माना जाता [illegible] श्वानों की कल्पना उनके सहचर के रूप में की गई [illegible]

अथर्ववेद [illegible] रुद्र का सम्बन्ध भूतों, पिशाचों [illegible] संकेतित होता है। यहाँ पर मृतकों का सम्बन्ध पिशाचों से बताया गया है और उन्हें शव–भक्षण करने वाला (क्रव्याद) कहा गया है।[10] एक अन्य स्थान पर अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह रुग्ण मनुष्य के उस भाग को जिसे पिशाचों ने खा लिया है, पुनः प्रदान करें।[11]

अथर्ववेद में ही सर्वप्रथम रुद्र की कल्पना भूतपति के रूप में की गई है और इनकी अभिन्नता भव और सर्व से स्थापित की गई है जिन्हें स्पष्टतः भूतपति कहा गया है।[12] यद्यपि रुद्र का रूप इसमें भयंकर एवं उग्र परिलक्षित होता है तथापि उसके प्रभाव और लोकप्रियता में क्रमिक रूप से वृद्धि के ही संकेत मिलते है। [illegible] स्थलों पर भव और सर्व देवताओं के [illegible] और विद्युतों [illegible] उल्लेख हुआ है।[13] [illegible] देवताओं को [illegible] से पृथक माना गया [illegible] परन्तु अन्यत्र [illegible] रुद्र के ही दो नाम बन गए है। [illegible] विवरण से [illegible] होता है कि अथर्ववेद के [illegible] में रुद्र और इन देवताओं को स्वीकृत किया जा चुका था।

अथर्ववेदयुगीन रुद्र के सम्प्रदाय की लोकप्रियता तथा आर्येत्तर समाज से उसका सम्बन्ध अथर्ववेद के पन्द्रहवें मण्डल के व्रात्यसूक्त के अध्ययन से परिलक्षित होता है। इसमें रुद्र का उल्लेख व्रात्य के साथ किया गया है। सूक्त के प्रारम्भ में कहा गया है कि व्रात्य महादेव बन गया। व्रात्य ईशान बन गया। अन्त में उल्लिखित है कि व्रात्य पशुओं की ओर चला और उसने रुद्र का रूप धारण किया। इस सूक्त से व्रात्य के दो रूप स्पष्ट होते है प्रथमतः यह आर्येत्तर विरोधी [illegible] व्रात्यों का सम्बन्ध रुद्रोपासना से [illegible] इसका समर्थन यजुर्वेद से भी होता है [illegible] लिए [illegible] शब्द का प्रयोग हुआ है तथा उनमें [illegible] में व्रात और [illegible] की गणना की गई है। [illegible] सांस्कृतिक रूप [illegible] आर्येत्तर परम्परा से सम्बद्ध थे। [illegible] समर्थन में यह उल्लेखनीय है कि ताण्ड्य ब्राह्मण में

(शेष पृ० ४५ पर)

(प्रज्ञा)

(97) 8/A

International Journal of Humanities and Social Science Invention
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org Volume 2 Issue 12| December. 2013| PP.67-71

Cultural History of Indian Diaspora in Cambodia

Dr. Pragya Mishra
Associate Professor Department Of Ancient History, Raja Mohan Girls P. G. College Fatzabad U.P., India.

ABSTRACT: *Since Ancient Days, Indians Had Been Making Excursion To Foreign Countries Through Land And Sea Routes Especially To Suvarnabhumi Of South East Asia. At Present Also Indian Culture Prevailing In Countries Like Cambodia, Burma, Malaya Etc. Speak For Themselves. In This Work Attempt Has Been Done To Establish The History Of Spread Of Indian Culture In Cambodia Through Inscriptions, Jatak Stories, And Presently Available Historic Temples. It Is Found That Indians Became Diaspora In Cambodia In The Process Of Not Only Doing Business But Also To Establish Civilization In The Tribal Land Of Cambodia. Indian Diaspora Made The Land Moralist Through Their Thinking, Writing And Ruling.*

KEYWORDS: *Cambodia, Cultural, Diaspora, Funan, Kamboj*

I. INTRODUCTION

Indians Had Been Visiting Foreign Countries To Encourage Trade Activities Since Ages. In The Beginning They Had Been Trading Through Land And Sea Routes. Antiques Recovered From SUMER[1] And SINDH Speak About The Trade Relation Between The Two Countries. Antiques Of Sindhu Culture Were Sold In Markets Of Sumer, From Where These Were Reaching To The Then Developed Cultures Of Egypt, Assoliya, Kreet Etc. Like Countries. In The Literature Of Western Countries We Find The Words Of Vedic Age Which Exhibit The Trade Relation Among The Countries. The Words Ofir (Abhir), Koaf (Kapi), Karpas (Kapas) Etc. Are Found In Bible Which Probably Have Reached To Western Countries From India. In The Inscription Of Asia Minor Of Second Century (BC), The Incorporation Of Mitra, Nasatya, Varun Etc. Deities Exhibit The Proper Connection Of Indians With Foreign Countries.In My Opinion, If Indian Literature And Deities Are Spread In Asia Minor And Nearby Countries Then It Is Certain That Indians Had Been Living There Who Spread The Indian Literature And Culture In Asia Minor And Neighboring States.Inscripts Available On Weight-Measures Recovered From ASERIA Is In BRAHMI Inscript, Neem Wood And Malmal Like Indian Articles Are Found With Mummies In Egypt. Many Indian Articles Have Been Recovered From The Grave Of The Then Egyptian King TUTAN KHAMEIN. Many Indian Articles Were Sold In The Athens City Of Greek. Indian Articles Were Exported To Western Countries From The Ports Of Sopara, Bharukaccha And Konkan[2]. In Buddha Era (6^{th} Century BC) Western And Eastern Countries Had Trade And Cultural Relationship With India. Crows And Peacock Like Birds From India Were Sold By Indian Businessmen For 500 And 1000 KARSHARPAN In Foreign Countries[3]

II. OUTFLOW OF INDIANS TO CAMBODIA.

Indian Foreign Trade Was On Its Peak In 5^{th} Century B.C.[4]. Indian Businessmen Of Eastern States Were Going To SUVARNABHUMI Through CHAMPA Port[5]. Suvarnabhumi Consisted Of Areas Like Burma, Malaya, Myam, Cambodia Etc. Indian Businessmen Were Journeying Frequently To Suvarnabhumi[6]. After Trading Many Articles, They Were Earning Money With Great Hardships And Then Returning To Own Country[7].It Implies That Indians Established Their Culture In South-East Asia Through Business Exchange. Some Of These Businessmen Settled Permanently In Foreign Land And Involved Themselves To Begin The Political System Of That Country. Brave Kshatriya Princes Established Their State Through Bravery And Wandering Monks Established And Extended Their Religion And Philosophy. By 2^{nd} Century B.C., Many Indian States Were Established Within Indo-China Region. Cambodia Was Situated In South Of Indo-China Where Indian Diaspora Established A KAMBUJ State Under Funan. Most Of The Countries Of South –East And South Asia Were Part Of India In Ancient Times (1^{st} Century B.C.). Indians Made Colonies In States Like Indonesia, Malaysia, Cambodia And Ciyam And Enlightened Their Citizens By Taking Them In The Fold Of Indian Religion And Culture. Hundreds Of Sanskrit Inscriptions Have Been Recovered From These Countries, Probably Sanskrit Became The State Language Of These Countries Which Was Brought In By Indians. Indonesia Of South-East Asia Was First Under Holland And Indo-China Countries Like Cambodia, Laos And Vietnam Were First Under France.

60B

Scanned with OKEN Scanner

International Indexed & Refereed Research Journal, ISSN 0974-2832,(Print) E- ISSN-2320-5474, December,2013, VOL-V * ISSUE-59

शोध पत्र – इतिहास

इतिहास जानने में अभिलेखों का महत्त्व

* डॉ. प्रज्ञा मिश्रा

* एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, राजमोहन गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, फैजाबाद

December ,2013

सारांश :– इतिहास को जानना मानव की आवश्यकता ही नहीं अपितु स्वभाव भी है। जब भी मनुष्य कोई ऐसी चीज पाता है जिसका सम्बन्ध भूतकाल से हो, तो इसकी आंखे चमक उठती है। अतीत को जानकर समझकर और उससे सीख लेकर मनुष्य अपने वर्तमान एवं भविष्य दोनों को बेहतर बनाता है। समस्त इतिहास को प्रागैतिहासिक काल, आद्य काल एवं ऐतिहासिक काल में विभाजित किया गया है, जिनके बारे में साहित्यिक साक्ष्य, विदेशी यात्रियों का विवरण और पुरातत्व सम्बन्धी साक्ष्य का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में प्राचीन इतिहास के पुनर्निर्माण में समय–समय पर लिखवाये गये अभिलेखों का अध्ययन किया गया है। इस कार्य में यह पाया गया कि अभिलेखीय साक्ष्य इतिहास के राजनीतिक, सामाजिक, एवं आर्थिक तथ्य को प्रस्तुत करने के साथ–साथ राजा एवं प्रजा की धार्मिक स्थिति को भी दर्शाते है। अभिलेखों का उद्देश्य जन–सामान्य तक राजाज्ञा पहुँचाना था ताकि नियम कानून जानकर प्रजा उसका लाभ उठा सके।

कुंजी शब्द :– इतिहास, जूनागढ़ अभिलेख, मन्दसौर अभिलेख, गढ़वा ताम्रपत्र, रुम्मिनदेई अभिलेख।

प्रस्तावना

इतिहास जानने की श्रंखला में, प्राचीन इतिहास के पुनर्निर्माण में समय–समय पर लिखवाये गये अभिलेखों का महत्व अत्यधिक है। साहित्यिक साक्ष्यों की पुष्टि जब तक पुरातात्विक साक्ष्यों से नहीं कर ली जाती है; तब तक इतिहास के सत्यांश की परख नहीं हो पाती। अभिलेख इतिहास जानने की प्रक्रिया में सत्य के अधिक निकट होते हैं; क्योंकि ये अधिकतर पत्थरों या धातु की चादरों पर खुदे मिले हैं; जिनमें साहित्य की तरह परिवर्तन करना सम्भव नहीं है। अभिलेखों का ऐतिहासिक महत्व साहित्यिक साक्ष्यों से अधिक है। अभिलेख पाषाण–शिलाओं, स्तम्भों, ताम्रपत्रों, गुफाओं, दीवारों, मुद्राओं एवं प्रतिमाओं आदि पर खुदे हुए मिले हैं। भारतीय इतिहास जानने के क्षेत्र में सबसे प्राचीन अभिलेख मौर्य–वंश के शासक अशोक के हैं। अशोक के बाद के अभिलेख दो वर्गों में रखे जा सकते हैं –

1. सरकारी अभिलेख और 2. निजी अभिलेख

सरकारी अभिलेखों के अन्तर्गत राजकवियों द्वारा लिखी गयी प्रशस्तियाँ है; या राजाज्ञा के रूप में राजाओं द्वारा लिखवाये गये भूमि–अनुदान पत्र। ये अभिलेख विश्वसनीय हैं; और तत्कालीन राजा के राज्य के बहुआयामी तत्व दर्शाते हैं। भूमि–अनुदान–पत्र अधिकांशतः ताँबे की चादरों पर उत्कीर्ण हैं। इन पर भूमिखण्डों की सीमाओं का उल्लेख है, और उस अवसर का वर्णन है, जब यह भूखण्ड दान में दिया गया। साथ ही शासकों की उपलब्धियों का भी वर्णन है। इतिहास जानने में ये भूमि–अनुदान–पत्र यह दर्शाते हैं कि लगभग 600 से 1200 ई0 के मध्य भारत में सामंतीय अर्थव्यवस्था स्थापित हो गयी थी।[1]

निजी अभिलेख अधिकांशतः मन्दिरों में या मूर्तियों पर उत्कीर्ण है। ये तिथियुक्त हैं; जिससे इन मन्दिरों के निर्माण का समय ज्ञात होता है। इस प्रकार के अभिलेख मूर्तिकला और वास्तु कला को उजागर करते हैं; जिससे तत्कालीन धार्मिक दशा की जानकारी मिलती है। साथ ही अभिलेख तत्कालीन लिपि एवं भाषा तथा राजनीतिक दशा को भी प्रकट करते हैं। विदेशों से प्राप्त कुछ अभिलेख भी भारतीय इतिहास की जानकारी देते हैं। एशिया माइनर में बोगजकोई नामक स्थान से लगभग 1400 ई0 पूर्व का एक सन्धिपत्र अभिलेख मिला है; जिसमें मित्र, वरुण, इन्द्र आदि वैदिक देवताओं के नाम मिले हैं। यह अभिलेख एक तरफ ऋग्वेद की तिथि निर्धारित करने में सहायता प्रदान करता है; तो दूसरी तरफ इस तथ्य को प्रस्तुत करता है, कि वैदिक आर्यों की एक शाखा एशिया माइनर में रहती थी। ऐसे ही मिस्र में तेलूअल–अमर्ना में मिट्टी की कुछ तख्तियाँ मिली हैं; जिन पर बेबीलोनिया के कुछ शासकों के नाम खुदे हैं। ये नाम ईरान और भारत के शासकों के नामों जैसे हैं। इसी प्रकार पर्सिपोलिस और बेहिस्तून अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ईरान सम्राट दारा प्रथम ने सिन्धु क्षेत्र के गन्धार जनपद को जीत कर इसे ईरान का एक प्रान्त बना लिया था।

अभिलेखों की दृष्टि से भारतीय इतिहास

इतिहास की जानकारी के सन्दर्भ में अभिलेखों का महत्व सर्वाधिक है। अभिलेख, इतिहास के विभिन्न पक्षों को उजागर करने में सहायक सिद्ध होते हैं जैसे –राजनीतिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, धार्मिक स्थिति, साहित्यिक विवरण, कलात्मक तथ्य, भाषाई पक्ष एवं भौगोलिक विवरण आदि।

राजनीतिक इतिहास के सन्दर्भ में जब हम दृष्टिपात करते हैं तो अभिलेखों से प्राचीन राजवंशों की वंश–परम्परा का ज्ञान मिलता है। यद्यपि ईसा पूर्व के किसी भारतीय अभिलेख में स्पष्ट वंशवृक्ष नहीं मिला है। किन्तु कालान्तर में रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख वंशवृक्ष की श्रेणी का प्राचीनतम अभिलेख है; जिसमें रुद्रदामन की तीन पीढ़ियों का उल्लेख है –

"स्वामिचष्टनस्य पौत्रस्य राज्ञः क्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामिजयदाम्नः पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य रुद्रदाम्नः।"

– जूनागढ़ अभिलेख

गुप्तवंश के अभिलेखों में वंशावली के उल्लेख की परम्परा पराकाष्ठा पर पहुँच गयी।[2] समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति, स्कन्दगुप्त

Scanned with OKEN Scanner

IJAS, JAN, 2014, Vol. 8, No. 1, 94-97 ISSN 0974-0503;Reg. No. UPBIL/2007/23350

लोक मानस में "सोम" की अवधारणा

प्रज्ञा मिश्रा*

आज कम्प्यूटर-युग में 'सोम' शब्द का वास्तविक अर्थ एवं उद्देश्य तिरोहित होता सा दिखता है। जहाँ भारतवर्ष के सांस्कृतिक परिदृश्य में 'सोम' समुद्र मंथन के समय समुद्र से निकले अमृत के रूप में व्याख्यायित था, वही अब आधुनिकता के पुजारी इस 'सोम' को 'मदिरा' से समीकृत करते हैं। जो 'सोम' चन्द्रमा का पर्याय माना जाता है, जो शीतलता प्रदान करता है एवं पौधों में औषधीय गुणों को उद्भूत करता है; उस सोम की ममता भ्रमवश कुछ लोग अल्कोहल युक्त शराब से करते हैं। जो न तो औषधीय गुणों से युक्त है और न ही शीतलता प्रदान करती है। जो सोमकभी देवताओं में शक्ति का संचार करता था एवं विवेक को जागृत करता था, वही अब मदिरा के रूप में लोगों को विवेक शून्य एवं मादक बना देता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में 'सोम' क्या है ? एवं इसके गुण क्या है ? इसी का विवेचना एवं व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

देव-परिवार में 'सोम' का अत्यन्त प्रचलन था। निश्चितः 'सोम' एक दिव्य पेय है। इसे अमृत तुल्य या अमृत का ही एक पर्याय माना गया है। अनेकानेक ग्रन्थों का अनुशीलन करने के पश्चात् 'सोम' को निम्नलिखित रूपों में व्याख्यायित किया जा सकता है-

(1) चन्द्रमा एवं चन्द्रज्योत्सना के रूप में:- चन्द्रमा का पर्याय 'सोम' है। "सुषुम्णः सूर्य रश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः"।[1] सोम का रक्षक एवं स्रोत चन्द्रमा या चन्द ज्योत्स्ना सोम के रूप में लक्षित होता है। अथर्ववेद[2] में उल्लेख मिलता है-

"सोमस्येव जातवेदो अंशुरा व्यायतामयम्
अग्ने विरश्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु।"

"यह मनुष्य चन्द्रमा की कला के समान बढ़े। अग्नि के आदर्श को अपने सामने रखते हुये वैद्य ऐसा प्रयत्न करें जिससे रोगी दोषरहित, पवित्र और निरोग बने तथा वह दीर्घायु प्राप्त करें।" उपर्युक्त ऋचा में सोम को चन्द्रमा माना गया है एवं उसे मनुष्य को रोगरहित करके उसमें अपनी कला के समान वृद्धि करने की बात कही गयी है। ध्यातव्य है कि चन्द्रमा अथवा सोम मनुष्य को रोगरहित कर रहा है। अतः इसका समीकरण अल्कोहल युक्त मदिरा से कदापि नहीं सम्भव है। इस प्रकार वेदों में सोम चन्द्रमा अथवा चन्द्र ज्योत्सना के रूप में लक्षित होता है।

(2) पौधों के रूप में :- ऋग्वेद में सोम के अधिकांश वर्णनों से ज्ञात होता है कि यह एक पौधा था। मूसल एवं उलेखल[3] अथवा पत्थरों[4] से कूटकर इसका रस निकाला जाता था। तदनन्तर छन्नी से छान लियाजाता था। सोम छानने का छन्ना मेष-लोम (ऊर्णा) से निर्मित प्रतीत होता है।[5] ऋग्वेद में एक स्थान पर गृत गाय की खाल को रंगकर उसे सोमपात्र के रूप में प्रयुक्त करने का उल्लेख मिलता है।[6] इस प्रकार तैयार किये गये सोम-रसको निश्चित एवं स्वतन्त्र दोनों

*एसोसिएट-प्राचीन भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कालेज, फैजाबाद।

मिश्रा, प्रज्ञा, इतिहास दर्पण [अंक 21 (1), चैत्र प्रतिपदा, कलियुगाब्द 5118, ईसवी सन् 2016], पृ० 63-66, ISSN 0974-3065,
© अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नयी दिल्ली।

प्रमुख बौद्ध भिक्षुणियाँ

प्रज्ञा मिश्रा

छठीं शताब्दी ई० पू० भारत में ही नहीं, विश्व में आर्थिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्रांति का युग था। भारत में इसी युग में द्वितीय नगरीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ हुआ साथ ही जैन और बौद्ध धर्म के रूप में दो युगान्तकारी धर्मों का भी आविर्भाव हुआ। इस समय जनसाधारण की धार्मिक आकांक्षाओं को सन्तुष्ट करने में वैदिक धर्म असमर्थ था, कर्मकांड की प्रधानता थी तथा यज्ञ जटिल और व्ययसाध्य हो गये थे। ब्राह्मणों की धन-लोलुपता एवं यज्ञों में हिंसा के आधिक्य के कारण साधारण जनता वैदिक धर्म से विमुख हो रही थी। ऐसी स्थिति में निवृत्तिमार्गी बौद्ध एवं जैन धर्म का प्रादुर्भाव हुआ।

बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध का जन्म 563 ईसा पूर्व में नेपाल की तराई में स्थित लुम्बिनी ग्राम-वन में हुआ था। इनके पिता शुद्धोदन शाक्य गणराज्य के प्रमुख थे, जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। बौद्ध-परम्परा में शाक्यमुनि गौतम बुद्ध अट्ठाइसवें बुद्ध थे। तण्हंकर, मेधंकर, शरणंकर, दीपंकर आदि सत्ताइस बुद्ध इनसे पहले हो चुके थे। बुद्ध का जन्म, बुद्ध को ज्ञान एवं बुद्ध को महापरिनिर्वाण, महल या घर में नहीं अपितु, नगर-ग्राम के बाहर जंगल में वृक्ष के नीचे मिलता है। सभी बुद्धों की इसी परम्परा के कारण उन्हें तथागत (उसी परम्परा से आये हुये) कहा गया है।[1]

महात्मा बुद्ध के जन्मस्थल लुम्बिनी में सम्राट अशोक ने एक प्रस्तर स्तम्भ स्थापित करवाया जिसे रुम्मिनदेई स्तम्भ अभिलेख के नाम से जाना जाता है। इस पर उल्लिखित है - "20 वर्षों से अभिषिक्त देवों के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने स्वयं आकर इस स्थान की पूजा की, क्योंकि यहीं बुद्ध (शाक्यमुनि) उत्पन्न हुये थे। इसने इसे पत्थर की विशाल दीवार से घिरवाया और शिला स्तम्भ स्थापित करवाया, क्योंकि यहाँ भगवान बुद्ध उत्पन्न हुए थे।[2] इस लेख में अशोक ने ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख किया है जिसका उद्देश्य यह है कि जिस क्षेत्र में यह स्तम्भ स्थापित है वह क्षेत्र लुम्बिनी है, जो बुद्ध का जन्म स्थल है। जन्म के सातवें दिन उनकी माता का देहावसान हो गया। उनका पालन-पोषण मौसी प्रजापति गौतमी ने किया। कालान्तर में यही प्रजापति गौतमी भिक्षुणी-संघ का कारण बनीं एवं यही प्रथम महिला बौद्ध भिक्षुणी भी बनीं।

बुद्ध का दर्शन अपने मौलिक रूप-प्रतीत्य समुत्पाद (क्षणिकवाद) में भारी क्रांतिकारी था। जगत, समाज, मनुष्य सभी को उन्होंने क्षण-क्षण परिवर्तनशील घोषित किया और कभी न लौटने वाले 'ते हि नोदिवसा गताः (वे हमारे दिवस चले गये) की परवाह छोड़कर परिवर्तन के अनुसार अपने व्यवहार अपने समाज के परिवर्तन के लिये वे हर वक्त तैयार रहने की शिक्षा देते थे। बुद्ध ने अपने बड़े से बड़े दार्शनिक विचार को भी बेड़े के समान सिर्फ उससे फायदा उठाने के लिये कहा, और समय के बाद भी उसे ढोने की निन्दा की।[3]

भारतीय संस्कृति में नारियों को सदैव उच्च स्थान दिया गया। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' की बात कही गयी वहीं नारियों ने अपने कृतित्व द्वारा यह चरितार्थ करके भी दिखाया। अपाला, घोषा, गार्गी, लोपामुद्रा जैसी वैदिक ऋषि-नारियों ने नये कीर्तिमान स्थापित किये। तथागत बुद्ध नारी-समाज को भिक्षु धर्म में दीक्षित करने के पक्ष में नहीं थे। विनयपिटक में स्पष्ट उल्लेख है कि तथागत बुद्ध ने कपिलवस्तु में अपनी विमाता महाप्रजापति गौतमी के भिक्षुणी बनने के अनुरोध को ठुकरा दिया था और वैशाली लौट आये थे।[4]

भिक्षुणी-संघ की स्थापना धर्म-प्रचार के पाँचवें वर्ष में हुयी थी।[5] जिस समय बुद्ध वैशाली की कूटागारशाला में ठहरे थे उसी समय उन्हें अपने पिता शुद्धोदन की मृत्यु का समाचार मिला और वे घर लौटे। यहीं उन्होंने शाक्यों और कोलियों में रोहिणी नदी के सिंचाई के पानी को लेकर होने वाले झगड़े को निपटाया। विमाता गौतमी को भिक्षुणी बनने की आज्ञा न देकर वे वैशाली लौटे किन्तु जब प्रजापति गौतमी सूजे पैरों, धूल से लथपथ रोती हुयी, बहुत सी शाक्य नारियों के साथ अपने बाल मुंडवाकर, काषाय वस्त्र पहनकर तथागत के महावन

Scanned with OKEN Scanner

बौद्ध स्थल : श्रावस्ती

प्रज्ञा मिश्रा

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में भारत का आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार दोनों ही उन्नत दशा में था, फलस्वरूप जल एवं स्थल दोनों मार्ग व्यापार के लिये प्रयुक्त होते थे। व्यापारी समूह बनाकर काफिलों में चलते थे। उत्तर एवं दक्षिण भारत में व्यापार के लिए अनेकशः व्यापारिक मार्ग थे- जिसमें से एक मार्ग राजगृह-तक्षशिला का था, जो उत्तरापथ मार्ग कहलाता था। दूसरा मार्ग राजगृह-श्रावस्ती का था तथा तीसरा महत्वपूर्ण मार्ग श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाता था।

फलस्वरूप भारतीय नगरों की समृद्धि दिन-प्रतिदिन द्विगुणित हो रही थी। यह भारतवर्ष में द्वितीय नगरीकरण के प्रारम्भ का युग माना गया था। लगभग 1000 ई०पू० से लेकर 500 ई०पू० में लोहे का व्यापक स्तर पर सुनियोजित प्रयोग नगर-निर्माण की प्रक्रिया में प्रारम्भ हुआ। इसका प्रचुर उल्लेख साहित्य में मिलता है। इस कालावधि में जिन नगर-तत्वों का आविर्भाव हुआ; उनका निरूपण महाभारत के शान्तिपर्व के 87वें अध्याय में मिलता है। इस काल के नगरों में वाराणसी, राजगृह, कौशाम्बी, श्रावस्ती, उज्जयिनी, तक्षशिला, साकेत, कपिलवस्तु, पावा, कुशीनगर, भृगुकच्छ, शुर्पारक, काम्पिल्य, मथुरा, मिथिला, शाकल, पुष्कलावती, पाटल, द्वारका, इन्द्रप्रस्थ, ताम्रलिप्ति, दन्तपुर, विदिशा तथा पाटलिपुत्र उल्लेखनीय हैं। पालि-साहित्य में श्रावस्ती को प्रमुख नगरों में रखा गया है।[1]

श्रावस्ती प्राचीन भारत में कोसल का एक प्रधान नगर था,[2] जिसे उत्तम नगर बताया गया है।[3] इसके लिए यह भी धारणा है कि, प्राचीन काल में श्रावस्त नामक सूर्यवंशी राजा ने इसे बसाया था, वहीं पाली साहित्य का सावस्थ प्रतीत होता है जो जीवन की अंतिम यात्रा में संन्यासी हो गया था। प्राचीन ग्रन्थों में श्रावस्ती के लिये सावत्थी[4], इन्द्रपुरी[5], या चन्द्रिकापुरी नाम का उद्धरण मिलता है। इन नामों से सन्दर्भित अनेक साक्ष्य एवं कथानक प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं।

प्रथम साक्ष्य बौद्ध ग्रन्थों से प्राप्त होता है; जिसके अनुसार यहाँ पहले 'सवत्थ' नामक एक ऋषि रहते थे जिनके नाम के आधार पर इस क्षेत्र का सावत्थी नाम पड़ा, जैसे

---

* एसो. प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृत विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी.का., फैजाबाद (उत्तर प्रदेश)।

इतिहास-लेखन की दृष्टि में चालुक्यों के अभिलेख
(पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल अभिलेख के विशेष संदर्भ में)

डॉ. प्रज्ञा मिश्रा*

भारतीय इतिहास का सांगोपांग अध्ययन करने के लिये यहाँ की भौगोलिक संरचना का ध्यान रखना अनिवार्य है। जिस प्रकार अतीत में घटित हुयी मुख्य घटना तब तक इतिहास का रूप नहीं लेती, जब तक उस घटना के सन्दर्भ में लिखित एवं पुरातात्विक साक्ष्य न मिलें एवं उनके द्वारा एक दूसरे की पुष्टि न हो; उसी प्रकार भौगोलिक संरचना के आधार पर भारतीय इतिहास का अध्ययन दो भागों में किया जाता है - उत्तर भारत या उत्तरापथ का इतिहास एवं दक्षिण भारत या दक्षिणापथ का इतिहास। सामान्यत: दक्षिण भारत का तात्पर्य विन्ध्यपर्वत के दक्षिण से समुद्रपर्यन्त तक ग्रहण किया जाता है। प्रारम्भिक इतिहास में दक्षिणापथ शब्द का प्रयोग विन्ध्यपर्वत से कृष्णा-तुंगभद्रा (कर्नाटक राज्य) तक के भूभाग के लिये ही हुआ है। सुत्तनिपात में दक्षिणापथ के अन्तर्गत गंगा के दक्षिण से गोदावरी के उत्तर तक का प्रदेश सम्मिलित किया गया है। रूद्रदामन के गिरनार अभिलेख में उल्लिखित है कि दक्षिणापथ के राजा शातकर्णि को उसने दो बार पराजित किया था। शातकर्णि सातवाहन वंश का राजा था और कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियों के उत्तरी भाग का ही स्वामी था; न कि सम्पूर्ण दक्षिण भारत का। कालान्तर में दक्षिणापथ के अन्तर्गत समस्त सुदूर दक्षिण के प्रदेशों को भी सम्मिलित कर लिया गया। राजशेखर ने "काव्यमीमांसा" में दक्षिणापथ का उल्लेख नर्मदा और माहिष्मती के पार काँची और केरल तक किया है। परवर्ती चालुक्य अभिलेखों में दक्षिणापथ को नर्मदा से रामेश्वर तक बतलाया गया है। "**सेतु नर्मदा मध्यम दक्षिणापथम्**"। प्रस्तुत शोधपत्र का विषय है - "चालुक्य अभिलेखों में इतिहास दर्शन"।

भारतीय इतिहास-लेखन में अभिलेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है; क्योंकि नरेशों के द्वारा अभिलेख उत्कीर्ण कराने के विभिन्न उद्देश्य थे। अशोक अपने सप्तम स्तम्भलेख में लिखवाता है -"**धम्मलिपि जहाँ शिलास्तम्भ अथवा शिलाफलक हों, वहाँ लिखायी जाय। जिससे यह चिरस्थायी हो।**" अशोक अपनी इच्छा को इसी अभिलेख के 31वें अनुच्छेद में स्पष्ट करता है कि "**इन धम्मलिपियों**

*एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी.कालेज, फैजाबाद।

डॉ. प्रज्ञा मिश्रा

शिक्षा के क्षेत्र में नारी

ऐतिहासिक रूप से भारत के प्रथम लिखित ग्रंथ के रूप में ऋग्वेद को माना जाता है, जिसके पर्याप्त साक्ष्य भारतीय संस्कृति में मिलते हैं, किंतु इस ग्रंथ के पूर्व भी एक ऐसे गीत की संरचना हुई, जिसकी रचनाकार मां थी। विश्व की प्रथम रचना निश्चित रूप से उस मां ने ही की होगी, जिसने पहली बार किसी बच्चे को जन्म दिया होगा और उसकी ममता में अपनी वेदना भूल कर नई गीत रचना की होगी यह नारी है। प्रारंभिक मानव के विकास एवं उसके संपोषण में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उसने न केवल जन्म दिया, अपितु मनुष्य को प्रकृति में जीवित रहने के योग्य भी बनाया। प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं, पादपों एवं खाद्य–सामग्री को संरक्षित रखने एवं बीज–तंत्र बीज प्रसरण करने में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसलिए इन्हें अन्नपूर्णा कहा गया है।

ऐतिहासिक साहित्यिक साक्ष्यों में नारी के अनेक रूपों की बहुशः उपासना की गई है। यथा **दुर्गा सप्तशती** में :-

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

अथवा

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

वराहमिहिर ने रत्नों की शोभा स्त्रियों से बताई है। मनु ने स्त्री को आपाद् पवित्र बताया है। वेदों, पुराणों, उपनिषदों एवं महाकाव्यों में नारी के संदर्भ में विभिन्न आख्यान मिलते हैं जो नारी को महिमामंडित करते हैं। साथ ही समाज में प्रचलित अनेक विरोधी तत्व भी दृष्टिगत होते हैं – जैसे मनु ने स्त्री के आजन्म संरक्षण में रहने की बात की। महाकाव्यों में रामायण एवं महाभारत, दोनों ग्रंथों में नारियों के पूजनीय होने के बाद भी उन्हें अनेकशः प्रताड़ित करने के प्रसंग हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में नारी के विषय पर चिंतन करने पर पूर्ववैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति सशक्त दिखती है। इस काल में दो प्रकार की नारियां थीं–

1. ब्रह्मवादिनी 2. सद्यः स्नाता। दोनों प्रकारों में 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करती हुई गुरुकुल में शिक्षा लेने का प्रावधान था। तदनंतर ब्रह्मवादिनी प्रकार की स्त्रियां गुरुकुल चलाने का कार्य करती थीं एवं आजन्म अविवाहित रहकर शिक्षा के प्रचार–प्रसार से समाज को सहयोग देती थीं। सच्चरित्र, संस्कृतिवान, राष्ट्रभक्त नागरिकों का निर्माण कर राष्ट्र की सेवा करती थीं। सद्यः स्नाता प्रकार की नारियां गुरुकुल से वापस आकर विवाह संस्कार कर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करती थीं एवं सृष्टि सृजन कार्य के साथ–साथ अन्य तीनों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास) को चलाने में सहयोग करती थीं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से ऋग्वेद कालीन समाज अत्यंत परिष्कृत था, नारियां शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी थीं।

स्त्री शिक्षा के संदर्भ में पूर्व वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति सशक्त दिखती है, जहां अपने विषय में निर्णय लेने के लिए वे स्वतंत्र थीं। कारण यह था कि वैदिक समाज **"सहनाभवतु सहनौभुनक्तु सहवीर्यं करवावहै। तेजस्विना वधीतमस्तु मा विद्विषावहै।"** की अवधारणा पर आधारित था। पुरुषार्थ–चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) पर आवृत समाज में स्त्रियों को सम्मानजनक दृष्टि से देखा गया। क्योंकि धर्म से लेकर मोक्ष तक जीवन पर्यंत स्त्री पुरुष की सहधर्मिणी थी, जिसके बिना पुरुष कोई भी धार्मिक कार्य संपादित नहीं कर सकता था। फलस्वरूप नारी की शिक्षा भी यथेष्ट की जाती थी। लगभग 1000 ई. से 1947 ई. तक जैसे–जैसे सामाजिक शासन व्यवस्था में परिवर्तन आता जा रहा है, वैसे ही नारी – समाज में बहुआयामी परिवर्तन हुए एवं निरंतर हो रहे हैं। पर्दा प्रथा, बहु–विवाह, बाल–विवाह, सती–प्रथा, अशिक्षा दहेज प्रथा जैसी अनेक दुःसाध्य दुष्पूर्तियों का शिकार स्त्रियां समय–समय पर हुईं, किंतु इन कुप्रथाओं को रोकने का प्रयत्न भी किया गया।

स्वतंत्र भारत में संवैधानिक रूप से स्त्री पुरुष को समानता का दर्जा हासिल है। संविधान के अनुच्छेद 45 के अंतर्गत 14 साल तक के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है। स्त्रियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध कराए गए।

1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन प्रारंभ किया गया। फलस्वरूप ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना, अनौपचारिक

डॉ. प्रज्ञा मिश्रा, इतिहास दर्पण (अंक 25(1) ... वर्ष प्रतिपदा एवं विजय दशमी, कलियुगाब्द 5122, ईसवी सन् 2020), पृ. 232-236, ISSN 0974-...
... अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली

एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में महामारी : कारण एवं निवारण

डॉ. प्रज्ञा मिश्रा

पृष्ठभूमि

आज Covid-19 (कोरोना) विश्वव्यापी महामारी बन चुकी है, जिसमें देवदूत के रूप में डॉक्टर, नर्स, पैरामेडिकल टीम सेना, पुलिस, प्रशासन, नेता, पत्रकार बन्धु भगिनी, किसान सभी मानवता की सेवा प्राणपण से कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में मेरे मन में आया कि इतिहास का इस बीमारी से बचाव में क्या योगदान हो सकता है? कैसे इस दैवीय आपदा को कम करने में इतिहासकार कुछ योगदान कर सकता है; क्या ऐसा पहले भी कभी हुआ है? यह सोचकर वेबिनार के माध्यम से पुन: भारतीय संस्कृति के उन आयामों पर चर्चा करने की इच्छा हुई जो कहीं विस्मृत हो गये; या जानबूझकर भुला दिये गये थे। इसी निमित्त इस वेबिनार का आयोजन किया गया।

इतिहास संकलन समिति अवध प्रान्त, राजा मोहन गर्ल्स पी. जी. कालेज, अयोध्या, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वाधान में कोविड-19 जैसी महामारी के विषम समय में जब भारत वर्ष लॉकडाउन (Lockdown) की परिस्थिति से जूझ रहा है, ऐसे समय में **''ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में महामारी : कारण एवं निवारण'' विषय पर प्रथम वेबिनार (राष्ट्रीय संगोष्ठी) दिनांक 22 अप्रैल 2020 दिन बुद्धवार समय** अपरान्ह 2 बजे से 6 बजे तक आई.ई.टी. परिसर डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय से वीडियो कान्फ्रेंसिंग द्वारा आयोजित किया गया।

आज के परिप्रेक्ष्य में हम जिस विश्वजनीन महामारी कोविड-19 के प्रकोप में चल रहे हैं। ऐसे में यह अवश्यम्भावी हो जाता है कि शिक्षा एवं शिक्षण-कार्य, छात्र-हित, देश-हित में कालबाधित न होकर निरन्तर प्रवाहमान रहे। अत: हम सभी को दूर-दराज के क्षेत्रों में बैठे हुये शोधकर्ताओं, छात्रों/छात्राओं, जिज्ञासुओं को विद्वानों के गवेषणापूर्ण विचारों को, सतत् पहुँचाने के लिए इण्टरनेट आधारित वीडियो कान्फ्रेंसिंग के द्वारा संगोष्ठियों का आयोजन करना चाहिए। जिससे सीमित धन में, सीमित संसाधन में, समय से उच्चपदासीन योग्य, विद्वानों का पाथेय ज्ञान-पिपासुओं को मिल सके। मानव-संसाधन-मंत्रालय ने Virtual-Lab बनाकर Practical-Courses करवाने की सुविधा भी प्रदान की है। शिक्षा का उद्देश्य है :-**''व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास''** कहा गया है-**"Learing is a process of behaviour through experience and traning"** आज कोविड-19 के दौर में सभी बौद्धिकों से यह अपेक्षा की जाती है कि Post-Corona-effect को समझते हुये घर से काम करने की विधा को भी अपनाने के लिए तैयार रहना चाहिए एवं तकनीकी ज्ञान के द्वारा इस प्रकार के आयोजनों को बढ़ावा देना चाहिए, जिससे मानव, पर्यावरण, धन समय, श्रम की सुरक्षा होगी एवं ज्ञानार्जन होता रहेगा।

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के विशाल संगठन के अन्तर्गत अवध-प्रान्त इतिहास संकलन समिति के द्वारा प्रायोजित यह वेबिनार प्रथम अभिनव प्रयास रहा, जिसमें ईश-अनुकम्पा एवं समस्त इतिहास-मनीषियों तथा आई.ई.टी. की Techaical team के सफल निर्देशन एवं सत्प्रयास से यह वेबिनार पूर्णतया सफल रहा।

यह प्रथम वेबिनार था इसलिए इसकी कार्य-पद्धति पर संक्षिप्त प्रकाश डालना उचित लगता है। सर्वप्रथम Google App पर संगोष्ठी (Webinar) की सूचना देते हुये एक Form (फार्म-प्रारूप) बनाकर उसे History-250 के नाम से upload किया गया, जिसमें कुल 350 लोगों ने अपना पंजीकरण करवाया। दूरभाष एवं Whatsapp के द्वारा आदरणीय अखिल भारतीय संगठन मंत्री जी के निर्देशन में समस्त सुधी वक्ता वृन्द से सम्पर्क करके, सभी को वीडियो कान्फ्रेंसिंग के द्वारा वक्तव्य देने के लिए आमन्त्रित किया गया। इसके सुचारु रूप से संचालन करने के लिए प्रतिपल (Minute-to Minute) का कार्यक्रम निर्धारित कर, प्रारूप को Webinar

(प्रज्ञा)

सांस्कृतिक धरोहरों का संरक्षक :- संग्रहालय

डॉ. प्रभा मिश्रा
विभागाध्यक्ष प्राचीन इतिहास, राजा धोहन गर्ल्स पी.जी. कॉलेज अयोध्या

शोध - सारांश

शोध-पत्र में संग्रहालय किस प्रकार संस्कृति की रक्षा करता है; भारतीय परम्परा के एक विषय में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जानकारी हस्तान्तरित करता है, इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही भारतवर्ष में संग्रहालय का प्रारम्भ एवं निर्माण कब, कहाँ हुआ यह भी वर्णित है। भारतीय इतिहास एवं विश्व इतिहास के सन्दर्भ में संस्कृति का संरक्षण संग्रहालय करते हैं इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है। भारतीय संग्रहालयों की विशेषता वर्णित है।

मुख्य-शब्द :- संग्रहालय, संस्कृति, प्रतिमा, संग्रह, अलेक्जेंडर कनिंघम, मथुरा, यक्ष, पटना

संस्कृति का अर्थ :- भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति है इसे विश्व की सभी संस्कृतियों की जननी कहा जाता है। यदि संसार की कोई संस्कृति अमर कही जा सकती है तो निस्सन्देह भारतीय संस्कृति है। जो चिरकाल से स्थायी है। संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा से लिया गया है। संस्कृति का अर्थ है- 'विभिन्न संस्कारों के द्वारा सामूहिक जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति प्राप्ति करना'।

संस्कृति का अभिप्राय उन सभी भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं से है जो कि मनुष्य समाज के पास है जैसे :- कला, विचार, प्रथा, विज्ञान और विभिन्न प्रकार के उपकरण इत्यादि।

दूसरे शब्दों में "जीवन यापन के जितने भी विशिष्ट स्वरूप समाज में विकसित होते हैं उन्हें ही संस्कृति कहा जाता है।" इस देश के महापुरुषों, तीर्थस्थान, प्राचीन कला-कृतियाँ, धर्म-दर्शन और सामाजिक संस्थाएँ समाज एवं संस्कृति के सजग प्रहरी रहे उन्होंने इस देश की संस्कृति को अजर एवं अमर बनाने में अपना योग दिया है। भारतीय संस्कृति में कहा गया है 'सर्वे भवन्तु सुखिन: अर्थात् सभी सुखी हो।हमारी संस्कृति ही सम्पूर्ण राष्ट्र की धरोहर है। संग्रहालय दो शब्दों से मिलकर बना है- संग्रह + आलय संग्रह का अर्थ है एकत्रित करना और आलय का अर्थ है घर। अर्थात वहा स्थान जहाँ पर महत्वपूर्ण वस्तुएँ एकत्रित करके रखी जाय। हमारे समाज में संग्रहालय का विशेष महत्व है। क्योंकि यह वह स्थान है जहाँ पर हमारी प्राचीन संस्कृतियाँ आज भी अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं।

भारत में पुरातत्व विभाग की स्थापना :- भारत में पुरातत्व विभाग की स्थापना 1861ई0 में हुई और जनरल अलेक्जेण्डर कनिंघम को पुरातात्विक सर्वेयर नियुक्त किया गया। लेकिन इसके पहले 15 JUN 1764 ई0 में सर विलियम जोन्स ने रायल एशियाटिक सोसाइटी की कलकत्ता में स्थापना की। इस संस्था ने एशिया महाद्वीप के पुरावशेषो, कला, विज्ञान और साहित्य के इतिहास में अनुसंधान के प्रति अभिरुचि जागृत कराई। शोधार्थियों के लेखो को प्रकाशित करने के लिए सन् 1788 ई. में एशियाटिक रिसर्चेज नामक पत्रिका का प्रकाशन किया गया, सन् 1814 ई. में भारतीय संग्रहालय (कोलकाला) की स्थापना हुई, जिसमे सोसाइटी के सदस्यों द्वारा संग्रहीत की गई सामग्री को रखा गया।

THE ETERNITY

An International Multidisciplinary Peer Reviewed and Refereed Research Journal

ISSN 0975-8690 UGC List No 44958 PIF. : 4.875

Volume XII No. 4 October-December 2021

Patron
Prof. Dilip K. Dureha

Editor-in-chief
Dr. Yatendra K. Singh

Editors
Prof. Surendra Singh
Dr. Priyanka Singh
Dr. Vinit Mehta

Associate Editor
Dr. Priti Singh

K.R. Publishers & Distributors
Varanasi/New Delhi

Scanned with OKEN Scanner

THE ETERNITY - *A Refereed Journal, Published by : Quarterly ©Publisher*

ISSN :- 0975-8690

December, 2021

Published by :
K.R. Publishers & Distributrs, Varanasi/New Delhi

Mobile No. :- 7753977775, 7706017062, 0542-2367775

Email- krpublicationvd@gmail.com,
krpublicationvd@yahoo.com

All rights reserved

*No part of this publication may be reproduced or transmitted in any means, or stored in any retrieval system of any nature without prior permission. Application for permission for other use of copyright material including permission to reproduce extract in other published works shall be made to publishers. Full acknowledgement of author, publishers and soure must be given. The views expressed in the journal "**THE ETERNITY**" (Research for All), are not necessarily the view of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held reponsible for the views and authenticity of the articles, reports or research finding. Although every care has been taken to avoid errors or omission,s this publiction is being sold on the condition and understadning that information given in this journal is merely for reference and must not be taken as having authority of or binding in any way on the authors, editors, publishers and sellers who do ot owe any responsibility for any damage or loss to any person, All disputes are subject to Varanasi jurisdiction only.*

Composed by :
Vikas Patel

Printed by :
Thomson Press (India) LTD.
New Delhi

Published by :
K.R. Publishers & Distributors, Varanasi/New Delhi

Scanned with OKEN Scanner

Human Rights Vs Cultural Changes as Reflected in Indian English Fiction

• Dr. Meenu Dubey
Reader in English
R.M.G.P.G College, Fairabad.

"Literature is an expression of society". It is the literature that adequately comprehends and represents the inner and outer life of a nation. Man is a social creature. Along with human social-cultural-development there had been also the development of concepts regarding justice and equality. There was the requirement of human rights. These socio-cultural developments were also deformed by the elements self- interest and egoism, which incites people to interfere in the rights of others for the welfare of only self-interest. Consequently there had been the demands of some privileges against exploitations of these selfish elements. This hypothesis helped to put the foundation of human rights as a part and parcel of socio-cultural development.

There had been an increasing debate between the philosophies and political thinkers regarding the concept of state and relation between the advertisement and administrator. One side of the coin refers to extremist concept of Spencer which demands the complete devotion of society before the individual concepts of 'Divine Rights' or the next most recent concept of 'fascism Principle' advocates that "there is no existence of individual before the omni- potent structure of the state".

But both the views are extremists. There is the requirement of a mid-way. So the efforts were made for the establishment of balance between the two which is named as 'Liberation vs. Modem Principle' i.e. 'Administration of Law'. There had always been a war waged amongst the "Authoritative ..Elite Section". In the pas, despotic ruler considered themselves as the source of all rights and freedom. Society had to obey them. After that the government was ruled out by the respective. But with the passage of time the state has demanded the maximum sacrifice from the citizens. This practice culminated. And there had been a new problem of risk regarding the 'rights and freedom "of universal public opinion. This gave way to a new anxiety[1].

This word 'Human Rights' is utilized in 20th century. In some of the countries it is known as 'Democratic Rights', but the most popular word-format term is 'Human Rights' of which democratic right is an important feature. It is also known as 'fundamental Rights'.

Human Rights are the rights which must be made available to human beings because of their being of human. It is not based on legal system. It is very clear that the scope of human rights is much wider than that of Civil Rights. Its development is based on the development of moral consciousness and social consciousness. Its scope is also going to be widened on the behalf of development of moral and social consciousness. That society is considered as the most progressive society from view point of morality in which there had been maximum human rights are considered as civil rights[2].

3

Indian English Women Short Story Writers: An Overview

— *Meenu Dubey*

India has always provided a fertile ground for the development of stories. The twentieth century is a landmark in the development of short story. The short story provides the most effective communication of private feelings in limited time available to the readers. This form of writing became very popular because it invariably enriches one's mind by identifying the complex and intriguing forces—psychological and occult—at work in our lives. The notion that the short story is something quite new or modern is a piece of self-deception on the part of those whose reading does not go beyond the present century. It means to say that the faculty for storytelling is the oldest artistic faculty in the world.

The present paper aims to scrutinise the achievements and limitations of selected post-independence Indian English Short Story Women Writers, namely, Shashi Deshpande, Gauri Deshpande, Tara Deshpande, Anita Desai, Dina Mehta, Jumpha Lahiri, Kamala Das, Bharati Mukherjee, Sunita Jain, Sadiqa Peerbhoy, Jai Nimbkar, Manju Kak, Gita Hariharan and R.P. Jhavbala. In order to understand the history of the art and literature of any country one must study the changes that have taken place in the situations of its inhabitants. After this they have to understand the terms 'identify' and 'relationship'. These terms have to be accepted for a worthwhile study of literature. Here 'identify' refers to the recognition of peculiar nature of a work of art and 'relationship' stands for its connection with socio-cultural

21

Bylanes of Untouchable in Social Economic Discussion of Mulk Raj Anand

— Meena Dubey

The purpose of this effort is to point out faults and frailties which are inherent in Indian society, in the form of "Caste-System". The society is still following the same deep-rooted orthodox conventions and rituals. The society is governed by the caste system arranged in an hierarchal order with fixed status and occupations assigned to each one. A closer examination justifies that Dr. M. R. Anand possessed a larger objective of creating a healthy society, where all the needs of human being can be free of caste-system or economic system. He was capable of listening to the unvoiced voices. All his five senses were capable of observing minutely the oppression of bottom dogs. He was highly conscious to raise his voice in defence of the downtrodden or underdogs. All dalitized humanity gets favour through his mighty pen. All his works are a strong cry against the suppression and exploitation of dalits, be it an untouchable, a coolie, a labour, a widow, a barber, a women or any poor Indian.

He expressed his bitter experiences. His epoch-making work *Untouchable* was written at the time when untouchables were living in inhuman conditions and subjected to the worst kinds of humiliation. Humanism is the keynote of his novel. *Untouchable* reveals his faith in the essential dignity of man. He is a peculiar humanist, i.e., humanist in his own way, who reveals the essential dignity of the underdogs of Indian society, as the fact stands. Dr. Anand, in all his novels, emphasises the

Expatriate Tradition in *The Namesake* . Jhumpa Lahiri

. Meenu Dubey

"...a people's roots are in their traditions going back to the past, the very beginning"—*Ngugi Wa Thiong'o The River Between (1965)*.

The term 'Expatriat' has assumed importance as a legitimate literary term in Commonwealth Literature in modern era. This term deals with many connotations like 'diasporas', 'emigrants', 'ethnicity', 'marginality' and 'hybridity', etc. An expatriate focuses on the native country that has been left behind. "The expatriate also dwells on the 'Ex' status of past, while the immigrant celebrates his present in the new country" (Rushdie 61). Expatriate sensibility is a widespread phenomenon in this century as George Steiner describes the expatriate writer as "the uncontemporary every man".

The expatriate writer undergoes the pain of homelessness, alienation and the loss of belongingness. The desire for loss of homeland is the consequence of the consciously opting a new home in foreign or an alien land. An expatriate like pendulum hovers to and fro between two spheres of life and realizes the pangs that he is incapable of making adjustment in the new land, in spite of the fact that he leaves homeland consciously for acquiring some opportunities. He experiences displacement,

Homeostasis—World of Delusion in the Novels of Anita Desai

—*Dr. Meenu Dubey*

Mahatma Gandhiji's clarion call for "swaraj" brought the Renaissance of Indian Woman, which corresponds with movement for Independence. In this change scenario "the power" which was hidden behind the "ghungat" and subjugated to male dominance. She had no search for identity or for "innerspace." Now the social status of a woman underwent a drastic change. Her "potential" is also recognized that she mentally and physically equipped with all faculties and strength, with which she can face the fast changing values of life.

The Renaissance of Indian women made a very slow move because inspite of all her journey towards liberation and emancipation, she cannot reach its zenith because she is always lagged behind by her companioned.

In the galaxy of women writers such as Kamala Markandaya, Ruth Jhabwala, Nayantara Sahgal and others, they portray the psychic tensions and anxieties of women in modern scenario in the background of traditional society. But the world of Anita Desai's novels shifts focus from 'external to internal". She uses the "language of interior"

1

Mulk Raj Anand: A Novelist Par-Excellence

—Dr. Meena Dubey

India in spite of her variety and complexity is a cultural unit, she stamped an image of her own culture. Culture is an exploratory term, which advocates the sum total of all that is reflected in the mode of life of a people—their thought processes, attitudes and outlook towards life, social structure, infrastructure, values, traditions, customs, their requirements, aims, aspirations, ambitions and national commitment and then this is best expressed through the arts and letters of the country. Best measurement of culture of any nation is possible only through her literature. Literature represents the inner and outer life of a nation.

Indian English literature began as a by product of eventful encounter between vigorous and enterprising Britain and a stagnant and chaotic India. This encounter is; "India, a withered trunk...suddenly shot out with foreign foliage."[1] One form of this foliage resulted in original writing in English by Indians, which fulfils the sixteenth century prophecy of Samuel Daviels regarding English Literature/language.

Who (in time) knows whither we may vent
The treasures of our tongue? To what strange shores
This gain of our best glory shall be sent.

14

A Critical Evaluation of Sense of Alienation in Bharati Mukherjee's *The Middleman and Other Stories*

—Dr. Meenu Dubey

"I wonder if my reluctance to write straight or naked autobiographical fiction relates to my Indian background I don't want them to know what I'm really thinking."

(Kumar)

Bharati Mukherjee is one of the important "Third-World" writers to have won international recognition in recent times. As an expatriate writer, she is "writing about the here and now of America." (Kumar). Born in Kolkata in 1940, in a traditional Bengali family and married in 1960 to Clark Blaise, a creative writer in Canada, she became a Canadian citizen. Her seven years stay in Canada made her feel like an 'alienated outsider' and an unwanted 'visible minority". To racial discrimination meted out to the expatriates in Canada made her leave that country. She came to the USA in 1980 to become a permanent citizen there. Though she has a few novels to her credit like *The Tiger's Daughter*, *Wife and Jasmine*, recognition came to her with the 1988 National Book Critics Award for her collection of short stories *The Middleman and Other*

15

An Idealist Approach to Philosophical Truths in Shakespeare

—*Dr. Meenu Dubey*

This paper aims to attempt an idealist approach to philosophical truths expressed in the plays of Shakespeare. It will concentrate upon the thought how philosophical truths which share universal elements and features are interpreted and explained by eminent thinkers from different angles and point of view but as far as their fundamental concept is concerned they have the same (thought) content. There is a close resemblance in Indian Vedantic concepts, philosophy of life enumerated in *The Bhagwat Gita* and that of Shakespeare's which in turn also corresponds with philosophical view point supported by the Eastern and Western thinkers.

Theories of life are unexpected in drama because the attitude of dramatist is very impersonal. He is also not directly responsible for the utterances of his characters. But this is only theoretical aspect because practically it is impossible to prevent one's own belief from shining through at times. William Shakespeare has shown a great deal about what he thought about life through his characters. Shakespeare through his dramatics personae has shown a great deal about human life. His own mysticism is no less than that of Wordsworth, a great nature poet, though

14

A Critical Evaluation of Sense of Alienation in Bharati Mukherjee's *The Middleman and Other Stories*

—Dr. Meenu Dubey

"I wonder if my reluctance to write straight or naked autobiographical fiction relates to my Indian background I don't want them to know what I'm really thinking."

(Kumar)

Bharati Mukherjee is one of the important "Third World" writers to have won international recognition in recent times. As an expatriate writer, she is "writing about the here and now of America." (Kumar). Born in Kolkata in 1940, in a traditional Bengali family and married in 1960 to Clark Blaise, a creative writer in Canada, she became a Canadian citizen. Her seven years stay in Canada made her feel like an 'alienated outsider' and an unwanted 'visible minority". To racial discrimination meted out to the expatrintes in Canada made her leave that country. She came to the USA in 1980 to become a permanent citizen there. Though she has a few novels to her credit like *The Tiger's Daughter, Wife and Jasmine,* recognition came to her with the 1988 National Book Critics Award for her collection of short stories *The Middleman and Other*

9

Vijay Dhondo Tendulkar: Overt And Covert Violence In *Silence! The Court is in Session* and *Ghashiram Kotwal*

– *Dr. Meenu Dubey*

My Private life is my own business. I'll decide what to do with myself...."

(Silence! The Court.....)

Sometimes they break your bones sometimes they crack your bones sometimes you lose your life —

(Ghashiram Kotwal)

Above assailings prove that Vijay Tenduldar , like other creative writers, is an eminent scout of human existence which rustles the pure heart with piercing headache and gnawing pangs to the heart to head the queue in this brave and beautiful world, which in reality gives the experience of horrified hill. Eminent Marathi playwright, screen play writer, essayist and journalist, first came into prominence in 1950s and 60s with one-act plays. Indian English Drama still emains "sad Cinderella tale" waiting for her prince.

In comparison with the British tradition of Drama, Indian nglish Dramas are not numerous in quantity, but in presentation

17

Diasporic Interpretation in the Works of Jhumpa Lahiri

Dr. Meenu Dubey

> The word 'Diaspora' was used initially for the dispersal of Jews, when they were forced into exile to Babylonia. However today it has-come to mean any sizeable community of a particular nation or region living outside its own country and sharing some common bonds that give them an ethnic and consequent bonding. (Pal).[1]

Literally, "Diaspora" refers 'to scatter' (like seeds), or 'dispersion' (Greek), or 'Galut' (Hebrew for exile), it refers to a loss of homeland, a shift of population from one locale to another. William Safran applies the term 'Diaspora' to expatriate minority communities which have dispersed from an original "center" to one or more "peripheral" or foreign regions, to people who retain their myths about their Homeland, and feel alienated in the New Land (83-99). The word Expatriate has assumed importance as a legitimate literary term in commonwealth literature in modern era. The term deals with many

1

Crystallized Components of Soul-consciousness in *The Post Office*

–Dr. Amar Nath Prasad
Dr. Meenu Dubey

To study Tagore is to study finer sensibilities and nobler visions of life from kaleidoscopic perspectives. As a thinker and philosopher par excellence, Rabindra Nath Tagore has delved deep into the grandeur and mystery of life with all its kaleidoscopic manifestations and brought a crystallized components of soul consciousness and spirituality in his creative work **The Post Office.**

Rabindranath Tagore is a phenomenon. Tagore's mind has many affinities with European minds. His reading English poetry was very wide. He read and liked Shakespeare. When he was a boy, he had a tutor who used to punish him by flocking him up, till he had translated a passage of Kalidas. Birth of the war-God and Shakespeare's Macbeth and other plays of Shakespeare have been mentioned in his book which justify that formative influence he received from Kalidas and Shakespeare.

Tagore is the master of speech, "lord of the word". Suniti Kumar Chatterjee rightly called him "Vak-pati" as words came to him singing and dancing and he wove them into a hundred bewitched tunes, a hundred rhythmic patterns. His words seem to distil the

8

The Waste Land and *The Living and the Dead*: A Utopian Perspective

Meenu Dubey

He was a serious, not necessarily a solemn man, a severe man, never lacking in kindness and sympathy, a profound man. And yet outward appearance a correct man, a conventional man, an infinitely polite man—in brief a gentle man. He was not only incapable of a mean deed; I would also say that he never had a mean thought. He could mock folly and he was server with sin, and there were people he simply did not wish to know. But his circle of friends, though never very large, was very diverse, and he could relax with great charm in the presence of women. He had moods of gaiety and moods of great depression—I have known occasions when I left him feeling that my spirit had been utterly depleted. Often he was witty (in a somewhat solemn voice): his anecdotes were related with great deliberation.... In personal habits he was scrupulously correct and clean, never a Bohemian in thought or appearance; but he had a streak of hypochondria, and was addicted to pills and points. I never saw him indulge in any sport.... He made a fetish of umbrellas...had them especially made with enormous handles, with excuse that no one would take such an umbrella from a cloakroom by mistake. He relished good food and beer and wine, but his specialty was cheese of which he had tasted a great many varieties. (Herbert, Read, 36-37)

Rabindranath Tagore: A Spiritual and Vedantic Voice of Indian Drama

Meenu Dubey

That voice of Tagore, from where does it come
Does it come from the East or from the West?
Does it come from near or from far away?
We do not know. Rather it seems to come simultaneously from the round line, which forms the horizon of life

Above quoted lines are the voice of Spanish Philosopher Ortega Y. Gasset, which quotes the success of Robindranath Tagore in the horizon of literature. In comparison with British efflorescence of Dramatic output, Indian English dramatic tradition is in meagre quantity. But it is gaining ground by leap and bounds. Indian dramatists in English rose to eminence by dint of their extraordinary art with fusion of feeling and form. Tagore's impact in literature is a creative medium of cross-cultural communication fostering both ways transfer of ideas and thoughts of different races. His poetic philosophy became the common heritage of mankind along with a necessity in our contemporary world. Dialectical image of Rabindranath Tagore lies in his being. Man and the poet become one and the poetic vision fuses into that of seer for the goal of Indian philosophy of self-

Malady of Child Sexual Abuse in the Theatre of Mahesh Dattani

Dr. Meenu Dubey
Raja Mohan Girls P.G. College, Fatrabad, U.P
[illegible]gmail.com

Abstract :

> "I also know that I have a lot to say and am probably not saying it well enough. But my characters have a lot to say too, and they seem to be doing rather well at having their say... I'm completely aware that it is my character that has done the work for me."
> (P.- XI)

Above quoted extract from the Preface to Collected Plays decides Dattani's journey of theatre in Eliot's terminology "an Emotional Equivalent" which justifies that "theatre is a reflection of what you observe". His play focuses on a contentious and highly relevant Indian contemporary issue — child molestation, an act of a person —adult or child —who forces, coerces or threatens a child to have any form of sexual contact or to engage in any type of sexual activity at the perpetrator's direction.(Legal Definition)

Thirty Days in September is a highly sombre play of Dattani, originally commissioned by an NGO named RAHI (Recovery and Healing from Incest) that helps survivors of Child Sexual Abuse. Dattani himself mentions -

> "I did not go back to the material for a long time. I couldn't bring myself to."

This play deals with serious social malady of child abuse which is collected in raw emotion and then life is given to these emotions on the stage. Molestation of Mala, a girl child, by her own uncle create a series of psychological problems in her life. Victimized Mala faces double harassment as her mother remains silent. This provides a strong catharsis to the play. The victorious playwrigh Mahesh Dattani successfully passes through the zigzag vicissitude of the pathetic life of Mala wi every experience expressed without any hesitation and censor. Through this research paper m prima facie is to focus upon this social malady which hampers the normal and privileg development of child world

---

Paper :

> "I also know that I have a lot to say and am probably not saying it well enough. But my characters have a lot to say too, and they seem to be doing rather well at having their say... I'm completely aware that it is my character that has done the work for me."[1]

The above extract from the Preface to Mahesh Dattani's Collected Plays decides Datt journey of theatre in Eliot's terminology "an Emotional Equivalent" which justifies that "th is a reflection of what you observe". His play focuses on a contentious and highly rele Indian contemporary issue – child molestation, an act of a person —adult or child—who f coerces or threatens a child to have any form of sexual contact or to engage in any type of s activity at the perpetrator's direction (legal definition).

20

Cultural Colonialism Via Globlisation in Post Modernist Perspective of Literature

Dr. Meenu Dubey
Associate Professor and Head
Dept. of English
R.M.G.P.G. College, Faizabad (U.P.)

English is the medium through which post-colonialism as well as colonialism expressed in a graphic perspective, which also leads to the projection of globlisation. This view point is supported by **Paul Jay** who asserts-

"At the same time the remarkable explosion of English Literature produced outside British and the United States has made it clear that this literature is becoming defined less by a nation than by a language in which authors from a variety of cultural and ethnic background write". Thus, we find that Post Colonialism is a reading strategy that can be used to subvert the canonicity of a work which emphasises the claim that "what is being written today as its own" Post-colonial-perspective of Indian-English-Writing categorizes all post independence creative literature as its domain. Practitioners of this genre are high modernist as their literature has specific structural strategies as well as thematic. In the process of modernist approach then post modernist approach produces a connectivity with globlisation which had not only changed the elementary social life along with

6

Echo of Christian Myths in Arundhati Roy's *The God of Small Things*

Meenu Dubey

One basic question crops: Why are myths and legends important in the study of literature or why do myths operate potentially in the modern literary works; or why are the myths and legends a significant factor in the thought pattern of the writers?

It becomes interesting to speculate that for what reason writers have always been drawn towards the employment of myth as technical feature of their works in the field of fiction writing. Simply we can answer that it is due to their quality of timelessness and antiquity, which provides to their work also vis-à-vis. Myths are old far off distant things. They are purely traditional. They are embodying popular ideas on natural phenomena. Naturally, they lend enchantment and charm to the modern generation and modern writers:

> A myth is a pre-scientific and imaginative attempt to explain some phenomenon, real or supposed which excites the curiosity of the myth maker ... Myth is an effort to reach a feeling of satisfaction in place of uneasy bewilderment concerning such phenomenon. (Ross 115)

Myths are to be taken as religious phenomenon and cannot be explained in terms of the non-religious, i.e., literary, psychological,

15

Graphic Scrutiny of Subaltern in Arundhati Roy's *The God of Small Things*

—Dr. Meenu Dubey

The present paper graphically scruitnizes that the novel "The God of Small Things" by Arundhati Roy ,analyses the "subaltern" in term of class, gender, age and financial condition. This novel portrays successfully the maintenance of perspectives of subaltern. The subaltern reading has been a recent critical strategy, which has been best employed in this novel. Arundhati Roy came in to lime light in 1997 after her novel The God of Small Things bagged the most prestigious Booker Prize for literature. This paper will focus upon the life of the miarginalised,- which has been depicted in the novel as it has been the greatest hampering process, which has always been a blood- sucking leech to the Indian Society. James Cowley also commends this novel as- "The God of Small Things fulfils the highest demand of art of fiction: to see the world not conventionally or habitually but as if for the first time."

This novel has broken all the past records. The larger story of the novel contains many smaller ones that stand alone as small gems of observation and insight. This novel is replete with images, symbols, antithesis and balance, rhyme and rhythm, mythology and modernity and sensual aspects.

वैश्विक आपदा और आत्मसिद्धि प्रबन्धन

डा0 नीनू दूबे*

बहूनां चैव सत्वानां समवायो रिपुञ्जयः।
वर्षं धाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते।।

(चाणक्य नीति 14–4)

कहने का आशय है कि बहुत से सामान्य जनों का संगठन शक्तिशाली दुश्मन की सत्ता को पराजित करता है। तिनकों से बनी झोपड़ी वर्षा की धारा को ...न करने वाले मेघ को रोकती है।

...आलोक है कि मानव जीवन अपार सम्भावनाओं से ओत–प्रोत एक नायाब कृति ...जो आपदा में भी मायपूर्ण जीवन जीने की कला में पारंगत है, जिसका सशक्त ...हरण वर्तमान परिस्थितियों में देखने को भी मिल रहा है। भारतीय संस्कृति से ...ित हमारा जीवन संवेदनाओं और सम्भावनाओं के हर नामुमकिन सोपान के ...उत्थान शिखर तक जाने का प्रयास करता है। लॉकडाउन या तालाबंदी के ...ान परिदृश्य ने सिद्ध कर दिया है कि **पूर्णता की चुनौती** ही जीवन की परिभाषा ...हुआ इस तरह कि–

...अधूरेपन का एहसास मरने नहीं देता और पूर्णता की अभीप्सा जीने नहीं ...। जीने का जज्बा, चाहत की इंतहा, पतझड़ की आवृत्ति में जीवन्त जड़ों या यू ...कि मृतप्राय जड़ों में भी जीने की चिंगारी तलाशता रहा है। महान नाटककार ...सपियर ने भी कहा था "There is the rub-that's where the problem is or our ...obstacle is. 10 दिसम्बर 1948 को जब "संयुक्त राष्ट्र महासभा" द्वारा सार्वभौमिक ...मानवाधिकार को अंगीकृत किया गया तो मानव जीवन विश्व जनीन आत्मीयता ...आलोक में झंकृत हुआ। वस्तुतः यह भारतीय संस्कृति की 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' ...'वसुधैव कुटुम्बकम्' और "तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु" की ही संस्तुति थी। ...मनसा, वाचा, कर्मणा "सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय" के परिपालन की प्रतिबद्धता

* उपाचार्य, अंग्रेजी विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, अयोध्या।

SHIKSHA SAMVAD
International Open Access Peer-Reviewed & Refereed Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 2584-0983 (Online)
Volume-1, Issue-4, June- 2024
www.shikshasamvad.com

"Counter-Narratives in Bob Dylan's Lyrics: A Postmodernist Examination"

Akanksha Tripathi
Research Scholar
Raja Mohan Girls P. G. College

Dr. Meenn Dubey
Assistant Professor,
Raja Mohan Girls P. G. College

Abstract:

This paper aims to analyse Bob Dylan's lyrics as postmodernist texts that manifest counter-narratives, emphasising "incredulity toward metanarratives," a concept defined by Jean-François Lyotard. By scrutinising songs like "Hattie Carroll," "Who Killed Davey Moore?," and "Maggie's Farm," the study highlighs Dylan's critique of societal norms and injustices. These songs serve as potent counter-narratives challenging the dominant cultural narratives embedded in race, social justice, labour conditions, and individual freedom. The paper delves into various scholarly definitions of narratives to contextualize how Dylan's work resists and subverts these prevailing stories, thereby fostering a deeper understanding of his contributions to cultural discourse.

Keywords: *Bob Dylan, counter-narratives, postmodernism, master narratives, lyrics*

This paper aims to closely read Bob Dylan's lyrics to understand the context of counter-narratives as postmodernist text. Hence, it suggests "incredulity toward metanarratives", defined as postmodernism (Lyotard xxiv). This paper articulates this incredulity through counter-narratives that Dylan manifests through his lyrics. Before we study Dylan's lyrics as counter-narrative, we must know what narrative is. However, before that, it is essential to know about Bob Dylan.

Bob Dylan, a singer, lyricist and poet in his own right, was born on May 24, 1941, in Duluth, Minnesota, baptist as Robert Allen Zimmerman. A die-hard fan of Woodie Guthrie and Little Richard, Dylan also aspired to become a singer. In 1959, he started his career by giving

The Research Dialogue

An Online Quarterly Multi-Disciplinary
Peer-Reviewed / Refereed Research Journal
ISSN: 2583-438X
Volume-1, Issue-4, January 2023
www.theresearchdialogue.com

The Articulation of Gender Perspective in Toni Morrison's Sula

Manish Kumar
Research Scholar,
Department of English
Raja Mohan Girls P.G. College,
Ayodhya

Prof. Meenu Dubey
Department of English
Raja Mohan Girls P.G. College,
Ayodhya

Abstract:

Toni Morrison was born on February 18, 1931 in Lorain, Ohio. She was an illustrious African American woman novelist of the late 20th century. She was the first African American woman novelist who won the Nobel Prize for literature in 1993. Her stupendous literary output revolves, generally, around race, gender, class, sexism etc. Because of being a woman, she has full sympathy for her sex, hence, she is concerned for women's freedom, rights and opportunities. Morrison's novels are termed as 'Liberatory Narratives' in which she aims at projecting black women's lives, especially, by incorporating the person's sense of self, culture, tradition and history. In fact, Morrison's novels are a real portrayal of the lives of blacks delineating their major issues and concerns.

This article aims at making an in-depth study of gender perspective through her second work Sula. In Sula, Morrison's primary focus is on gender. She thinks that black women suffer a double jeopardy in African American society. This double

Bob Dylan's "Desolation Row" in the Light of Frederic Jameson's Theory of Pastiche

Akanksha Tripathi
(Research Scholar)

Department of English,
Raja Mohan Girls P. G. College,
Ayodhya

Prof. Meenu Dubey

Department of English,
Raja Mohan Girls P. G. College,
Ayodhya

Abstract

This paper examines Bob Dylan's song "Desolation Row" through the lens of Fredric Jameson's theory of Pastiche with a postmodernist perspective. It contends that Dylan's use of Pastiche reveals a more profound commentary on the limitations of contemporary art and the collapse of cultural boundaries. By analyzing the literary and cultural references within the lyrics, the study argues that Dylan's work exemplifies Jameson's notion of the "death of the subject" and the "aesthetic dilemma" faced by modern artists. Dylan's intertextual approach, drawing from high culture, popular culture, and historical figures, reflects a postmodern condition creating something genuinely new is seen as unattainable. The paper further explores how Dylan's depiction of an unreachable utopia and his subversion of traditional characters underscore the postmodern critique of art, aesthetics, and individual autonomy.

Keywords: Bob Dylan, Postmodernism, Pastiche, Intertextuality, Fredric Jameson

An International Registered & Referred Monthly Journal
English Literature
[illegible]

T.S.Eliot's Advocacy of Classical Symphony and Auditory Imagination as Wealth of Poetry

Eliot creates a "Classical Symphony" by the creation of words producing music. [illegible] Every word of the poem The Waste Land is evocative of rich musical effect. His "poetic development shows a struggle towards the conditions of drama on the one hand and music on the other" ([illegible] p. [illegible]) In view point of Eliot content and structure both must be effused with music; poetry, for this purpose he coined a new phrase that is "auditory imagination", is the feeling for syllable and rhythm penetrating far below the conscious levels of thought.

Dr. Meena Dubey* & Anamika Mishra**

T[illegible] Eliot that "[illegible] poetry [illegible] understood." This is the power of the [illegible] melody [illegible] "[illegible] melodies are sweet but those unheard are sweeter". [illegible] of Eliot "auditory imagination" is that which implies the feeling for syllable and rhythm penetrating far below the conscious levels of thought and [illegible] every [illegible] word. As a [illegible] of fact Eliot gives a new [illegible] and [illegible] of English poetry. The Waste Land became a literary land mark in history of 20th century [illegible] and has reflected the mood of spiritual [illegible] and [illegible] after the First World War. Ezra Pound and T. S. Eliot both were [illegible] with the problems of [illegible] poetic [illegible] and language. Eliot's chief and primary concern belonged to the function of words in a poetic discourse. He was highly anxious to search for precision and [illegible]. His belief was in "a [illegible] and [illegible] of language and the music of language (Eliot P. 322). As a maker of poetic language (Wesan 1) he had shown his [illegible] of [illegible] for the [illegible] of words which can be [illegible] into the [illegible] literary [illegible]. He was a [illegible] believer in the fact that "[illegible] of poetry [illegible] poetry". Eliot laid emphasis on the kind and [illegible] of words necessary for poetic purpose [illegible] [illegible] words, [illegible], and symbols. "Eliot believed that the aim of the poet should be to make an object out of words. A poem which was [illegible] of a large whole the function of poetry is the language (Spender p.[illegible]) In 1917 when Eliot started to poetic [illegible] as a [illegible] he [illegible] Poetry, "[illegible] with what [illegible], and what [illegible] of other poetry we [illegible] with poetry [illegible] [illegible] imagination and [illegible]" (Eliot, [illegible]) [illegible] in making poetry [illegible]

[illegible] in which words [illegible] music. Following [illegible] of Eliot can [illegible] by his declarations regarding the poetic language and its deliverance –

Words move, Music moves / Only in time; but that which is only living, / Can only die. Words, after speech, reach / Into the silence. Only by the form, the pattern, / Can words or music reach... / The Stillness

(Burnt Norton V 1936).

For him poetry is an escape from emotion and it is an escape from personality.

In this [illegible] Eliot [illegible] a new effective technique in [illegible] and [illegible] both. His ideal poetic diction finds expression in Little Gidding –

And every phrase / And sentence that is right (where every word is at home, / Taking its place to support the others, / The word neither diffident nor ostentatious, / An easy commerce of the old and the new, / The common word exact without vulgarity, / The complete consort dancing together) / Every phrase and every sentence is an end and a beginning, / Every poem an Epitaph (Little Gidding Sec. 1).

It is an [illegible] fact that poetry speaks of a general universal language. Eliot [illegible] a "big Campaign" for the revitalization of English poetry. We also agree with this thought that "the modern word came into focus for the first time" (Nicholson p. 271). Eliot also propounded the view "there is one law of nature, more powerful than any of these varying currents or influences from abroad or from the past, the law that that poetry must not stray too far from the ordinary day language which we use to hear. Whether the poetry is accented or syllabic, rhymed or rhymeless, formal or free, it cannot afford to lose its contact with the changing language of common intercourse (Eliot p. 29). Eliot emphasised "the use of common idiom in poetry because he was in favour of [illegible] speech. He [illegible] advocated "Criterion" and "Classical" [illegible]. "[illegible] importance [illegible]

*Assistant Professor (Department of English), K. M. [illegible] College, [illegible] (Uttar Pradesh)
**Research Scholar, [illegible] (Uttar Pradesh)

PP. NO.- 6-9

Myth of Social Psychosis in Tara by M[illegible] Dattani

DR. Meenu Dubey

[illegible] (U.P.), India

Received- 02.06.2022, Revised- 07.06.2022, Accepted- 10.06.2022 [illegible]

Abstract: *Feminine Sensibilities interpreted in "Tara" are very close to the [illegible] the second Sex, which seeks primary inquiries of modern feminism. In present [illegible] a historically specific movement rooted in French English thought and in British [illegible] consequently embedded in deeply critical style of notions of truth, justice, freedom and [illegible] ideology is political because it is concerned with question of the position in [illegible] and thinking of other from men and it is possible because in modern times the strength [illegible] and can be achieved through intellect rather than through physical strength, the [illegible] revolutionary because it is against status quo.*

Key Words: Speaking trees, Post Colonial English Drama, Genre, Patriarchal [illegible]

"Theatre is a reflection of what you observe. To do anything more would be [illegible] ceases to be theatre." (Profiles-md.html)

"Mother are the one. You sent away. When the doctor told you it would be a girl." "Voice of the [illegible]

Mahesh Dattani, a name considered as a chief exponent [illegible] of the "Third [illegible] plays are "speaking trees", to the audiences of India. He is the voice of [illegible] the marginalized group. He occupies a global status in Post Colonial Indian English Drama [illegible] English dramatist to be awarded the prestigious Sahitya Academy Award for his collected plays [illegible] the top position among the contemporary Indian English Directors. He is acclaimed as actor, [illegible] rolled into one. "Many of his plays have been staged to Universal acclaim. His best radio plays [illegible] BBC radio." (my resume P. 2 of 5)

He loves for love the art of directing play. "The minute write a play, the minute it's ready [illegible] computer, I want to direct it." (my resume, 3)

He further says, "I would choose to direct first before I write." [illegible] He [illegible] direct the first production of any play I write. That enables me to put in more stage [illegible] become a kind of blue print for other directors. That way, there is no conflict [illegible] they will. (anitanair.net)

Dattani never wants to infuse his idea in his art. He handles the situations according to [illegible] times. He is very close to, "The minds of the poet are the thread of Platinum. It may partly [illegible] on the experience of the man himself; but the more perfect the artist, the more completely separate [illegible] man who suffers and the mind which creates; the more perfectly will be the mind digest and [illegible] which are its material." (Eliot P. 21)

Dattani always tried to maintain objectivity in his work. Like G.B. Shaw and John [illegible] thinks that drama is the medium of exposing the realities of the various ills and maladies [illegible] world over. He observes Art for Society's Sake- "I am certain that my plays are true reflection of [illegible] socio-economic background. I am hugely excited and curious to know what the future holds [illegible] new millennium in a country that has a myriad challenges to face politically socially, [illegible] Dattani p. XV)

Another observation of Dattani's plays follows as- They "fuse the physical and [illegible] Indian Theatre with textual rigour of western models like Ibsen and Tennessee Williams. It is [illegible] [illegible] and its ability to approach a subject [illegible]

ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
[illegible]
ISSN NO. - 2347 - 2944
Vol.-[illegible], No.-[illegible] [illegible] Dec. 2019

Ismat Chughtai and Her Feminine World

DR. Meenu Dubey
Assistant Professor Dept. Of English [illegible] P.G. College [illegible] U.P., India

Received [illegible], Revised [illegible], Accepted [illegible], E-mail: [illegible]

Abstract: Ismat Chughtai is one of the most prominent and debated writers of Urdu Literature. Unlike her eminent contemporaries Saadat Hasan Manto, Krishen Chander and Rajinder Singh Bedi, she chose to explore the areas that were taboos in Indian Muslim Society. She had the mind of a rebel, a tongue of a woman and the sensibility of an artist. (Narang, 133) She, as an active member of Progressive Writers Association, wrote much a head of her times. As an eminent Urdu Writer, Chughtai is chiefly known for her indomitable spirit and a fierce feminist ideology. Her works became an epitome for revolutionary aspect of feminism. She explored feminine sexuality along with middle class gentility. She became a crusader, who sowed the seed of feminism with depth of psychological insight in the world of women.

Key Words: Indomitable Spirit, Feminist ideology, Middle class gentility, [illegible], [illegible] world view.

This paper shall explore and interpret some of the selected short stories and other works of Ismat Chughtai, which bear themes of marriage, subjugation and confinement of women in the name of domesticity. Through this paper, I wish to focus upon various facts of gender discrimination, which are prevalent even in the current hi-tech society, as she highlighted the pitiable condition of women in domestic circumstances; exploitation of women through marriage institution became relevant issue in the works of Ismat Chughtai. In the name of marriage, a woman lives life of endless drudgery and this subjugation became the endless part of the works of this leading and prominent Urdu writer, who is rebellious, intellectual, fearless, outspoken and above all a feminist by her soul, who examined the inequitable distribution of political social and economic power between the male female world. She [illegible] when she disdains marriage as a social obligation meant for security and becomes ultimate destiny for women. She emphasized for women that they have to realize that they are also sharing the right of liberated soul, who can break the right of liberated soul, who can break the shackles of an oppressive control [illegible] of marriage bond and add the new meaning to the relationships and the [illegible] of women with male world.

In her works Chughtai explored the Indian Muslim females space and sexuality within male Chauvinist world view. She created bold female protagonist from her [illegible] personal experiences and tried to portray their particular tensions against the male counter parts. Chughtai concerns in a milieu that could never allow female sexuality and female stance to find room in conservative society. She is primarily concerned with the struggle of women to find out the personhood and identity in oppressive scenario of patriarchal set up of society and culture. A major factor in suppressing the identity of women is their confinement to the domestic space and their assigned duty of nurturing the whole family. "The situation of women is that she a free and autonomous being like all creatures never the less finds herself living in a world, where men compel her to assume the status of the other." (Beauvoir, P. 29)

In her The Rock Chughtai employs a narrator, a young sister of Bhaiya, who narrates the story of her brother's many marriages. This story depicts the life of young ladies, who are warmly welcomed in their husbands house leaving behind their maternal comfort, where they loose their independence, identity and respect. This work [illegible] Chughtai's awareness towards the unequal status of women. But noticeable feature is that her [illegible]

Corresponding Author

16:08 Tue, 3 Feb

1204503_1740897011_d88f9502-20b9-5d7b-b917-9169887eed12.jpeg (1...

AHVAVARI SHODH VIKAS PATRIKA
PP. NO. 259-260
ISSN NO.

Poetic Journey of Judith Wright

DR. Meenu Dubey
Associate Professor, Dept. Of English [illegible] College [illegible], India

Received-09.05.2019, Revised-[illegible].2019, Accepted-[illegible]

Abstract: Her poem share unspectacular infrastructure, unity and creation are the hallmarks of her feminine and motherly feeling. Veronica Brandy biographer of Judith Wright aptly states that Judith becomes gradually conscious of "a sense of sacredness in the land" wrights is of the opinion that one should pay attention to "what they say and imply, rather than the way they convey it."

Key Words: Human creative activity, Fervent about, Microcosmic, Ras Bangla, Discontinuation, Bipolar.

In this research paper I wish to focus upon the [illegible] of Judith Wright in her poetry as a [illegible] to defend the right of these marginalized inhabitants. In [illegible] in the Australian psyche a feeling of solidarity, where everyone contributes to the development of the nation and most importantly to save the [illegible] of the land. She creates in her poetry as David [illegible] claims, the tension of an oppositional pull between "environment and past on one hand, and on the other, all the complex possibilities of an inherited culture" (www.org).

Historical perspective justifies that nationalism developed as opposed to cosmopolitanism which aims at Universalistic [illegible].

Omar Frantz Fanon (1925-61) a [illegible] and acclaimed Algerian revolutionary who has written an essay entitled "The Pitfalls of National Consciousness" focuses upon resistance against colonialism. He is less of preacher and practitioner. He like Leela Gandhi, actually [illegible] a new [illegible] to the nationalistic struggle in [illegible]. Although Fanon's writings maintain a deep ambivalence towards the political desirability of the [illegible] and centralized postcolonial nation-state, he remains unequivocally committed to the therapeutic necessity of anti colonial national agitation.... Fanon privileges nationalism for its capacity to heal the historical wounds inflicted by the 'Manichean' structure of colonial culture which confines the colonized in a limited, [illegible] [illegible]. In [illegible] process of [illegible] at [illegible] wholeness. It becomes a process of territorialization and [illegible] which replace the two-fold [illegible] of colonial culture and with a radically unified counter-culture. (Gandhi, 111-12)

Corresponding Author

They were, those, who chose to adapt themselves to the new environment rather than superimpose their class value of Englishness upon it. They were set against the squattocracy and underwent a correlative change in social values and patterns and from them come not only an authentic patriotic fervor but a tradition of warmth, hospitality and egalitarianism (www.org).

As the train panted up the foothills of the Moonbis and the haze of dust and eucalypt vapour dimmed the drought-stricken landscape, I found myself suddenly and sharply aware of it as my country. These hill and valleys were not mine, but and the threat of Japanese invasion hung over them as over me; I felt it under my ribs. Whatever other blood I hold, this was the country I loved and knew (www.org).

Thus, we find her poetry breathes about the recreation of the Australian landscape. Her Bullocky, The Kite, The Ancient Cycads ... the poems of love as divine feeling. J.W. attempts Universal themes like love life death nature nation religion was, etc.

Veronica Brandy biographer of Judith Wright aptly states that Judith becomes gradually conscious of "a sense of sacredness in the land" wrights is of the opinion that one should pay attention to "what they say and imply, rather than the way

A KALEIDOSCOPIC VISION OF BHAGWADGITA IN RAJA RAO'S THE SERPENT AND THE ROPE.

Meenu Dubey
Reader, Dept. of English
R. M. G. P. G. College, Faizabad

The works of **Raja Rao, Mulk Raj Anand**, [illegible] Ghosh and others truly express the Indian [illegible]ness. There is a glaring question regarding Indian [illegible] fiction. – "Is Indianness a peripheral conception?" [illegible] is labelled against Indian English novelist that [illegible] alienated from the main stream of Indian literary [illegible]. In opinion of the critics

"[illegible] through Indian languages an Indian consciousness can be created?" [Times p. 544]

and –

"[illegible] have a great literature .... except in an Indian language" [Report p. 97]

[illegible] is that Indian consciousness cannot be [illegible] expressed by the Indian writers in English, since [illegible]

[illegible] primarily concerned with adopting the [illegible] language spoken by a minority of Indians for [illegible] the life of those, whose emotional and intellectual [illegible] shaped by a different language and a different [illegible] situation leading to an absence of mutual [illegible] between the writer and the society" [Times

[illegible] is that the stress of sensibility upon Indo-[illegible] is of the West and he is committed to [illegible], thus, he does not present true [illegible] because he is alienated from Indian [illegible] of traditions.

[illegible] questions are also put up–

[illegible] whole bulk of Indo-Anglian writing [illegible] giving expression to the Indian [illegible]

Also, to what extent is Indo-Anglian writer, under the stress of sensibility and being interested in earning dollars and the stories. Caters to any audience? [Sout p. 256]

But, it is a misconception that motive and purpose of Indian English Writers are only to write for the audience outside India, or they wrote only for earning dollars. "Writers in whatever language they write, use the language for a creative purpose because of an inwardness to it" [Sum. 250]

This paper particularly concentrate upon vision and influence of Bhagwadgita upon the works of Raja Rao whose creative out put carry the spiritual urge of Indian consciousness. This enterprise aims to explore the idealist vision regarding the philosophical and universal truths expressed in the religious scriptures of India, i.e. Indian Vangamaya especially in **The Bhagwadgita**, which is an universal document which lays emphasis on the universal relevance of life and action:

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिद ततम्
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।।
(Gita, Ch. II, Sh.17)

which advocates "The reality pervading, be life immortal. None can destroy Him. He is immortal. The wise know - endures the real, while ephemeral be but the unreal." The concept of knowledge means the knowledge of God - realisation. It is also known as the **Path of Knowledge** ("Jnanayoga" or "Karma Sanyas") from [illegible] points of view are the integral part of Indian English [illegible] which defines that all [illegible] literary or

[illegible]
[illegible] (An International Peer Reviewed Refereed Research Journal), Vol 11, No 11, November 2021 Impact Factor : [illegible]
ISSN : 2250-1193

Racial Discrimination in Toni Morrison's the Bluest Eye

Manish Kumar
Research Scholar,
Dr. Meenu Dubey (Supervisor)
Associate Professor, Raja Mohan Girls P.G. College, Ayodhya

Abstract

The Bluest Eye, Toni Morrison's first novel, examines the social conflict like violence, sexuality, social hatred, racism, obsessed, were facing down by Pecola as the main character. The Bluest Eye is a work of tremendous emotional, cultural, and historical depth. Its passages are rich with allusions to Western history, media, literature, and religion. Morrison's prose was experimental; it is lyrical and evocative and unmistakably typical of the writing style that became the hallmark of her later work.

Keywords: Beauty, blue eyes, blacks, whites, racism

Toni Morrison, one of the major literary figures in contemporary Afro-American literature, was awarded the Nobel Prize for her outstanding contribution to English literature. Toni Morrison's The Bluest Eye is a very well-known manuscript which has this sort of beauty as its theme. Morrison challenges Western norms of beauty and presents the concept of beauty that is socially constructed. The Bluest Eye, Toni Morrison's first novel, examines the social conflict like violence, sexuality, social hatred, racism, obsessed, were facing down by Pecola as the main character.

Pecola's story is told through the eyes of multiple narrators. The main narrator is Claudia MacTeer, a childhood friend with whom Pecola once lived. Claudia narrates from two different perspectives: the adult Claudia, who reflects on the events of 1940–41, and the nine-year-old Claudia, who observes the events as they happen.

In the first section of the novel ("Autumn"), nine-year-old Claudia introduces Pecola and explains why she is living with the MacTeers. Claudia tells the reader what her mother, Mrs. MacTeer, told her: Pecola is a "case—a girl who had no place to go." The Breedloves are currently "outdoors," or homeless, because Pecola's father, Cholly, burned the family house down. The county placed Pecola with the MacTeer family until "they could decide what to do, or, more precisely, until the [Breedlove] family was reunited."

Morrison also reveals that if whiteness is used as a standard of beauty or anything else, then the value of blackness is diminished. The Bluest Eye tells the story of an eleven year old black girl, Pecola Breedlove, who wants to have blue eyes, because she sees herself, and is regarded by most of the characters in the novel as ugly. The novel examines the tragic effects of imposing white American ideals of beauty on the developing female identity of Pecola during the early 1940s. Toni Morrison demonstrates how such social standard defines little black girl's perspective, making people of colour feel weak. The novel initially brings up the insignificance of a black woman in the predominantly white American society in 1930's and 1940's, since it was the time of racial tensions which were evident and extreme. At that time, the standard of white colour's people is set that black and white are unequal and will never be equal in every aspect of living.

In this novel author tries to focus how black women have to face double discrimination in Afro-American culture in those days' women had to endure discrimination and oppression for being women and for being black. According to Toni Morrison this kind of discrimination has left these women traumatized. The narrator Claudia, of this novel The Bluest Eye presents the tragedy of the life of the heroine Pecola, of this novel. The protagonist Pecola of this novel wants blue eyes related to the quality of American beauty standards. Because of her grace, she

[illegible] SHODH VIKAS PATRIKA
PP. NO. 275-278
[illegible]

Symphonic Invocation of Past and Present in the Wasteland

[illegible]
E-mail: [illegible]

Received: [illegible], Revised: [illegible], Accepted: [illegible]

Abstract: *This paper aims to explore the final belief of T. S. Eliot that "all great poetry can communicate before it is understood." This is the power of the 'unheard melody' as Keats sings "Heard melodies are sweet but those unheard are sweeter". In view point of Eliot auditory imagination is that which explores the feeling for syllable and rhythm penetrating far below the conscious levels of thought and feeling every invigorating word. As a matter of fact Eliot gave a new channel, direction and versification of English poetry. Poem became a literary land-mark in history of 20th century poetry as it has reflected the mood of spiritual decline and frustration after the First World War. Eliot here uses a new effective technique in style and versification both. Conversational rhythm sings the tale of people of waste land, through this paper it shall be analyzed that how Eliot creates a "Classical Symphony" by the creation of words producing music. All the five movements of the poem The Wasteland suggest musical analogy. Music is produced through the repetitions of words, ideas and tones. Every word of the poem is evocative of rich musical effect. In this attempt consideration shall also be made upon how Eliot tried to get beyond poetry just as "Beethoven in his later work tried to get beyond music." The final section of The Waste Land produces in his memory the sound of the "Water dripping song" of the hermit thrush- "If there were the sound of water only Not the cicada And dry grass singing But sound of water over a rock Where the hermit thrush sings in the pine trees Drip drop drip drop drop drop drop But there is no water"*

Key words- Music of language, [illegible], Oratorical Rhetorical

This paper aims to explore the final belief of T. S. Eliot that "all great poetry can communicate before it is understood." This is the power of the 'unheard melody' as Keats sings "Heard melodies are sweet but those unheard are sweeter". In view point of Eliot "auditory imagination" is that which explores the feeling for syllable and rhythm penetrating far below the conscious levels of thought and feeling every invigorating word. As a matter of fact Eliot gave a new channel, direction and versification of English poetry. The Waste Land became a literary land-mark in history of 20th century poetry as it has reflected the mood of spiritual decline and frustration after the First World War. Ezra Pound and T. S. Eliot both were always preoccupied with the problems of correct poetic diction and language. Eliot's chief and primary concern belonged to the behaviour of words in a poetic discourse. He was highly anxious to search for precision and accuracy. His belief was in "a remarkable and original power of language and the music of language" (Eliot P. 322) As a maker of poetic language (Weston 7) he had shown his sense of responsibility for the selection of words, which can be modified and extended into the subtlest literary association. He was a staunch believer in the fact that criticism of poetry creates poetry. Eliot laid emphasis on the kind and quality of words necessary for poetic purpose chiefly because of the fact that he experienced that the existence of poetry springs from the inter-relationships of words, images, phrases and symbols. "Eliot believed that the aim of the poet should be to make an object out of words a poem which was itself part of a large whole, the tradition of poetry in the language. (Spender p.12) In 1917 when Eliot started his poetic carrier as a poet critic he stated "in criticizing poetry we are right if we begin with what sensibility and what knowledge of other poetry we possess with poetry as excellent words in excellent arrangement and excellent meter. (Eliot p.ix) Eliot's final advance in making poetry is towards a state of mind in which words reach into Silence. Following utterance of Eliot can better describe his declaration regarding the poetic language and its deliverance -

Words move, Music moves
Only in time but that which is only living,
Can only die. Words, after speech reach
Into the silence. Only by the form, the
pattern Can words or music reach,
The Stillness.
(Burnt Norton V 1936)

For him poetry is an escape from emotion and it is an escape from personality. In this saga Eliot uses a new effective technique

Assistant Professor, Dept. Of English, [illegible] Govt. P.G. College, [illegible] India

Corresponding Author/Joint Authors

An International Registered & Refereed Monthly Journal
English Literature
[illegible], March, 2017 [illegible]
[illegible]

Vedantic Pre-determinism and Theatre of Shakespeare

This research paper is designed to focus new perspectives on the causes of tragic episodes in the Shakespearean output and encounter of protagonists of Shakespeare with those episodes and incidents which wage a war with "Good" and "Evil". Shakespeare is a name - shining brilliantly on the firmament of English poetry and drama, going to fulfil the concept of great literatures which are going to fulfil the aesthetic values of life.

Dr. Meenu Dubey* & Meetu Upadhyay**

Through this paper my primary thesis is to study and evaluate Vedic Concept of pre-deterministic theory, which advocates "what is fixed cannot be altered." It is this feature of life which testifies us that "wheel of Destiny" moves on and on, everything is predestined in this universe, nothing can be changed by hands of human beings as mentioned in Shrimad Bhagwad Gita:-

[illegible] (Ch. II 26-27)

And

[illegible]

(Ch. 10, 4-5)

This research paper is designed to focus new perspectives on the causes of tragic episodes in the Shakespearean output and encounter of protagonists of Shakespeare with these episodes and incidents which wage war with "Good" and "Evil". Shakespeare is a name - shining brilliantly on the firmament of English poetry and drama going to fulfil the concept of great literatures which are going to fulfil the aesthetic values of life. His literary output can be [illegible] under:-

[illegible]

Spontaneous and universal appeal of the plays and [illegible] of Shakespeare, are justifying above quoted shloka, output is still alive and animated. He is rightly acclaimed

I therefore will begin, Soule of the age!
The applause! Delight! The wonder of our stage!
Triumph my 'Britaine', Thou hast one to showe,
To whom all scenes of "Europe" homage owe.
He was not of an age, but for all time". (Jonson, P.3)

Max Muller once pointed out "Shakespeare might have read Bhagwat Gita"- provides scope for comparative study of fatalistic view of human suffering of Shakespeare and Vedantic concept of pre-deterministic theory along with other philosophical truths mentioned in Hindu scriptures, which is liable for the tragic human destiny. Concept of human existence and survival i.e. all human activities- virtuous or malicious, events - fortunate or unfortunate - are predetermined by antecedent reasons and inscrutable omnipotent force, in the face of which any human being is powerless and helpless. His existence is like a puppet as in King Lear

As flies to the wanton boy are we to the gods,
They kill us for their sports; and another saying "Disaster heroically encountered, is man's happy ending"

Pre deterministic concept asserts that "Our teeth are set on edge because our fore fathers ate sour grapes". Children suffer for the wrong of their parents and sometimes their ancestors. Thus, man possesses nothing as Absolute Free Will. "He is helpless bird imprisoned in the cage of Destiny. Although at times he may flutter his wings, but alas! Bars are too strong to break. Concept of Pre determinism is a modern conceptualization, which emerged out of the post-colonial cultural and literacy movement. Post-colonialism like other post 'isms' makes a beginning in the field of investigation and undertaking following a period of

*Associate Professor, Raja Mohan Girls P.G. College, Faizabad (Uttar Pradesh)
**Research Scholar, Dr. RML Avadh University, Faizabad (Uttar Pradesh)

3

Romantic-Ecological Probings in Wordworth's Poetic Output

—Dr. Kartika Prakash Dubey & Dr. Meenu Dubey

lian vision of life, everything in the universe including the biosphere has been
d by God. Because of His immanence in everything we Indian begin everything
Shri Ganeshayanamah".

e, human beings, are required to give up our "egotism", have to change our vision,
e to assume utmost ecological humility and be fully awake to and aware of the
y mission of Deep Ecology which is concern with the issues of deeper concerns
touch upon principles of diversity, complexity autonomy, decentralization
is, egalitarianism and classness. (Naess 95). It is the moral duty of man that
ld save biotic life - its diversity, its autonomy and its symbiosis in order to make
net inhabitable. Indian philosophy, religion and Indian way of life always had
o-friendly and absolutely biocentric, this continues in present also to a great
ut this truism also can't be denied that language and prevalent discourses also
an what he is. Current environmental crisis is because of western theology,
thought and western science, which justifies the exploitation of nature whereas
deology believes in worship of nature elements as worship of river, animals,
l idol etc. Trees animals rivers etc. are associated with divinity, worship them
e for the peace of entire vegetation sky, earth and other elements is essential
ndian Culture, Indian Vedas, Upnishads and other religious and philosophical
ment that God is the Creator of Universe. He is Omnipotent, Omnipresent and
nt thus He entered into everything that he created:

the Atman) desired: I will become many, will propagate myself accordingly he practiced self
fication. After that he created the entire Universe. Whatever exists after having created it,
tered into it. (Taittriya Upanishad 2.6)

ature encompasses whole human experience which is veritable energy itself
g on which to others is to communicate and connect. Ecologists aim at

A Critical Evaluation of Sense of Alienation : In The Middleman and Other Stories

Bharati Mukherjee refers to this phenomenon in more explicit terms: "It were not right to describe the American experience as one of the melting pot but a more appropriate word would be fusion... immigrants was a two-way process and both the whites and immigrants were growing into a third thing by this interchange and experience." (Mukherjee p. 3). It is too difficult to decide the immigrant's sensibility in Bharati's short stories. Her characters reflect their cultural conflicts in different situation but they are fully assimilated and acculturated. It is a sort of two-way process between whites and immigrants and it is leading towards the new world of cultural assimilation which is an important aspect of Mukherjee's sense of alienation.

Dr. Mukesh Dubey

"I [illegible] (Kirwan).

[illegible]

... Bharati Mukherjee in *The Middleman and Other Stories* [illegible]

Reader Department of English, R.M.G.P.G. College, Firozabad (Uttar Pradesh)

Diasporic Encounter Through SAARC Feasibility In The Interperter of Maladies By Jhumpa Lahiri

Dr. Meenu Dubey, R.M.G.P.G. College, Fairabad

The "Prefatory Notes" categorically mentions that the stories of Jhumpa Lahiri " tells the lives of Indians in Exile, of people navigating between the strict traditions they've inherited and the baffling New World they must encounter everyday." In fact The word "Diaspora" was used initially for the dispersal of Jews, when they were forced into exile to Bobylonia. However, today it has come to mean any sizeable community of a particular nation or region living outside its own country and sharing some common bonds that give them an ethnic and consequent bonding.[1]

Literally, "Diaspora" refers to scatter (like seeds), or "dispersion" (Greek), or "Galut" (Hebrew for exile), it refers to a loss of homeland, a shift of population from one locale to another. The term Diaspora applies to expatriate minority communities, which has dispersed from an original "center" to one or more "peripheral" or foreign regions, to people who retain their myths about their Homeland, and feel alienated in the New Land.[2] The term Expatriate has assumed importance as a legitimate literary term in Common Wealth Literature in modern era. The term deals with many connotations like diaspora; emigrations; nationality; ethnicity ; 'marginality' hybridity, etc. An expatriate focuses on the native country that has been left behind. The expatriate dwells on the "Ex" status of the past, while the immigrant celebrates his present in the new country.[3] Expatriate sensibility is a widespread phenomenon in this century and George Steiner describes the expatriate writer as "the uncontemporary everyman."

The expatriate writer untergoes the pain of homelessness, alientation, and loss of belongingness. He struggles between two ways of life which leads to the feeling of dejection and frustration. The desire

Research Link - 85-A, Vol - X (2), April - 2011 Page No. 12-15
RNI No. MPHIN-2003-7041, ISSN No. 0973-1628

Another Slumdog Millionaire - A Critical Study

"It is fact that poverty and corruption in India seems to be the favorite theme of writers and films ...kers". Film "Slumdog Millionaire is glimmering example along with The God of Small Things of Arundhati ... An Area of Darkness, India, A Wounded Civilization by V.S. Naipaul. A dirty and backward India is ...world, in which the real India lies in real sense of the term. As Balram also talks about the rural Bharat: " I ...talking of a place in India at least a third of the country, a fertile place, full of fields and wheat and ponds ...he middle of these fields choked with lotuses and water lilies.... those who live in this place, call it the ...kness". Arvind Adiga's The White Tiger is "Blazingly savage and brilliant... an excoriating piece of work, ...ulfers in its stripping away of the veneer of "India Rising" to expose its rotting heart.... (Mukherjee) Adiga is ...g to go places we'd well to following him". This he expressed in The Sunday Telegraph. The present story ...ily an indirectly depicts the Indian poverty just as portrayed through the life of Nastha in Peepli Live or the ...e of Slumdog Millionaire.

DR. MEENU DUBEY* & GEETANJALI MISHRA**

The present paper aims to analyze how the vision ...moves from "darkness" of village life to the "light" of ...y life, through **"The White Tiger"** of Arvind Adiga. ...n Halwai, the narrator of the novel is a "self-taught ...eneur" (TWT- 5) whose story is the story of ...ing of those who are produced of half baked. He ...talked his life story of as "The Autobiography of a ...ked Indian (TWT-10).

The novel **The White Tiger** is a debut novel first ...ed in 2008 and in the same year won the **Man Booker** ...nders a study of the contrast between upgraded ...a modern global economy and the main character ...his crushing rural poverty **(Ghosh)**. The title of the ...el signifies its uniqueness. The work is a symbol of ...ably and unexampled creation. From the very first ...of the novel creates a sense of brooding. This work ...the "have not's - about the dark world of the poor, ...and distressed. **Adiga** depicts real India - it makes ...in Marxist term – of "haves and have not". **Adiga** ...ses while interviewing that **The White Tiger** is ...ting and dark India. I believe both sides of India ...represented in fiction. My concern is to look at ...disparity" **(Pais)**. This extraordinary and brilliant ...of Adiga takes the form of a series of letters to ...n, the Chinese premier from **Balram Halwai** the ...business man, who is self-styled **"White Tiger"** ...Bangalore in the **Silicon Valley** of the sub-...ed on the eve of a state visit by **Jiabao** - our ...**Halwai** wishes to import something of the new ...Chinese premier, "out of respect for the love of ...m by the Chinese people and also in the belief that the future of the world lies with the yellow man and the brown man now that our erstwhile master the white skinned man, has wasted himself through buggery, mobile phone usage and drug abuse, I offer to tell you..." (TWT-5-6)

Through this novel the novelist depicts distressing deplorations of the workers and slum dweller in Old Delhi. The workers build the malls and PVR and palatial apartments "for the rich, but they lived in tents covered with blue tarpaulin sheets and partitioned into lanes by lines of sewage. It was even worse than Laxmangarh". (TWT-260) Pathetic and distressing deploration of the poor, living in slums, depicted through the character **Balram**, who was victimized, who looks the bed scene while driving Honda City in Delhi. His observation follows as:

"My eyes obeyed his eyes. I saw the silhouettes of the slum dwellers close to one another inside the tents; you could make out one family – a husband, a wife, a child – all huddled around a stove inside one tent, lit up by a golden lamp" (TWT-188)

In next move, again there are many instances that are going to depict the dark and deplored image of India – viz. scarcity of water, problem of electricity, drawback of education, deplored conditions of hospital, cancerous spread of corruption, evil caste system etc. all these are going to corrode the inherent sensibility of India. The beggar sells books, statue or strawberries in boxes, for example an old woman looking lean and miserable came to Balram with her hand stretched out, "Brother, give me three rupee" (TWT-204)

Balram's reply is really heart touching and provokes our thought when he says- "I'm not one of the rich mother-

*Reader, Deptt. of English, R.M.G.P.G. College, Faizabad (U.P.)
**Research Scholar, Dr. R.M.L. Avadh University, Faizabad

Research Link - 74 ■ Vol - IX (3) ■ May - 2010 ■ [illegible]

Aristotelian Magnitude In Modern Prespectives in Things Fall Apart By Chinua Achebe

The novel begins with personal life of the protagonist Okonkwo- moves hand-in-hand with life of the society at large. Okonkwo is a tragic hero in The classical sense, although he is a man "who saw himself taking the highest title of the land" - his tragic flaw - the equation of manliness with rashness, anger and violence - results in his own destruction. His "manly" values conflict with his "unmanly" ones such as fondness for "Ikemefuna" and "Ezinma."

Dr. Meenu Dubey

The horizon of twentieth century world-literature is significantly enlarged by the bulk of African Literature. Though, the term African Literature has been variously defined, but it has been conclusively [illegible] upon that African Literature represents the writing of African nationals - being an African still, reflecting the African native [illegible] and atmosphere. The peculiar feature of this genre of literature is its [illegible] of Africanness. Despite the continent's [illegible] milieu. When African literature is compared to other world-literature, its distinction relies upon the possessing of Africanness. "Rich legacy" of oral literature is going to balance its lack of written medium. Ancient African societies have a profound, and pervasive impact of the wisdom pride and ethical tradition which reveals the [illegible] facets of the mystery of Africa in the writing of several African writers, inspite of the frustrating and tormenting experiences of the colonial ordeal. Writers - novelists, poets and playwrights - either eulogize their glorious past or [illegible] the devastation inflicted upon the native societies by the colonial powers of Europe in context of protest, conflict, anguish, anger or phobia. The offshoot of their encounter with the alien rulers and their strongly felt emotional turmoil is evinced through their use of the European literary forms and trends.

Africans were termed as 'half-devil', 'half- child' - which suppressed the native and perpetuated Africa's recognition as a 'Dark Continent'. As they were taken 'beyond redemption', they were considered as 'sub-human' and 'savagery' - therefore needed to be guided and civilized. In other role She (Europe) had no need and made little effort to understand and appreciate Africa, indeed she easily convinced herself that there was nothing there to justify the effort (Achebe 19). In fact [illegible] was the [illegible] of [illegible] encounters of Britain and Europe. Perhaps, that is why European writers like Joseph Conrad in his novel Heart of Darkness and Joyce Cary in his novel Mr. Johnson depicted an African - who is in the need of redemption, as -

"African remained immersed in primitive savagery" (Moore, 27) and

"... the Animism and Fetish of the pagan represent no system of ethics and no principles of conduct" -(Meyers, 25)

- which strengthened the world's ill-formed opinion about Africa and Africans.

But with passage of time, African Literature started gaining ground, as is evident by the large amount of material, both creative and critical, coming out of the press each year. African Literature has become a major subject of study in colleges and universities all over the world. The first African novel, published in English in 1952, was Amos Tutuola's Palm Wine Drinkard, which has been compared to Pilgrim's Progress by Chaucer.

Most of the West African writers like J. P. Clark, Chinua Achebe, Wole Soyinka and Christopher Okigbo were trained in the universities and they used their knowledge of the English language and its traditional literary forms to create dynamic works of art. Sometimes they are termed as Africa's "University Wits". They created and produced the dynamic works of art, which not only succeeded in making "a clarion call" for the recognition of "self- knowledge" but also inspired to hasten the process of independence all over Africa. It also justified that African writing has the uncanny power of drawing a certain lasting emotional response to the readers.

Reder (Department of English), Raja Mohan Girls P.G. College, Faizabad (Uttar Pradesh)

5. Ibid.

6. Arthur Miller, "Death of a Salesman", *Collected Plays* (New Delhi: Allied Publishers, 1973), p. [illegible]

7. Ibid., p. [illegible]

8. [illegible] "Social Consciousness and Individual Responsibility: An Analysis of Arthur Miller's Death of Salesman", *Perspectives on* [illegible] (New Delhi: [illegible] Publishing House, 1991), p. [illegible]

9. Arthur Miller, "Death of a Salesman", *Collected Plays* (New Delhi: Allied Publishers, 1973), p. [illegible]

10. Ibid.

11. Ibid., p. [illegible]

12. Arthur Miller, "All My Sons", *Collected Plays* (New Delhi: Allied Publishers, 1973), p. [illegible]

❖❖

Narayan's World of Eastern Sensibility : Material And Methodology

Dr. Meena Dubey
Reader, [illegible] Mohan Girls P.G. College, [illegible]

For [illegible] and [illegible] Indian intellectuals have [illegible] English. [illegible] In the early years of present century [illegible] Cambridge [illegible] essay on Anglo-Indian literature [illegible] published it as a book [illegible] in the "Cambridge History of English [illegible]". He confined himself to the [illegible] of English [illegible] and Indian [illegible].

Macaulay's Minute on Education [illegible] to have a [illegible]

[illegible] language in which [illegible] could [illegible] their [illegible] and [illegible]. [illegible] English [illegible] to bring about a [illegible] India. There was a [illegible] of Indian [illegible] through the adoption of new literary [illegible] from the West. [illegible] the beginning of Indian [illegible] in English [illegible] short drama and short story.

As [illegible] every day life, it gives a compelling [illegible] of every day life and its shared experiences. [illegible] Indian English literature [illegible] English tradition. [illegible] Indians [illegible] experiences, expression and style. [illegible] is a part of cultural and linguistic [illegible] Indian English [illegible] of [illegible] to the Eastern Consciousness.

This Eastern consciousness is a [illegible] of [illegible] and [illegible]. It does not [illegible] but in the mind [illegible] the [illegible] of the [illegible] of Indians.

1. [illegible] part of [illegible]

2. [illegible] the [illegible] a kind of self [illegible]

3. It is spontaneous overflow of [illegible] of Indian [illegible] heritage [illegible] a [illegible] to an Indian novelist.

4. [illegible] which [illegible] cultural [illegible] and [illegible] and [illegible] influence:

(i) Indian thought [illegible]

(ii) Indian [illegible]

(iii) Indian [illegible]

National [illegible] was stimulated by the [illegible] Mahatma Gandhi. New themes and new [illegible] of life [illegible] new [illegible] literary [illegible]. This [illegible]

IJAS, JUNE 2008, Vol.2(2), 81-85

IMPACT OF GLOBALIZATION ON TRIBAL ISSUES : BARRIERS IN THE MAIN STREAMING

Meenu Dubey*

"Indian Cultural Heritage is one of the most ancient, extensive and varied among all those which make up the cultural heritage of mankind. Through out the ages many races and people contributed to Indian Culture. Some came into contact with India only temporarily, others settled permanently within their borders. The key note of the distinctive culture thus evolved was synthesis on the basis of eternal values" (Quoted from 'The Cultural Heritage of India'- published by Sri Ram Krishna Mission.)

The commonly accepted view is that India's cultural heritage is not only most ancient but also the most widespread and assimilative. Its background flourished over 4,000 years ago. Especially, when we relate it with the pre-historic Indus Valley Civilization it goes back to 5,000 years. The structure of Indian society is very complex. During the process of evolution and development it has acquired composite culture. The term "Indian Tradition" virtually refers to the "Indian Cultural Traditions".[1]

Dr. Iravati Karve has rightly pointed out that in whole of the western world, we do not find a single country having an extensive and diverse cultural tradition similar to India. She called- India "the epitome of the world". According to her, the most noticeable feature of Indian cultural tradition is that it has "Unity in Diversity".[2] It has become synonym of India's self identity. According to S.C Dubey, Huan Tsang (A.D 630-44) Alberuni (A.D 1030) Marco Polo (A.D 1288-93) and Ibn Battutan (A.D 1325-51) had also observed and recorded the same in the past.[3] Another feature is its unbroken continuity, which is emphasized by Max Muller in the following way: "There is, in fact, an unbroken continuity between the most modern and the most ancient phases of Hindu thought extending over more than 3,000 years."[4] Though Indian cultural tradition is primarily based on Dharma, it has scientific aspects also. The concept of "zero" that has basic place in value system and numeration, square roots, cube roots, and powers of ten were provided by Indians' knowledge system. Hinduism is the ancient traditional religion which can be best reflected by all of its religious and philosophical literature, including Shruti, four Vedas – Rig Veda, Yajur Veda, Sam Veda, Atharva Veda; four important parts of Vedas i.e. Mantras, Brahamans, Aranyakas, and Upnishads; Smriti – Dharmashastras, Itihasas, Epics like Ramayana, Mahabharata; Vaidika- Nyaya, Vaisesika, Samkhaya, Yoga,

*Reader in English, R.M. G.P. G. College, [illegible]

United Journal of Awadh Scholars, Vol. 1 (No. 1 & 2), Oct. 2007, 81-87

INITIATIVES FOR WOMEN'S EMPOWERMENT AND DEVELOPMENT : PREVENTIVES AGAINST SKEWED SEX RATIO

Meenu Dubey*

The paper describes the century old problems of discrimination against women in our society. It drew attention towards the dropping of ratio of female vs. male during recent decades. Its causes and consequences are narrated. The paper suggests to work for improvement in women's conditions through their empowerment and development.

Problems of women - as gender discrimination, decrease in their birth te, and lack in initiatives for empowerment and preventives for decrease in rth rate are serious issues to be discussed for a strong and well-built structure the society. They are going to disbalance it. Firstly, the paper attempts to lineate the initiatives for empowerment and development of women's status the society and then will concentrate upon the preventives for the murder of bron girls-foetus. Following are the contextual references upon which this per will concentrate :

- Prespectives regarding the position of women in India.
- Faces of exploitation
- Reasons for the elimination
- Reports on gender discrimination and their consequences.
- Role of technologies and NGOs in prevention of sex selective abortion - Chahat, Masoom etc.
- Role of literature : Feminism
- Other perspectives regarding the elimination of girls-foetus.

Suggestive remedies for sex-selective aboration are - Gender equality, nder Budgeting, Socio-political and Economic and Empowerment of women.

An ideal society is one where women can walk fearlessly, women can y pretend to be satisfied and happy. This thought is expressed in the poem itled - "Suicide" by Kamla Das :

"But
I must pose
I must pretend
I must act the role
Of a happy woman

3

Admirable Harmony of Myth as Technique in Workable Verse of *The Cocktail Party* and *The Family Reunion*

— *Dr. Meenu Dubey*

This paper aims to attempt an approach to the harmony of myth as technique in the workable verse of *The Cocktail Party* and *The Family Reunion*. It will concentrate upon the thought how myths, which share traditional elements and features are interpreted and explained by eminent thinker T.S. Eliot from different angles. The term myth is used in a variety of meanings in Sociology Anthropology, Psychology, Philosophy and comparative religion, each field of study investing it with different connotations. But its use by Eliot in his poetic drama provides new dimensions to the theatrical concept.

The revival of poetic drama in the twentieth century is one of the most significant developments on modern literature. It was revived because it was felt that even the best products of the prose dramatists of the last fifty years lacked "atmosphere" and quality of felt life. This revival has a much closer connection with the deeper religious beliefs or social attitudes of their authors than that of the prose drama of the time. In the 1930 and the 40s W.B. Yeats and the other members of the Irish Movement sought to poeticise drama in its thought, content and expression. J.W. Mariott has analysed the causes of the survival of dramatic activity–

> "It is possible to account for the miracle that happened, there is no single explanation, but we can discover a dozen or more contributory factors, all of which were significant. There had been a gradual disappearance of the ancient prejudice against theatre going, a welcome relaxation of the censorship, a steady rise in standards of judgement, due to the spread of education, an increasing margin of leisure in the life of ordinary man and woman, a deepening conviction that a certain amount of recreation is the natural right of every human being and remarkable competence on the theatre for announcement. We have to recognise the influence of the new producer with his theories of drama as a

शब्द भारती
38 – 61 : 2009 : 270 – 281

NEBULOUS AREA OF HALF LIGHTS - IN THE DARK HOLDS NO TERRORS

Meena Dubey

This paper aims at interpreting Shashi Deshpande's novel "The Dark Holds No Terrors" from the feminist point of view. The first section of the paper will evaluate in brief the basic aspects of feminist attitude both Eastern and Western. The second half of the paper will make introspection and devoted probe to an analysis of the title of the novel which effectively presents the need for confrontation in terms of light and darkness. In fact, the novel deals with the "Nebulous area of half lights". This paper will conclude with justification that the novel "The Dark Holds No Terrors" deals with "two-in-one-women" who get a chance to review all her predicaments and all of a sudden she acquires a better understanding of herself and others, which provides her the courage to confront reality and the dark holds no terrors to her.

The novel *The Dark Holds No Terrors* is a story of a girl child Sarita alias Saru who falls a victim of her mother's sexist and gender based biases which leaves an indelible imprint on the mind of the character. The tantrums of the mother develops in the daughter, the psychological fear and she becomes claustrophobic. This novel *The Dark Holds No Terror* is a totally different novel in the sense that it explodes the myth of man's unquestionable authority and superiority and the myth of women being a "Martyr" and paragon of all virtues. It is based on the problem which has been expressed by Kamala Das's poem entitled 'Suicide':-

"But
I must pose
must pretend
I must act the role of happy women.
Happy wife."

Matrilineal Form of Black Families : A Dive in Feminine Sensibility In Toni Morrison's Beloved

Dr. [illegible]

Reader in English, Raja Mohan Girls P.G. College, Faizabad (Uttar Pradesh)

ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.19, No.4, Oct. – Dec., 2024/20

भारत एवं भारतीयता

सुषमा पाठक

https://doi.org/ 10.61410/had.v19i4.207

सारांश:– हमारे देश भारत के सम्बोधन हेतु अनेक संज्ञाओं का उपयोग किया गया यथा–जम्बूद्वीप, आर्यावर्त, अजनाभ वर्ष, भारत खण्ड, भारत–वर्ष, इलावृत, इण्डिया एवं तेनजीक। उपर्युक्त सर्वाधिक चर्चित और अद्यतन उपयोग में संज्ञा भारत है, जिसे आंग्ल भाषा में इण्डिया कहा जाता है। आदि शासक मनु अपनी प्रजा का भरण–पोषण करने के कारण 'भरत' संज्ञा से लोक प्रचलित हुये, मनु की पाँचवी पीढ़ी में स्वयं भू मनु के उपरान्त क्रमशः प्रियव्रत, अग्नीध्र, नाभि और ऋषभ। ऋषभ के दो पुत्र भरत और बाहुबली हुये। बाहुबली के वैराग्य ग्रहण करने पर भरत को चक्रवर्ती सम्राट का दायित्व मिला। रामचन्द्र जी के अनुज का भी नाम भरत था। इसी प्रकार पुरुवंश के शासक दुष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र का भी नाम भरत था। इस प्रकार उपर्युक्त चार 'भरत' संज्ञाये 'भारत' नामकरण का आधार रूप में चर्चित है। इलावृत या इलावृत्त संज्ञा भी प्रियव्रत के वंशजों में प्राप्त होती। असंदिग्ध रूप से भारत संज्ञा का घनिष्ठ सम्बन्ध 'भरत' संज्ञा से है, जो पराक्रमी, प्रजावत्सल और नीर–क्षीर विवेकी अपनी प्रजा का पोषणकर्त्ता रहा होगा।

शब्द संकेत :– जम्बूद्वीप, आर्यावर्त, तेनजीकू, भारतखण्ड, भारतवर्ष

जम्बूद्वीप– पद का उपयोग पुराण साहित्य, जैन एवं बौद्ध साहित्य में हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ है – जम्बू वृक्षों की भूमि/सीजीगियम क्यूमिनी। सामान्यतया इसका अभिप्राय वृहत्तर भारत से ग्रहण किया जाता है। **आर्यावर्त –** बौधायन (1.1.2.10) वशिष्ठ (1.8–9 एवं 12–13) एवं पतंजलि (200 ई०पू०) ने उल्लेख किया है। इसका सामान्य अभिप्राय आर्यों की भूमि है। इसका उपयोग गंगा–यमुना के दोआब से ग्रहण किया गया। कान्यकुब्ज/कन्नौज इसका केन्द्र था। **तेनजीकू –** का शाब्दिक अर्थ स्वर्ग है। भारत के लिए प्रयुक्त चीनी संज्ञा 'तियानझू' का जापानी उच्चारण है। इसका उपयोग जापानी वास्तुकला के लिए भी किया जाता है। **भारतखण्ड –** अभिप्राय भारत की भूमि है, उसका उपयोग उपमहाद्वीप के अध्ययन में किया जाता है। इसका सन्दर्भ वैदिक संहिता महाकाव्यों और पौराणिक साहित्य में हुआ है। **भारतवर्ष –** पुराणों के आधार पर जम्बूद्वीप के नौ खण्डों में से एक खण्ड जो हिमालय के दक्षिण और गंगोत्री से कन्याकुमारी तक तथा सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक विस्तृत है। भारत नाम का आधार ऋषभदेव पुत्र भरत/दुष्यन्त पुत्र भरत/आदि शासक मनु की भरण-पोषण विशेषता – भरत।

प्राचीनतम साहित्यिक स्मारक ऋग्वेद, वैदिक संहिता और पुराणों में भरत शब्द का उल्लेख अग्नि, प्रकाश, शक्ति, संग्राम और सूर्य के अभिप्राय में हुआ है। विष्णु–पुराण में भारत और भारती सन्तति का भी स्पष्ट उल्लेख हुआ है।[1] समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में जो भू–भाग है, उसे भारत और उसकी सन्तति को भारती कहा गया है।[2] विष्णु–पुराण में ही उल्लिखित है कि – देवगण निरन्तर यही गान करते हैं, कि जिन्होंने स्वर्ग और मोक्ष के मार्ग पर चलने के लिए भारत भूमि पर जन्म लिया है, ऐसे मनुष्य देवताओं की अपेक्षाकृत अधिक भाग्यवान है। श्रीमद् भागवत में सन्दर्भ मिलता है कि मनुष्य तो मनुष्य देवगण भी इस भारत भूमि के आंगन में जन्म लेने के लिए लालायित रहते हैं।[3]

अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में सम्भवतः इसीलिए उल्लिखित है कि भूमि हमारी माता है और हम उसकी (पुत्र) सन्तति हैं।[4] जम्बूद्वीप, आर्यावर्त, भारत खंड, हिंद, हिंदुस्तान, अल–हिन्द, भारत, [illegible] तियानझू एवं होदु आदि नाम से अभिव्यक्त भारत शब्द हमारी सांस्कृतिक पहचान है। हिन्दू और हिन्द फारसी भाषा के शब्द हैं, जो संस्कृत सिन्धु से प्रयोग में आए। सन् 516 ई०पू० में डेरियस प्रथम ने सिन्धु

आचार्य एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र, [illegible] पी.जी.कालेज, अयोध्या

ग्रामीण महिलाओं की समस्याएं एवं उनको दूर करने का सुझाव

डॉ० सुषमा पाठक
शोध निर्देशिका

एसोसिएट प्रोफेसर
राजा मोहन गर्ल्स पी०जी० कालेज
सम्बद्ध– डॉ० राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ०प्र०)

सुषमा भारती
शोध छात्रा

समाजशास्त्र
राजा मोहन गर्ल्स पी०जी० कालेज
सम्बद्ध– डॉ० राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ०प्र०)

प्रस्तावना :–

भारतीय समाज में अस्पृश्यता के कारण आज भी बहुत सारी कठिनाइयां तथा समस्याओं का सामना करना पड़ता है छुआ छूत का जो नियम हमारे समाज में विद्यमान है उनके कारण मानव–मानव एक दूसरे से दूरी बनाकर रखते हैं। कभी भी जाति व्यवस्था को तोड़ने का प्रयास सफल नहीं हो सका। महानगरों में काफी हद तक जाति व्यवस्था कम हुई है यही कारण है कि बड़े–बड़े शहरों में अन्तर्जातीय विवाह होता है वहां लोग धन से सम्बन्धित प्रस्थिति को अधिक महत्व देते है।

परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में इसके विपरीत दशास्थिति देखने को मिलती है। ग्रामीणवासी कभी भी अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता नहीं देते। परिवार की प्रथम प्राथमिकता यही होती है कि उनकी बेटियों की विवाह अपने ही जाति में हो। शोध कार्य के समय शोधार्थिनी को जिन समस्याओं का विवरण प्राप्त हुआ उसके आधार पर सुझाव इस प्रकार है–

1 : डॉ० भीमराव अम्बेडकर की सम्पूर्ण जीवन संघर्ष, संविधान निर्माण की जानकारी उपलब्ध कराना – ग्रामीण समुदाय की स्त्रियों को डॉ० भीमराव अम्बेडकर के विषय में पूरी जानकारी देना चाहिए क्योंकि आज भी महिलाएं बाबा साहेब के योगदानों से परिचित नहीं है। साक्षात्कार के समय कुछ महिलाएं बाबा साहेब का नाम भी नहीं जानती थी तो उनके संघर्ष को कैसे जान सकती है। इस कार्य के लिए सबसे पहले परिवार के शिक्षित व्यक्तियों को ही आगे आना होगा

ग्रामीण सामुदायिक जीवन एवं कार्यशैली में नगरीय संस्कृति का प्रभाव

–सुमन तिवारी, *प्रोफे.(श्रीमती) सुषमा पाठक
शोधार्थी-समाजशास्त्र विभाग, डॉ.राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद
*प्रोफेसर आचार्य एवं अध्यक्ष–समाजशास्त्र विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी.कॉलेज, अयोध्या

ग्रामीण जीवन पर प्राकृतिक पर्यावरण का ही प्रभाव नहीं [illegible] सामाजिक पर्यावरण का भी प्रभाव पड़ता है। गांव सादगी, सरल [illegible] प्रकृति के साथ निकटता है। जबकि नगरीय जीवन जटिलता, [illegible] कृत्रिमता तथा प्राकृतिक पर्यावरण के संशोधन का पोषक [illegible] है। ग्रामीण जीवन जहाँ मनुष्य को स्वच्छ पर्यावरण के साथ [illegible] एवं मिठास प्रदान करता है वहीं नगरों में बनावटी जीवनशैली [illegible] का वातावरण प्रदान करता है। ग्रामीण सामुदायिक [illegible] की भावना, सामान्य परम्परा के रूप में है। व्यक्ति की [illegible] आवश्यकताओं की पूर्ति का केन्द्र भी होता है। [illegible] ने लिखा है कि "किसी छोटे या बड़े समूह के सदस्य [illegible] इस प्रकार रहते हैं कि वे किसी विशेष प्रकार के [illegible] में भाग न लेकर सामान्य जीवन की आधारभूत स्थितियों में [illegible] हैं तो ऐसे समूह को समुदाय कहा जाता है।" [illegible] का कहना है कि "एक ग्रामीण समुदाय वह स्थानीय क्षेत्र है जिसमें [illegible] रहने वाले लोगों की सामाजिक अन्तःक्रिया और उनकी संस्थाएं [illegible] है जिसमें वह खेतों के चारों ओर बिखरी झोपड़ियों या [illegible] में रहता है और जो उनकी सामान्य गतिविधि का केन्द्र है।"[2]

[illegible] ग्रामीण जीवन परम्परा में कुछ चुनौतियाँ [illegible] रही हैं। इनमें गरीबी, बेरोजगारी एवं अच्छी शिक्षा के [illegible] है। विभिन्न सरकारी [illegible] में सुविधा के अवसर सीमित हैं। [illegible] बुनियादी सुविधाओं को प्रदान करने में [illegible] नहीं प्राप्त कर सकी हैं। रोजगार के कम अवसर के कारण [illegible] का पलायन बड़े नगरों की ओर निरन्तर जारी रहा है। [illegible] शिक्षित युवा वर्ग, गरीब, मजदूर वर्ग के लिए मनरेगा [illegible] रोजगार अवसर प्रदान [illegible] आज भी ग्रामीण मजदूर वर्ग को [illegible] किन्तु गरीबी निवारण हेतु कोई ठोस योजना दृष्टिगत [illegible] है। ग्रामीण समाज की परम्परागत व्यवस्था में जहाँ संयुक्त [illegible] लोग एक दूसरे से मिलजुल कर जीवन निर्वहन [illegible] सम्पत्ति, साझा चूल्हा, मुखिया को सर्वोच्च स्थान [illegible] किन्तु नगरीय संस्कृति के प्रभाव में संयुक्त परिवार व्यवस्था [illegible] परिवारों में विभक्त हो गये। नगरीय विलासितापूर्ण [illegible] सिनेमा अब ग्रामीण टेलीविजन, फ्रिज इत्यादि अब सामान्य [illegible] में भी अब अनुपयोगिता [illegible] देखा जा सकता है। ग्रामीण परिवेश में भी अब [illegible]

[illegible] का प्रभाव [illegible] है। [illegible] आर्थिक [illegible] है। जाति के [illegible] प्रथा [illegible] ग्रामीण जीवन की [illegible] अधिकांशतः [illegible] है।

[illegible] ग्रामीण [illegible] नगरीय संस्कृति के प्रभाव को भी देखने का प्रयास किया था। [illegible] नगरीकरण में वृद्धि का कारण [illegible] औद्योगिक [illegible] प्रक्रिया [illegible] उन्होंने विचार किया कि [illegible] नगरीय संस्कृति के प्रभाव को [illegible] ने इसके विकास हेतु [illegible] ग्रामीण [illegible] राजनीतिक केन्द्र एवं [illegible] शासनकाल में ग्रामीण जीवन परम्परा में परिवर्तन [illegible] हुआ। [illegible] की दृष्टि से नगरों में [illegible] सेवाएं अधिक सघन एवं विस्तारित हैं। इसलिए गाँवों का पूर्ण [illegible] नहीं हो सका है।

शोध प्रारूप–प्रस्तुत शोध–अध्ययन [illegible] जनपद के [illegible] के तीन गाँवों [illegible] तथा [illegible] के कुल 100–100 उत्तरदाताओं का चयन दैव निदर्शन विधि से किया गया है। इस अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत साक्षात्कार अनुसूची एवं द्वितीयक स्रोतों में सरकारी एवं गैर सरकारी आंकड़े, रिपोर्ट, समाचार-पत्र-पत्रिकाओं से भी आंकड़ों का संकलन किया गया है।

शोध परिकल्पना–(1)ग्रामीण सामुदायिक जीवन आधुनिकीकरण से [illegible] प्रभावित होती है (2)ग्रामीण सामुदायिक जीवन की कार्यशैली [illegible] परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है (3)[illegible] सामुदायिक जीवन [illegible] के प्रभाव में है (4)[illegible] के प्रभाव में [illegible] (5)ग्रामीण सामाजिक [illegible] (6)[illegible] सामाजिक एवं शैक्षिक [illegible] सामुदायिक जीवन में ग्रामीण महिलाएं [illegible] परम्पराओं से बाहर निकल रही है (7)[illegible] ग्रामीण समुदाय की परम्परागत [illegible] रहा है (8)[illegible] मूल्यों की अपेक्षा आधुनिक मूल्यों [illegible] दिखाई जा रहे है (9)[illegible] का प्रभाव ग्रामीण समुदाय पर स्पष्ट [illegible] सामुदायिक जीवन एवं कार्यशैली [illegible] आगे बढ़ रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य–(1)ग्रामीण सामुदायिक जीवन पर आधुनिकीकरण के प्रभाव का अध्ययन करना (2)[illegible] परिवेश में [illegible] (3)ग्रामीण समुदाय पर नगरीय संस्कृति के प्रभाव का [illegible]

पुरुष घरेलू हिंसा "एक समाजशास्त्रीय अध्ययन"

पल्लवी श्रीवास्तव, शोध छात्रा, समाजशास्त्र,डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या
प्रो0 (डॉ0) श्रीमती सुषमा पाठक, शोध पर्यवेक्षक, विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र
राजामोहन गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, अयोध्या।
https://doi.org/10.61410/had.v19i1.166

घर की चहारदीवारी के भीतर पुरुषों पर हो रहे अत्याचार की संख्या में आए दिन बढ़ोत्तरी देखने को मिल रही है जो पुरुष सब कुछ सहन करते हुए जीवन व्यतीत करते है उनको तो नहीं लेकिन जो पुरुष अपने तथा अपने परिवार के प्रति रवैये का विरोध करते है उन्हें दहेज तथा घरेलू हिंसा जैसे झूठे आरोपों में फंसाकर सलाखों के पीछे ढकेल दिया जाता है।

दोषी या निर्दोष 498ए के तहत बिना किसी जांच या पड़ताल के सिर्फ आरोपों की वजह से लाखों लोग गिरफ्तार हो चुके है।

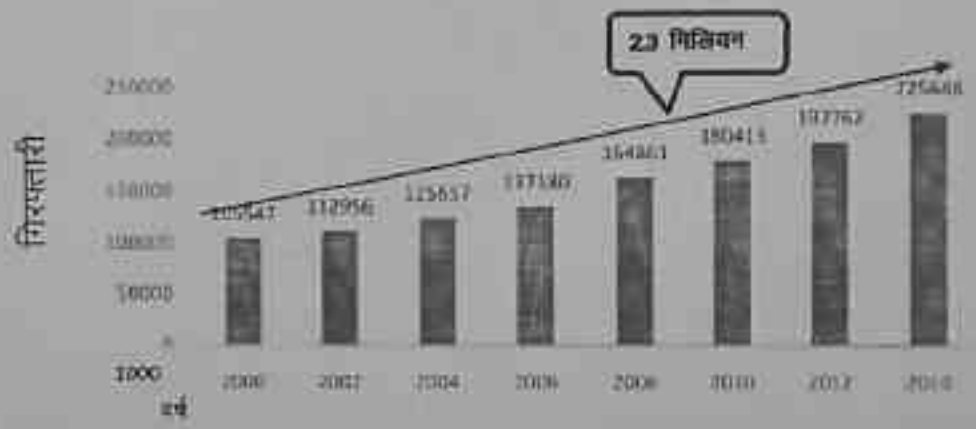

पिछले डेढ़ दशक को 23 लाख लोगो को अकेले इस कानून के तहत गिरफ्तार किया गया है जो आईपीसी के तहत किसी भी अन्य कानून की तुलना में ज्यादा है चोरी और चोट जैसे अति अपराधों को छोड़कर

चोरी
आहत
उपद्रव
उपद्रव
498ए
हत्या
डकैती
लूट-पाट
बलात्कार
बेईमानी
आगजनी
चोरबाजारी
अपहरण

2.3मिलियन

"भारतीय समाज में पुरूष घरेलू हिंसा का अध्ययन"

पल्लवी श्रीवास्तव एवं डॉ. श्रीमती सुषमा पाठक
शोध छात्रा,समाजशास्त्र एवं शोध पर्यवेक्षक
राजमोहन गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, अयोध्या।

https://doi.org/10.61410/had.v18i2.136

किसी भी देश के नागरिकों की जब चर्चा की जाती है तो शब्द से प्रथम रूप में महिला और पुरुष दोनों का बोध होता है। किसी समाज की प्राथमिक इकाई परिवार मानी जाती है और परिवार को चलाने में महिला और पुरुष की भूमिका बराबर की होती है। ये गाड़ी के उन दो पहिए के समान होते हैं, जिसके बराबर न होने पर गाड़ी सीधी दिशा में आगे नहीं बढ़ सकती है। बात जब मानव अधिकारों की की जाती है तो केवल ही महिला व पुरुष समान अधिकार प्राप्त माने जाते हैं, लेकिन जब बात भारत वर्ष की, की जाती है तब अधिकार प्राप्त नारी का एक चेहरा उभरकर सामने आता है। कहा जाता है मनुस्मृति में भारतीय नारी को शक्ति स्वरूप समझा जाता था। वर्तमान समय में भी नवरात्रि के समय कन्या पूजन इसी तरफ संकेत करता है, मनुस्मृति में एक स्थान पर उल्लेख भी आया है। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" अर्थात् जहां नारियों की पूजा होती है वहां देवताओं का निवास होता है।

राधाकृष्णन के अनुसार– हिन्दू समाज में स्त्रियों का सम्मान व आदर प्राचीन काल से आध्यात्मिक व मर्यादायुक्त रहा है, उनके प्रति स्वाभाविक निष्ठा व श्रद्धा रही है और समुदाय में अनेक द्वारा किये जाने वाले योगदान का महत्व व गौरव रहा है। नारी सर्वशक्तिमान मानी गई है। विद्या, धन, शक्ति और सम्पत्ति का प्रतीक समझी गयी है। नारी मानव जाति की जननी और धात्री है व जीवन का स्रोत और सामाजिक व्यवस्था (जीवन) की धुरी है। पुरुष केवल यह मानता है, जब तक उसे पत्नी प्राप्त नहीं होती वह अपूर्ण रहता है। इसलिए वह पत्नी प्राप्त करता है और पूर्ण बनता है। वह परस्पर अपने कार्यों को करते हुए पुरुषोपयोगी कार्य करता है और स्त्री स्त्रियोचित कार्य को करती है। दोनों अपने अपने कार्यों को करते हुए भी अपूर्ण रहते हैं और मिलकर पूर्ण हो जाते हैं। एक मान्यता है कि पति पत्नी एक दूसरे के सर्वोत्तम मित्र होते हैं,मित्रता ही सब सम्बन्धों का सार है।

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक कई बड़े परिवर्तन हुए हैं। "महिला की भूमिका और स्थिति में दुनिया भर में आये और आ रहे बदलाव। "इन बदलाव ने महिला के जीवन और समाज में उनके दोयम दर्जे की बातों को पूरी तरह से बदल दिया है। ऋग्वेद के करीब पद स्वतंत्रता भी बेहद करीब थी। छठी सदी ईसा पूर्व से उनका वास्तविक संघर्ष प्रारम्भ हुआ और फिर ऋग्वेद भूमि की ओर तेजी से अग्रसर रही। ऐसी अनेक महिलाएं हैं जिन्होंने अपनी–अपनी योग्यता से प्रसिद्धि को प्राप्त किया, उनमें गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोषा, अहिल्या आदि प्रमुख हैं।

महिलाएं अपनी भूमिका में शक्ति का रूप समझी जाती हैं फिर भी वह प्रत्येक क्षेत्र में हिंसा की शिकार हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी अर्थात् जननी और जन्मभूमि दोनों स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। विभिन्न भारतीय ग्रन्थों वेदों, पुराणों, उपनिषदों, महाकाव्यों आदि में महिलाओं को एक तरफ देवी का स्थान प्राप्त है तो दूसरी तरफ सामाजिक उत्पीड़न एवं अत्याचार को सहती महिलाओं को भी देखा गया है। महिलाओं का जीवन रामायण, महाभारत में भी हिंसा प्रधान था, इसी काल में सीता, द्रोपदी, अहिल्या, आदि के साथ घोर अत्याचार किया गया समस्त

ग्रामीण सामुदायिक जीवन एवं कार्यशैली में आधुनिकीकरण के बढ़ते प्रचलन का प्रभाव

*गुंजन त्रिपाठी एवं ** (श्रीमती) सुषमा पाठक
*शोध छात्रा–समाजशास्त्र ** शोध पर्यवेक्षक आचार्य एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, अयोध्या
डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

शोध–सारांश

भारत गाँवो का देश है, कृषि यहाँ का मुख्य व्यवसाय रहा है, सरल जीवन की पहचान बनाये हुए गाँव भी अब नगरीय जीवनशैली के प्रभाव से प्रभावित हुए बिना नहीं बच सके है। जब कोई समाज पुरातन मूल्यों का परित्याग कर नवीन मूल्यों को आत्मसात करता है तो उसमें कहीं न कहीं आधुनिकीकरण की भूमिका अवश्य होती है। ग्रामीण जीवन मूल्यों का उपभोक्तावादी संस्कृति के माध्यम से जो प्रभाव परिलक्षित हो रहा है उसमें संचार साधनों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। यही कारण है कि ग्रामीण जनसंख्या अब नगरीय जनसंख्या से प्रभावित होकर प्राथमिक व्यवसाय में परिवर्तन के साथ-साथ नगरीय क्षेत्रों की ओर प्रवसन आधुनिकीकरण का ही परिणाम कहा जा सकता है।

शब्द संकेत- आत्मसात, प्रवसन, कृत्रिमता, प्रतिमान, अन्वेषण, गतिशीलता, सहभागिता, गत्यात्मकता, वैश्वीकरण, मनोवृत्तियाँ।

शोध पत्र

सामाजिक संरचना सामाजिक व्यवस्था के जाल के रूप में परस्पर व्यवस्थित स्वरूप यथा- प्रतिमानों, समितियों, संस्थाओं एवं मूल्यों के साथ मिलकर एक जाल का निर्माण करते हैं। जाल के धागे के रूप में जुड़ी ईकाइयाँ क्रमबद्ध रूप से सामाजिक संरचना की शक्ति को प्रदर्शित करती हैं। इसी प्रकार ग्रामीण सामाजिक संरचना भी कई ईकाइयों जैसे- विवाह, परिवार, वंश, गोत्र, नातेदारी, मूल्य, पद, जाति, धर्म तथा राजनैतिक एवं आर्थिक समूहों के वर्ग साथ मिलकर समाज के बाह्य स्वरूप को प्रकटकर सामाजिक संरचना बनाते हैं।

ग्रामीण सामाजिक संरचना में सम्मिलित सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक संस्थानों में वह सभी पक्ष समाहित हैं जो ग्रामीण समुदाय को अलग इकाई के रूप में परिलक्षित करता है। वर्तमान ग्रामीण समुदाय में भी स्तरीकृत समाज के दर्शन होते हैं। यहाँ भी विभिन्न व्यक्तियों के बीच विभिन्न आधारों पर उच्च एवं निम्न की स्पष्ट रेखा खींचते हुए दिखाई पड़ती है। ग्रामीण सामुदायिक जीवन सदा सादगी, सरल जीवन और प्रकृति के साथ निकटता का प्रतीक होता है। वहीं नगरीय संस्कृति में जटिलता, दिखावापन, कृत्रिमता एवं प्राकृतिक पर्यावरण के संयोजन के पोषक कहे जाते हैं। ग्रामीण समुदाय के विषय में मैकाइवर एवं पेज ने लिखा है कि "किसी छोटे या बड़े समूह के सदस्य एक साथ-साथ इस प्रकार रहते हैं कि वे किसी विशेष प्रकार के हित में ही भागीदार न होकर सामान्य जीवन की आधारभूत स्थितियों में भाग लेते हैं तो ऐसे समूह को समुदाय कहा जाता है।"

वर्तमान परिस्थिति में आधुनिकीकरण का प्रभाव मात्र नगरीय समाज तक सीमित न होकर ग्रामीण समुदाय की ओर अग्रसर है। ग्रामीण जीवन शैली के स्वभाव में भी अब परिवर्तन दिखाई पड़ने

5

The Role and Impact of Social Media on the Lives of Indian Women : A Sociological Analysis with special reference to the COVID-19 Pandemic Situation

Priya Singh* and Sushma Pathak**

The use of the internet has steadily increased among people of all ages and places since it was invented. With the advent of the COVID-19 outbreak, social media, which is an internet product, has become increasingly popular, especially among women who constitute half of the population. More and more women are starting to use social media platforms, so it is important for them to understand its role and impact on their lives and minimize its negative impacts. This paper aims to find the negative and positive impact of social media on women in India before and after the COVID-19 outbreak. This paper is based on secondary data and case studies. Authentic websites, articles, and research papers have been reviewed for writing this research

* Research Scholar, SRF in Sociology, Dr. Ram Manohar Lohia Avadh University, Ayodhya, Uttar Pradesh (India) E-mail: <priyasinghvj.03@gmail.com>
** Professor, Raja Mahan Girls P.G. College, Ayodhya, Uttar Pradesh (India) E-mail: <Smpathak90@gmail.com>

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2022 Page No. : 81-84

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महिला सशक्तिकरण : मुद्दे एवं चुनौतियाँ

-डॉ0 सुषमा पाठक, (एसो0 प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग)
राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, अयोध्या

-मीना श्रीवास्तव, शोधार्थी–समाजशास्त्र विभाग
डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या।

सारांश :-

महिला सशक्तिकरण वर्तमान समय का चर्चित विषय है। इसके माध्यम से न केवल समाज में व्याप्त कुरीतियों का अन्त हो रहा है। बल्कि महिलाओं का सामाजिक एवं आर्थिक विकास तीव्र गति से हो रहा है। महिलाओं में सर्वांगीण विकास हेतु केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने विभिन्न प्रकार के योजनाओं और संवैधानिक कानून का निर्माण किया है। यद्यपि सरकार ने महिलाओं का सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक स्तर उच्च करने हेतु शिक्षा को सर्वोपरि वरीयता प्रदान की है। आज के समय में महिलाएं विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सहभागिता को बढ़ाते हुए अपना नाम रोशन कर रही है। लेकिन आज भी महिलाओं विभिन्न चुनौतियों एवं मुद्दों का सामना करना पड़ रहा है। इसलिए महिलाओं को पूर्ण सशक्त करने के लिए सरकार को पूर्व बनाये गये कानूनों और योजनाओं का समय–समय पर सुधार करना चाहिए।

प्रस्तुत शोध पत्र में वर्तमान समय में महिलाओं की सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं की स्थिति जानने तथा उनके लिए सुझाव बताने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना :-

महिला सशक्तिकरण से अभिप्राय ऐसी शक्ति से है। जो महिलाओं को सामाजिक आर्थिक राजनैतिक और कानूनी रूप से सोचने समझने और जीने की स्वतंत्रता देती है। सशक्तिकरण का सम्बन्ध महिलाओं के जीवन के आत्मनिर्णय से है। सशक्तिकरण की प्रक्रिया समाज को पारंपरिक पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण के प्रति जागरूक करना है। महिला सशक्तिकरण भौतिक या आध्यात्मिक शारीरिक या मानसिक आन्तरिक या बाहरी सभी स्तरों पर महिलाओं में आत्मविश्वास जागृत करना है। सशक्तिकरण के द्वारा महिला अपने अंदर एक चेतना संवेदनशीलता सकारात्मक छवि, रचनात्मक पूर्णता महसूस करती है।

पैमिनी सुराई के अनुसार– "महिला सशक्तिरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा समाज में विकास की प्रक्रिया में राजनीतिक संस्थाओं के द्वारा महिलाओं को पुरुषों के बराबर मान्यता दी जाती है।

लीला मोहन के अनुसार– "महिला सशक्तिकरण निडरता सम्मान और जागरूकता तीनों शब्द महिला सशक्तिरण में सहायक है महिला सशक्तिकरण का उद्देश्य महिलाओं की प्रगति और उनमें आत्मविश्वास का

त्रिपिटक : पूर्वकृत पुनर्लेखन परिप्रेक्ष्य

डॉ० सुषमा पाठक
एसो० प्रोफेसर, … पी०जी० कालेज, फैजाबाद (अयोध्या)।

डॉ० महेन्द्र पाठक
एसो० प्रोफेसर, का०सु० साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या।

ई०पू० पाँचवीं–छठी शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं–बारहवीं ई० तक का काल बौद्धधर्म एवं दर्शन का ऐतिहासिक काल स्वीकार किया जाता है। राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से मगध–शासक बिम्बिसार से लेकर बंगाल के पालवंश तक बौद्धधर्म का इतिहास उपलब्ध है। भगवान बुद्ध एवं उनके धर्म की जन्म–भूमि प्राच्य या पूर्व देश था जिसका पश्चिमी छोर आधुनिक प्रयाग अथवा काशी स्वीकार किया जाता है। भगवान बुद्ध ने अपने सद्धर्म का उपदेश प्रधानतया मगध एवं कोशल के जनपदों में तथा शाक्य, लिच्छवि एवं मल्ल आदि गणराज्यों में जनभाषा में दिया था। यह जनभाषा 'मागधी' थी जो कालान्तर में 'पालि' संज्ञा से अभिहित की गयी। इस प्रकार स्पष्ट है कि बौद्धधर्म का प्राचीनतम साहित्य 'पालि' भाषा में ही लिपिबद्ध किया गया। इसे पालि आगम साहित्य संज्ञा से अभिहित किया जाता है। आप्टे के मतानुसार आगम का अभिप्राय है–परम्परागत सिद्धान्त, उपदेश, धार्मिक लेख या धर्म ग्रन्थ। भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के उपरान्त उनके उपदेशों का संकलन किया गया, अतः आगम शब्द का उपर्युक्त अर्थ सर्वथा उचित प्रतीत होता है। पालि आगम थेरवादिन संज्ञक बौद्धों के एक वर्ग का आगम है। पालि साहित्य की उद्भव स्थली यद्यपि भारत भूमि है तथापि इसके सम्यक् अध्ययन के निमित्त विविध शाखाओं–प्रशाखाओं का भी उपयोग करना होगा जो संस्कृत, पालि, तिब्बती एवं चीनी आदि भाषाओं में सिंहल एवं बौद्धमतानुयायी देशों में पुष्पित–पल्लवित हुई हैं। लंका के शासक वट्टगामिनी के काल में बौद्धधर्म के परम्परागत सिद्धान्त या उपदेश ताम्र पत्रों पर अंकित कर चिरस्थायी कर दिया गया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रथम शताब्दी ई० में बुद्धवचन, जिसे भिक्षु महेन्द्र अशोक के शासनकाल में लंका ले गये थे, पूर्णतः लिपिबद्ध हो चुका था। ये बुद्धवचन जिन ग्रन्थ समूहों में प्राप्त होते हैं, उन्हें 'त्रिपिटक' या पालि भाषा में तिपिटक कहा जाता है। सम्पूर्ण त्रिपिटक पालि भाषा में अद्यावधि उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त संस्कृत भाषा में भी त्रिपिटकों की रचना की गयी थी, परन्तु दैवदुर्विपाकवश वे सम्प्रति अनुपलब्ध हैं। संस्कृत भाषा के त्रिपिटकों के अस्तित्व का परिज्ञान प्रधानतया उनके चीनी एवं तिब्बती भाषा में अनूदित अंशों से ही होता है। संस्कृत एवं पालि निकायों में पर्याप्त समरूपता परिलक्षित होती है, यथा–दीर्घागम, मध्यमागम एवं एकोत्तरागम क्रमशः दीघ, मज्झिम एवं अंगुत्तर से साम्य रखते हैं। सम्प्रति बौद्ध साहित्य में तिब्बती एवं चीनी भाषा के अनूदित ग्रन्थों की प्रचुरता दिखायी पड़ती है।

वर्तमान भारत में समान नागरिक संहिता की प्रासंगिकता एवं महत्व - एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ सुषमा पाठक
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजामोहन गर्ल्स पीजी कॉलिज, अयोध्या , उत्तर प्रदेश।

Article Info
Volume 4, Issue 3
Page Number : 155-160
Publication Issue :
May-June-2021
Article History
Accepted : 01 June 2021
Published : 15 June 2021

सारांश– भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है तथा यहाँ समान धर्मनिरपेक्ष अचार संहिता का होना अति आवश्यक है। शिक्षा में वृद्धि , जागरूकता ,सद्भावना ,सामाजिक एवं धार्मिक मुद्दों पर उचित एवं वैध चर्चा करके हम समान नागरिक संहिता को वास्तव में सफल बना सकते है एवं समानता, एकता तथा एकीकरण की भावना का विकास कर राष्ट्र के विकास में तीव्रता ला सकते है ।

मुख्य शब्द– नागरिक, संहिता, समाजशास्त्रीय, भारत, धर्मनिरपेक्ष, राष्ट्र /

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र हैं अर्थात यहाँ किसी धर्म में भेदभाव ना होकर सभी धर्म एक सामान हैं । धर्मनिरपेक्ष भारत को एक समान नागरिक संहिता की आवश्यकता हैं । भारतीय समाज निरंतर परिवर्तित हो रहा हैं एवं जटिलता की तरफ उन्मुख हैं अतः देश के संचालन में सहूलियत लाने के लिए यह आवश्यक हैं की व्यक्तिगत कानून में समानता लायी जाये। भारत के संविधान को निर्मित हुए आज बहत्तर वर्ष हो गए है किन्तु संविधान के भाग चार के अनुच्छेद 44 जिसमें यह उल्लेख हैं की "नागरिकों के लिए देश के प्रत्येक क्षेत्र में एक समान अधिकार हो " आज भी यथार्थ नहीं हो सका । यह शोधपत्र वर्तमान भारत में समान नागरिक संहिता की प्रासंगिकता एवं महत्व के साथ-साथ इसके इतिहास एवं इसके क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण करता हैं । इस शोधपत्र के लिए विभिन्न प्रमाणित साहित्य , शोधपत्रों , समाचार लेखों एवं पुस्तकों का गहन अध्ययन किया गया हैं ।

"आइए हम अवसरों से युक्त एक ऐसे देश का निर्माण करें, जहां कानून के सामने हर कोई समान हो और जहां खेल के नियम न्यायसंगत, पारदर्शी और सभी के लिए समान हों।"

– वलोडिमिर ज़ेलेंस्की

समानता एक देश के प्रगति का प्रतीक हैं अर्थात जब एक देश, जात-पात,धर्म–समुदाय अमीरी–गरीबी से ऊपर उठ कर अपने नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करता हैं तभी वह प्रगति एवं उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र हैं अर्थात यह किसी भी धर्म में भेदभाव नहीं करता एवं धार्मिक संस्थाओं के आधार पर निर्णय नहीं लेता, ना ही धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करता हैं । भारत विश्व का द्वितीय सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश हैं एवं यहाँ अत्यधिक

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

Action Plan for development of village Govindpura, Bengaluru

Priya Singh (*Author*)
JRF Department of Sociology,
Dr. RML Avadh University,
Ayodhya, Uttar Pradesh, India
priyasinghsy.01@gmail.com

Dr. Sushma Pathak (*Author*)
Associate Professor Department of Sociology,
Raja Mohan Girls PG College,
Ayodhya, Uttar Pradesh, India

Abstract— The villages in India face major challenges due to lack of awareness about various government schemes. The accessibility of these schemes to the end beneficiary is also a challenge posed by the current political and social structure in remote areas. Govindpura, Bangalore is a village facing such challenges that hinder its development. In this paper, we tried to identify the key drivers that hinder the growth of the village through the analysis of the demographic and economic data presented by Unnat Bharat Abhiyan ERP portal. The village was assessed based on various socio-economic factors such as education, health, etc. After analysis of the data, we suggested some schemes or programs for different sectors of the village economy. These schemes can be implemented by Government entities to provide a better quality of life in the village. We observed that more focus is required in spreading awareness about such schemes. Three key elements identified to bridge the gap of information asymmetry are: bridging the gap between government and people, effective Governance, and core health and infrastructure improvement strategies in areas like healthcare, irrigation facilities, etc. To enable proper implementation of these services, a proper funding and spending system needs to be developed, approved and implemented to ensure that the funds are sufficiently allocated for the different development domains. Funding options need to be considered carefully to ensure that: Transparency and accountability is maintained in allocation and utilization of funds, adequate funds are available for the implementation of the project, and utilization of allocated funds is monitored. The paper concludes with the observation that government schemes need to be properly managed and monitored at the village level. Technology can be used to track the life cycle of such schemes. Rural development is at the core of India's progress.

Keywords— rural development; development plan; government schemes awareness; rural data analysis

I. Introduction

Development of villages is the backbone for the long term growth and development of India. Rural development can't be achieved with a single approach, one needs to consider all the aspects, i. e., socio-economic, culture, education, technology, infrastructure, etc [1]. The need of the hour is the proper implementation of the rural development schemes proposed by the government of India and NITI AAYOG [2]. Participatory Rural Appraisal is a good tool for rural development. This method helps rural people take ownership of their development using analysis of the rural data and conditions [3]. The government can also be involved in facilitating the implementation of action plan post analysis. The rural development has gained world-wide attention, especially for developing countries. India has huge rural population and many people in rural India depend on agriculture. So proper development plan along with role of government schemes is the need of the hour [4]. There has been case studies on sustainable rural development. One of them is that of Yanamadala village [5]. We need similar case studies to create a sample of action plan for rural development. Various studies have focused on different aspects of rural development on case by case basis. Analysis of rural infrastructure in 16 Indian states and their impact on rural development was studied [6]. The complex socio-economic dynamics of electricity access in rural areas can be a deciding factor in rural development [7]. The scope of tourism for rural development can be very significant [8]. In this study we tried to analyse different kind of data like demographic data, land and agriculture data, basic information data, etc. Hence we provide a comprehensive analysis and action plan for development of the village Govindpura using the Unnat Bharat Abhiyan ERP data.

II. Data and Methodology

A. Data Source

The data of Govindpura village was collected using the Unnat Bharat Abhiyan Enterprise Resource Planning interface. The portal used to access the data is:

https://unnatbharatabhiyan.gov.in/erp/

The data was obtained using the institution – IIT Delhi, which is a participating institution in the program.

B. Analysis Report

1) Demographic Analysis

- Demographic Profile – Total Population of the village is 548. There are 127 households in the village (4

IJAS, JAN, 2014, Vol. 8, No. 1, 89-93 ISSN 0974-0503;Reg. No. UPBIL/2007/23350

बौद्ध साहित्य में प्रतिबिम्बित महिला प्रस्थिति

सुषमा पाठक*

छठीं शताब्दी ई-पू. एक तरफ नगरीकरण तो दूसरी तरफ धार्मिक एवं सामाजिक परिष्कारों के लिये प्रसिद्ध है। आचार्य पाण्डेय जी ने इन्हीं विशेषताओं के कारण इसे 'अभिसम्बोधि युग' कहा है।[1] इस कालखण्ड में सामान्य रूप से जीवन का प्रत्येक क्षेत्र परिष्कार और परिवर्तन के लिये उद्यत प्रतीत होता है। भौतिकवादी विचारकों के अनुसार मानव चेतना के परिवर्तनों का कारण सामाजिक धरातल पर खोजना चाहिये।[2] बौद्ध देशना में समसामयिक चिन्तन और समाज का योगदान नकारा नहीं जा सकता है। प्रो. इन्द्र ने बौद्ध देशना को ब्राह्मणवाद का विरोधी और समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रभावित करने वाला कहा है।[3] सामान्य रूप से कह सकते हैं कि बुद्ध देव और मौर्य सम्राट अशोक के कालखण्ड में महिलाओं की प्रस्थिति में प्रशंसनीय सुधार हुआ। बौद्ध इतिहास लेखन का ज्ञान महिलाओं की प्रस्थिति को गंभीर चिन्तन का विषय बना देता है। बौद्ध साहित्य में महिलाओं से सम्बन्धित परस्पर विरोधी उद्धरण प्राप्त होते है।[4] त्रिपिटक से हमें विस्तृत और परिणाम सूचक वृत्तान्त प्राप्त होते है, जो घटनाओं के न्यूनाधिक प्रत्यक्ष अभिलेख है।[5] जबकि बुद्ध देव की जीवनियों में इतिवृत्त को आख्यान में परिवर्तित कर दिया गया है। विवेच्यकाल खण्ड में भारतीय समाज को नवीन प्रतिरोधों, चुनौतियों और परिवर्तनों का सामना करना पड़ा।[6] सामाजिक परिवर्तन के दुरूह मार्ग में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होने वाले व्यवहार और प्रतिरोध सबसे बड़ी चुनौती थे। इस प्रकार रूढ़वादिता और संकुचित दृष्टिकोण को देखते हुये सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु गौतम बुद्ध को कम समय मिला। उन्होंने महिला और पुरूषों के प्रति एक सीमा तक समभाव रखा।[7] बौद्ध परिवार में स्त्री पुरूष सन्तानियों में कोई भेद नहीं परिलक्षित होता है। जैसे समृद्ध महासुवन ने एक पवित्र वृक्ष के नीचे कहा कि पुत्र या पुत्री प्राप्त होने पर वह कृतज्ञता ज्ञापित करेगा।[8]

जातक ग्रंथों में महिलाओं की निम्न प्रस्थिति के द्योतक प्रचुर सन्दर्भ हैं जैसे एक शिष्य अपनी पत्नी के दोष से चिन्तित था, तब आचार्य ने कहा –

यथा नदी च पन्थो च पाणगारं सभा पपा।
एवं लोकित्थियो नाम नास कुप्पन्ति पण्डिता।।[9]

अर्थात–जैसे नदी, पथ, शराबखाने, धर्मशालायें और पनशाला आदि सबके लिये होती है, पण्डित व्यक्ति यह जानकर उसके विषय में क्रोध नहीं करते। यहाँ स्पष्ट है कि महिला को सार्वजनिक उपभोग की वस्तु मानकर जातक युग का प्रधान व्यक्ति समाज को पुनः आदिम युग में पहुंचाने के लिये प्रयत्नशील था।[10] इसके विपरीत अन्यत्र काशिराज ब्रह्मदत्त और पसेनदि को स्त्री या पुरूष सन्तति के लिये इच्छा व्यक्त करते पाते है।[11] गौतम बुद्ध स्त्री सन्तति को पुरूष सन्तति से श्रेष्ठ मानते थे।[12] इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन की

*एसोसियेट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजा मोहन गर्ल्स पी. जी. कालेज, फैजाबाद।

ISSN 0974-0943 Reg. No. UPBIL/2007/1335

IJAS, JUNE 2013, Vol. 7, No. 2, 68-74

भूमिका- अवधारणा, प्रकृति एवं समाजशास्त्रीय महत्त्व

सुषमा पाठक*

प्रस्थिति के ही समान राल्फ लिण्टन महोदय ने भूमिका का गम्भीर अध्ययन किया है। इनका विचार है कि भूमिका और प्रस्थिति को अलग नहीं किया जा सकता है, यदि इनके बीच कोई विभेद की रेखा खींची जाती है तो ऐसी रेखा कभी भी शिक्षाविदों के दृष्टिकोण से उचित नहीं कही जा सकती है। व्यावहारिक दृष्टि से इन दोनों शब्दों में कोई विभाजन सम्बन्धी रेखा खींचना सम्भव नहीं है।[1] आक्सफोर्ड शब्दकोश में भूमिका का अभिप्राय अंग्रेजी का फंक्शन शब्द अभिव्यक्त करता है। सामान्य रूप में जिन कर्तव्यों की पूर्ति के लिए किसी व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है, वे कर्तव्य ही उसकी भूमिका है। नाइमैन और ह्यूज[2] का मत है कि भूमिका एक व्यापक अवधारणा है। ऐतिहासिक दृष्टि से 1900 ई. से लेकर 1950 ई. तक सामाजिक भूमिका की जो परिभाषायें थीं उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- 1. व्यक्तित्व विकास की गत्यात्मकता के सन्दर्भ में भूमिका, 2. सम्पूर्ण समाज के सन्दर्भ में भूमिका की कार्यात्मक परिभाषा, 3. किसी विशेष समुदाय/समूह के सन्दर्भ में भूमिका की परिभाषा।

''भूमिका'' का तात्पर्य उन सभी कार्यों से है जिनको विभिन्न प्रस्थितियों के अनुसार व्यक्ति को पूरा करने की आशा की जाती है। समाज की प्रथाओं, परम्पराओं, आदर्श नियमों तथा कानून के अनुसार प्रत्येक प्रस्थिति से सम्बन्धित कुछ ऐसे कार्य अथवा दायित्व भी होते हैं जिनको समाज द्वारा व्यक्ति से पूरा करने की आशा की जाती है। इन्हीं को संक्षेप में प्रस्थिति की भूमिका कहते हैं।

प्रस्थिति में परिवर्तन के साथ भूमिका भी परिवर्तित होती रहती है। हेरालाम्बोस[3] ने भूमिका का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है :- ''सामाजिक कार्य व्यवहार को नियमित और संगठित करते है। विशेषकर भूमिका किन्हीं कार्यों को सम्पन्न करने में साधन का काम करती है। संस्कृति के एक पहलू के रूप में व्यवस्थित समाज में भूमिकाएं मार्ग दर्शन करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करती है।'' सामाजिक भूमिका व्यवहार को नियंत्रित और संगठित करती है। प्रत्येक भूमिका के साथ कुछ निश्चित मापदण्ड जुड़े होते हैं। सामान्य रूप में हम कह सकते है-

प्रस्थिति = भूमिका + मानदण्ड (मूल्य + नियम + विश्वास)

किंग्सले डविस[4] लिखते है, ''भूमिका मानदण्ड का व्यावहारिक पक्ष है, भूमिका वह कार्य है जिसे व्यक्ति अपनी प्रस्थिति के अनुरूप सम्पन्न करता है।'' राल्फ लिण्टन[5] के शब्दों में, भूमिका प्रस्थिति के गत्यात्मक पक्ष का प्रतिनिधित्व करती है। व्यक्ति को एक सामाजिक दृष्टि से एक प्रस्थिति प्राप्त होतीहै वह अन्य प्रस्थितियों के सम्बन्ध में उक्त प्रस्थिति को धारण करता है। जब व्यक्ति निर्धारित प्रस्थिति के लिए अपेक्षित कर्तव्यों का

*रीडर : समाजशास्त्र विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी. जी. कालेज, फैजाबाद।

UJAS, JUNE 2012, Vol. 6, No. 2, 116-122 ISSN 0974-0503; Reg. No. UPBIL/2007/23350

प्रस्थिति - अवधारणा एवं विशेषतायें

सुषमा पाठक*

समाज एक सार्वभौमिक अवधारणा है, जो मानव में ही नहीं वरन् पशु एवं पक्षियों के बीच भी विद्यमान है। मानव समाज में स्तरीकरण की व्यवस्था का मूल उद्देश्य सामाजिक संगठन की परिकल्पना होती है। इसके लिए एक अनिवार्य शर्त यह होती है कि समाज में भिन्न-भिन्न योग्यता एवं कुशलता के व्यक्ति अपने अनुरूप पदों पर रहकर कार्य करें और अपने पद से सम्बन्धित पदों पर रहकर कार्य करें और अपने पद से सम्बन्धित उन दायित्वों को पूरा करें, जिनकी समाज उनसे आशा करता है। किसी भी समाज में सभी व्यक्तियों को मिलने वाले अधिकार और कर्तव्य एक जैसे नहीं होते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में एक ही व्यक्ति की स्थिति एक-दूसरे से भिन्न देखने को मिलती है। हम जब कभी व्यक्तियों से किसी सभा, सम्मेलन, सेमिनार या बैठक में मिलते हैं तो इस परिचय में सामान्यतया यह कहा जाता है कि 'मैं इस विश्वविद्यालय में पढ़ता हूँ' या 'उस कार्यालय में काम करता हूँ'। गांवों में इसी तरह से परिचय के अवसर पर हम किसी नातेदार से अपना सम्बन्ध बताते हैं उदाहरण स्वरूप, 'आपके गांव में यह जो आदमी रहता है, मैं उसका मामा होता हूँ।' सामान्यतया दूसरों के साथ हमारा परिचय एक धन्धे के साथ होता है, समुदाय के माध्यम से होता है या किसी नातेदारी द्वारा होता यहाँ धन्धा, व्यवसाय, समुदाय की सदस्यता, नातेदार आदि प्रस्थितियाँ हैं। वास्तविकता यह है कि हम सभी एक ही समय में अनेकानेक प्रस्थितियों का निर्वाह करते है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी एक या अनेक प्रस्थितियों के अनुसार ही एक-दूसरे से भिन्न उन बहुत से दायित्वों को पूरा करना होता है, जिनकी उससे पूरा करने की आशा की जाती है। इसका तात्पर्य है कि एक अधिकारी, कर्मचारी, मालिक, श्रमिक, नेता, पिता, पुत्र, माँ, बहिन अथवा पुत्री आदि के रूप में समाज व्यक्ति से जिन कार्यों को पूरा करने की आशा करता है, उनकी प्रकृति एक-दूसरे से बहुत भिन्न होती है। इस प्रकार प्रत्येक प्रस्थिति से जुड़े हुये कार्यों अथवा दायित्वों को ही हम 'भूमिका' कहते है। प्रस्थिति और भूमिका का सन्तुलन ही सामाजिक जीवन को व्यवस्थित और गतिशील बनाता है।

प्रस्थिति शब्द के अंग्रेजी स्थानान्तर स्टेटूस (STATUS) का प्रचलन समाज विज्ञान में हाब्स, लॉक एवं स्मिथ के द्वारा किया गया। इन विद्वानों ने यूरोपीय सामाजिक दर्शन के विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में इस शब्द का उपयोग किया है। इनका विचार था कि समाज के शाश्वत अस्तित्व एवं इस तथ्य में कि कुछ व्यक्तियों को दूसरे की अपेक्षा कृत अधिक अधिकार एवं सुविधायें प्राप्त हैं, इसमें सतत् सम्बन्ध है।'

* रीडर, समाजशास्त्र, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी.कालेज, फैजाबाद।

UJAS, JUNE 2010, Vol. 4, No. 2, 150-153

पंचायतीराज और महिलाएँ

सुषमा पाठक*

बीसवीं शताब्दी आधुनिकीकरण, विऔपनिवेशीकरण और प्रजातंत्र की शताब्दी के रूप प्रसिद्ध है। भारत की आजादी विश्व इतिहास की एक बड़ी घटना रही है और इसके प्रजातंत्र की सफलता मानवता की स्थायी निधियों में से एक है। जब फ्रांस की क्रांति हुई थी तो वहाँ के नागरिकों को दो श्रेणियों में बाँटा गया था, प्रथम – वे जो मतदान कर सकते थे और द्वितीय– वे जो मतदान नहीं कर सकते। स्त्रियों को इसी दूसरी श्रेणी में शामिल किया गया था। भारत को एक लंबे संघर्ष के बाद जब आजादी मिली तो उसने बिना किसी लैंगिग भेदभाव के सार्वजनिक वयस्क मताधिकार दिया। प्रसिद्ध संविधानवेत्ता ग्रेनविल आस्टिन के अनुसार यह भारतीय प्रजातंत्र की सफलता का शंखनाद था।[1]

भारत की संविधान सभा में नौ महिलाएँ थीं।[2] जब राष्ट्रध्वज को समर्पित करने की बारी आयी तो भारतीय जनता की ओर से श्रीमती हंसा मेहता ने इसे राष्ट्रपति को सौंपा था।[3] इस प्रकार भारत के संविधान निर्माण या इस से पहले भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में स्त्रियों का स्वर[4] कदापि दबा नहीं था। दक्षिण एशिया के इतिहास को यह एक बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है। दक्षिण एशिया की संसदीय राजनीति में महिलाओं की संतोषजनक उपस्थिति व्यक्तिगत स्तर पर बनी रही है- सिरीमावो भंडार नायके, श्रीमती इंदिरा गांधी और शेख हसीना –इसकी ज्वलंत उदाहरण हैं। फिर भी ये महिलाएँ बड़े राजनीतिक परिवारों की पृष्ठभूमि से सत्ता के सोपान चढ़ने वाली थीं। वास्तविक रुप से, तृणमूल स्तर पर नीतिनिर्णयन, विकास प्रक्रिया एवं सहभागिता के आधार पर महिलाओं की उपलब्धि पंचायती राज में शामिल होना रहा है। भारतीय संविधान वास्तव में एक सामाजिक दस्तावेज है, जिसमें उन स्वप्नों को शामिल किया गया है जो स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान हमारे नेताओं ने भारत के भविष्य को लेकर देखे थे। उनमें से कुछ को संपूर्ण या आंशिक रुप[5] से पूरा करने की घोषणा पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने 'नियति से मिलाप' नामक ऐतिहासिक भाषण में की थी। जब देश को आजादी मिली थी, तो देश काफी गरीब था। सारी आकांक्षाएँ तुरंत नहीं पूरी की जा सकती थी। अतः इन्हें भविष्य की कार्ययोजना के रूप में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के रुप में रख दिया गया। पंचायती राज उन्हीं में एक था। भारत के संविधान के अनुच्छेद 40 में कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रुप में कार्य करने के योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।[6] पंचायतीराज संस्थाओं के द्वारा 1952 में सामुदायिक विकास की जो परियोजना शुरु की गयी थी, उसे बीच में ही असफल हो जाना पड़ा। फलस्वरुप संवैधानिक स्तर पर और वास्तविक पहल को संविधान (73 वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992 के द्वारा शुरु किया गया। एक त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली में महिलाओं को 33% आरक्षण दिया गया। इसके पश्चात महिलाओं ने पीछे मुड़कर नहीं देखा है। प्रारंभ में इस प्रयोग को लेकर जो आशंकाएँ जाहिर की गयी थीं सम्प्रति वे निर्मूल्य साबित हुई हैं।

पंचायती राज संस्थाओं को भारत के पुनर्निर्माण के एक प्रमुख औजार के रुप में देखा जा रहा है।[7] इस समय 28.18 लाख निर्वाचित पंचायत जनप्रतिनिधियों में 1014480 के आस-पास महिलाओं

*एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजा मोहन गर्ल्स पी. जी. कालेज, फैजाबाद।

ISSN 0974-0503 ; Reg. No. UPBIL/2007/23350

U.A.S. Jan. 2010, Vol. 4, No. 1, 107-114 ISSN 0974-0503
Reg. No. UPBIL/2007/23350

मानवाधिकार एवं महिला सशक्तीकरण

सुषमा पाठक* एवम् महेन्द्र पाठक**

विधाता द्वारा सृजित सृष्टि में मानव मात्र इसलिए महान नहीं है कि वह सोचने और समझने की क्षमता रखता है, अपितु इसलिए है कि उसने अपने मानवीय मूल्यों को युगों के प्रवाह में सुरक्षित रखा है। अपनी नैसर्गिक प्रतिभा को उसने सहजीवी मानव के प्रति सम्मान एवं सहजीवन को बढ़ाने में लगाया है, मानव इसीलिए सुन्दर है। हमारे समाज एवं संस्कृति में कतिपय आहरणीय एवं शाश्वत अधिकारों/कर्तव्यों का प्रावधान किया गया है, इन्हें, ही मानवाधिकार संज्ञा से अभिहित किया जाता है[1]। तकनीकी दृष्टि से मानवाधिकार, वे अधिकार हैं जिनका मानव मात्र के लिए उपलब्ध होना अपेक्षित है। वस्तुत: सामाजिक जीवन की वह दशा, जिसमें मानव को समाज द्वारा अनुमन्य तथा विधि सम्मत कार्यों को सम्पन्न करने की स्वतंत्रता हो, मानवाधिकार कहलाती है[2]।

विश्व के आदिम समाजों में एक पदानुक्रम की व्यवस्था विद्यमान थी। आदिम समाज में मानव को उसके मूल्यों के साथ ही स्वीकार किया जाता था। मानवाधिकार मानव के नैसर्गिक अधिकारों से उदभूत प्रतीत होते है। नैसर्गिक या प्राकृतिक अधिकार प्राकृतिक कानून से सम्बन्धित है, जिसका गंभीर विवेचन एफ0 कैस्टिलबर्ग ने नेचुरल राइट्स एण्ड ह्यूमन राइट्स में किया है।[3] हम चाहे वैदिक जनो या प्राचीन 'मय' (मैक्सिको एवं पेरू) सभ्यता का विश्लेषण करें, सर्वत्र मानव को पूर्ण प्रतिष्ठा उपलब्ध कराने के सन्दर्भ प्राप्त होते है। अद्यतन बहुप्रचारित मानवाधिकार एक अर्वाचीन अवधारणा है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह पुरातन एवं अपेक्षाकृत अधिक उदात्त रहीं है, परन्तु प्रचलित इस रूप में नहीं रही है। ऋग्वेद में वर्णित 'कृण्वन्तों विश्वं हि आर्यम् एवं साहित्य में सुरक्षित सम्भूय समुत्थान[4], सह नौ भुनक्तु... तथा सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामय:। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित दुख भाग भवेत् आदि, इसकी पुष्टि करते है।

प्रकृति की सम्पूर्ण सृजनात्मकता और अलौकिक चेतना का मूर्त रूप नारी है। जगत में जो कुछ भी दृश्य है, उसे सवाँरने और उसकी उपस्थिति को कमनीय, सौनदर्यपरक और प्राणि हितार्थ बनाने में जो अदृश्य चेतना कार्य करती है, वह नारी चेतना ही है। वैदिक समाज में नारी को पुरूषों के समकक्ष अधिकार प्राप्त

* रीडर, समाजशास्त्र, राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, फैजाबाद। ** रीडर, प्रा0मा0 इति0, का0सु0साकेत स्नात.महाविद्यालय, अयोध्या।

UJAS, JUNE 2009, Vol. 3, No. 2, 162-166

मादक द्रव्य व्यसन और युवा

सुषमा पाठक*

वर्षों से प्रायः सुनने में आता है कि युवा पीढ़ी बिगड़ती जा रही है। सभ्यता और संस्कृति के पाठक जानते हैं कि प्रत्येक युवा पीढ़ी आगामी युग की नींव डाल रही होती है, जिसे हमारा समाज सहज ही पचा नहीं पाता है, अतएव युवा वर्ग को बिगड़ैल कह देता है। कदाचित् गौतम बुद्ध, मोहनदास करम चन्द गाँधी, सरदार भगत सिंह और सुभाष चन्द्र बोस को गिनती भी ऐसी ही युवा पीढ़ी में की जाती रही होगी, जिन्होंने भारत ही नहीं अपितु विश्व इतिहास की दिशा और दशा बदल दी है। यह विचारणीय है कि आज की युवा पीढ़ी क्या रचनात्मक दृष्टि से बिगड़ैल होने की क्षमता रखती है ? जबरदस्त प्रतियोगिता के युग में कामयाबी को भारी कीमत न चुका पाने वाली युवा पीढ़ी के बारे में जवाब होगा – नहीं।

बेरोजगारी, हताशा, कुंठा, बाजार और समाज के दबाव को वह सहन नहीं कर पाती है, परिणाम स्वरूप मादक द्रव्यों की शरण में स्वयं को छोड़ देती है। यह अपनी मनोदैहिक चेष्टाओं के द्वारा स्वयं को 'सजदोही' दर्शाना चाहती है। यहीं से जटिल समाज की अभिव्यक्ति शुरू होती है। विगत पचास वर्षों के तकनीकी विकास ने अपने निर्माता मनुष्य को अनुगामी (पिछले चलने वाला) बना दिया है, इस प्रकार प्राथमिक सम्बन्ध लुप्त होते जा रहे हैं, तकनीकी से जीवन की गति का साम्य जर्जर होता जा रहा है और युवा पीढ़ी जीवन की चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने के लिये ऐसी औषधियों की गुलाम बनती जा रही है, जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होते हुए भी उन्हें सक्रिय और चौकन्ना रखती हैं। जीवन की जटिलताओं के कारण मादक द्रव्यों के सेवन की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ रही है क्षेत्रीय स्तर पर नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इनका उत्पादन और वितरण सत्ता के गलियारों और बड़े शक्ति केन्द्रों द्वारा नियंत्रित और विकसित होता है। औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण तथा सांस्कृतिक मूल्यों के क्षरण ने जीवन के अर्थ को बदल दिया है। वैश्विक स्तर पर यूरोप झिलमिल सितारों का महाद्वीप बन गया है, इसके उप उत्पाद के रूप में उसे अपने पारिवारिक मूल्यों से महरूम होना पड़ा है। हमारा भारत देश विकास के विशुल्क वातावरण से गुजर रहा है, इस विकास की संवाहक युवा पीढ़ी है। इस पीढ़ी की असीम ऊर्जा का सदुपयोग नीति नियामकों और शक्ति केन्द्रों द्वारा नहीं होगा तो कुंठा जन्म लेगी, मादक द्रव्यों के प्रति आकर्षण बढ़ेगा और राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण कीमत चुकानी पड़ेगी। सामान्यतया मादक द्रव्य का तात्पर्य उन सभी द्रव्यों पदार्थों एवं औषधियों से लिया जाता है, जिनके सेवन से व्यक्ति नशा, उत्तेजना, सुख, प्रसन्नता और ऊर्जा की अनुभूति करता है। इन पदार्थों या औषधियों का एक बार सेवन, निरन्तर सेवन के लिये प्रेरित करता है। वस्तुतः व्यसन एक ऐसी दशा है, जो व्यक्ति (सेवनकर्ता) को विशेष व्यवहार या वस्तु के सेवन पर इतना आश्रित कर देती है कि वह कायिक एवं मानसिक दृष्टि से जीवन यापन हेतु इसे आवश्यक समझने लगता है। श्रीराम आहूजा के अनुसार 'व्यसन' शब्द शारीरिक निर्भरता दर्शाता है। अतएव व्यसन वह स्थिति है जिसमें शरीर को अपना कार्य संचालित करने के लिये द्रव्य का निरन्तर सेवन

* रीडर : समाजशास्त्र विभाग-राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कालेज, फैजाबाद।

ISSN 0974-0503 ; Reg. No. UPBIL/2007/23350

HUMANITIES AND DEVELOPMENT
A JOURNAL OF HUMANITIES, SOCIAL SCIENCES AND DEVELOPMENT
Vol. 1, No. 1, July-December, 2007

योजनागत जनजातीय विकास कार्यक्रम एवं उनका प्रभाव : एक मूल्यांकन

– डॉ. सुषमा पाठक* एवं डॉ. योगेन्द्र प्रसाद त्रिपाठी**

भारत भिन्नताओं से युक्त एक विशाल जनसंख्या वाला देश है। यहाँ समाज में प्रचलित-आदिवासी, वनजाति, पर्वतावासी, आदिम जाति एवं जनजाति इसी भिन्नता का अपरिहार्य अंग है। 1981 की जनगणना के अनुसार इनका सांख्यिकीय प्रतिशत 7.9 था, जो अद्यतन 2001 में लगभग 8.4 हो गया है।[1] इन आँकड़ों के आधार पर सहज ही कहा जा सकता है कि जनसंख्या के आधार पर अफ्रीका के उपरान्त भारत दूसरा ऐसा देश है, जहाँ आज भी आदिवासी सर्वाधिक निवास करते हैं। यह रोचक परन्तु विचारणीय बिन्दु है कि मानवशास्त्री, समाजशास्त्री, सामाजिक कार्यकर्ता, प्रशासक या अन्य लोग जो जनजातियों की समस्याओं से सैद्धान्तिक या व्यवहारिक रूप से जुड़े रहे, जनजातीय अवधारणा एवं परिभाषा के सम्बन्ध में लम्बे अन्तराल तक मतैक्य नहीं स्थापित कर पाये। यही कारण है कि 1917-1931 ई. तक की जनगणना तक जनजाति के अभिज्ञान नामकरण में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है।[2] **इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया** में जनजातियों को विकास के आदिम अथवा बर्बर आचरण में ऐसा समूह कहा गया है, जो एक मुखिया की सत्ता स्वीकार करता हो तथा सामान्यतया अपना एक पूर्वज स्वीकार करता हो। 1961 ई. में डी. एन. मजूमदार के अनुसार—आदर्श रूप में जनजातीय समाज आकार में छोटे, अपने सामाजिक विधिक तथा राजनीतिक सम्बन्धों की स्थानिक एवं कालिक परास (टेम्पोरल रेन्ज) में प्रतिबन्धित होते हैं तथा नैतिक, धर्म तथा तद्नरूप आयामों की विश्व दृष्टि रखते हैं, मौखिक भाषा से अलंकृत सीमा और काल के दृष्टिकोण से संकीर्ण ऐसी आत्मनिर्भरता रखते हैं, जिसका समाज में अभाव है। सम्प्रति इस क्षेत्रीय स्थानिक समूह का अभिज्ञान अनुसूचित जनजाति के रूप में किया जाता है, जिसके लिये भारतीय संविधान का अनुच्छेद 342 महामहिम राष्ट्रपति को अधिकृत करता है कि वे राज्यपाल से परामर्श कर अनुसूचित जनजातियों को निर्दिष्ट करें। इसी प्रकार संविधान की अनुसूची 5 एवं 6 के अधीन जनजातियाँ निर्धारित एवं अनुशासित हैं।[3] जनजातीय समाज के संस्थागत अध्ययन में सर्व श्री डी. एन. मजूमदार, प्रो. श्यामाचरण दुबे एवं के. सुरेश सिंह का अविस्मरणीय योगदान रहा है।[4] जनजातियों से सम्बन्धित आँकड़ों, समस्याओं, समाधान, मूल्यांकन और अध्ययन के आलोक में कहा जा सकता है कि इनकी जनसंख्या वृद्धि दर 1981 से 1991 के मध्य 25.67 हो गयी, जो राष्ट्रीय जनसंख्या वृद्धि दर 23.79 से अधिक है।[5]

भौगोलिक आधार पर भारतीय जनजातियों को चार वर्गों- हिमालय क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, पश्चिमी क्षेत्र तथा तटवर्ती द्वीप समूहों से युक्त दक्षिणी क्षेत्र में विभक्त किया गया है। मजूमदार महोदय प्रजातीय वर्गीकरण को दुरूह मानते हैं। सर्वप्रथम जनजातियों का प्रजातीय वर्गीकरण हरबर्ट रिजले द्वारा 1915 ई. में पीपुल्स ऑफ इण्डिया में प्रकाशित कराया गया। कालान्तर में इन्हें निग्रायेड, मंगोलायड और प्रोटो-आस्ट्रेलायड में विभक्त किया गया।

*रीडर, समाजशास्त्र, राजा मोहन गर्ल्स, पी.जी. कॉलेज, फैजाबाद
**रीडर, समाजशास्त्र, का.सु. साकेत पी.जी. कॉलेज, अयोध्या-फैजाबाद

शिक्षक–शिक्षा शोध पत्रिका Vol. 01, No. 01, 2007, PP. 34-42

स्त्रियो एवं बालिकाओं की जनसंख्या का निम्न अनुपात और उत्तरदायी कारक

डॉ. सुषमा पाठक
रीडर (समाजशास्त्र विभाग)
राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, फैजाबाद (उ.प्र.)

वर्ष 1985 ई. मे बाजिंग घोषणा–पत्र से लेकर 2001 मे संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्घोष नारी सशक्तीकरण, भारत मे महिला विकास कार्यक्रमों की सफलता, नारी सशक्तीकरण एवं पुरातन भारतीय सांस्कृतिक उद्घोष– ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' के बावजूद राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी से सम्बद्ध असन्तोषजनक आंकड़े प्राप्त हो रहे हैं। डॉ. सक्सेना का लेख 'महिला सशक्तीकरण युग मे निरन्तर अशक्त होती नारी विभा देव सरे की कृति– 'स्वागत है बेटी, सिमोन द बुआ की कालजयी रचना 'स्त्री उपेक्षिता' (The second sex), मृणाल पाण्डे की 'देवी' और तसलीमा नसरीन की द्विखण्डिता जैसी कृतियाँ वास्तविकता से हमें परिचित कराने की एक सार्थक पहल है। परन्तु समाचार जगत् 21वी सदी मे महाशक्ति जापान मे उत्तराधिकारी के जन्म पर प्रफुल्लित हो रहा है, क्योंकि जन्मजात नव शिशु बालिका नहीं, बालक है, जो आगामी कल का राजा है। परन्तु आज तक जापान की नारी को औद्योगिक देश मे अपेक्षित अधिकार नहीं मिल पाये हैं।[2] भारतीय परिप्रेक्ष्य मे राष्ट्रीय नेताओं ने राष्ट्र निर्माण मे नारी के योदान को भले ही स्वीकार किया हो, परन्तु जनसामान्य के लिए यह पुस्तकीय वाक्य ही रह गया है। लैंगिक विभेद से सम्बन्धित नारी की जो छवि उभरती है, उसमे पुरुष वर्चस्व की राजनीति, विवाह, पारिवारिक दायित्व और उत्तराधिकार जैसी मौलिक समस्यायें आम बातें हैं। धर्म, परम्परा, नैतिकता और अन्त मे कानून की आड़ मे इसी पुरुष वर्चस्व का विस्तार किया जाता है। इस वर्चस्व से आहत नारी को घर की चाहरदीवारी में अनचाही कैद और क्रमशः आर्थिक, राजनीतिक एवं विधिक अधिकारों से महरूम कर दिया जाता है। इस प्रकार पुरुष वर्चस्व के सहयोग से एक ऐसा पितृसत्तात्मक पारिवारिक–सामाजिक ढाँचा निर्मित होता है, जिसमें नारी जीवन, श्रम, यहाँ तक कि उसकी अपनी कोख तक पर भी कोई अधिकार नही रह जाता है। इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षण को गिरवी रखकर नारी निजी सम्पत्ति बन जाती है। यह आश्चर्य की बात है कि भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् के अनुसार भारत की 70 प्रतिशत से अधिक महिलाएं रक्ताल्पता से (एनीमिया) पीड़ित हैं। नारी अपनी रचनात्मक शक्ति से परिवार को व्यवस्थित और विकसित तो करती है, परन्तु लैंगिक दृष्टि से परिवार की उपलब्धियों में उसका योगदान और उसकी पहचान कर्मस्थली में ही न के बराबर रहता है। राष्ट्रीय स्तर पर कमोबेश कन्या के जन्म को अभिशाप और पुत्र के जन्म को वरदान माना जाता है। प्राचीनकाल में जहाँ कन्या को जन्म के उपरान्त मार दिया जाता था, वही मानवाधिकार की धज्जियाँ उड़ाते हुए मंच पर 'लेडीज फर्स्ट' और रात भर 'जय माताजी' का उद्घोष करने वाले लोग, कन्या को जन्म के अधिकार से ही वंचित कर रहे हैं। जन्मने वाले परिवार में कन्या की पहचान–उपेक्षा, पराया धन, दान की वस्तु, फलां की बेटी, आधा पेट भोजन, शिक्षा से वंचित, भाई को ज्यादा महत्व, कोई बेटी की कमाई खानी है? आदि सामान्य बाते हैं। यही

United Journal of Awadh Scholars, Vol. 1 (No. 1 & 2), Oct. 2007, 105-110

घरेलू हिंसा-एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

सुषमा पाठक *

वर्तमान औद्योगिक, नगरीकरण और वैश्वीकरण से प्रभावित जीवन में हिंसा एवं अपराध सार्वभौमिक घटना बन गये है। देश एवं काल मे परिवर्तन के बावजूद महिलाओं के प्रति हिंसक वृत्तियाँ निरन्तर बढ़ रही हैं। भारतीय परिपेक्ष्य में घरेलू हिंसा से संबंधित प्राप्त आंकड़े चिन्तनीय विषय है, क्योंकि महर्षि कृष्ण द्वैपायान व्यास[1] ने परिवार के मूलाधार स्त्री और पुरूष को परस्पर आश्रित मानकर सुझाव दिया था - "भार्या मनुष्य का आधा अंग है, श्रेष्ठ सखी है, धर्म, अर्थ और काम का मूल है।" कदाचित इसी अभिप्राय से मनु[2] ने कहा था कि जहाँ नारी की पूजा (सदव्यवहार) होती है, वहीं देवगण निवास करते हैं, इसकी विपरीत दशा मे कोई भी आयोजन वास्तविक अर्थो में सफल नहीं होता है। इसीलिये सूर्या विवाह सूक्त[3] में स्त्री-पुरूष को पूरक मानते हुये इस प्रकार आशीष देने का उल्लेख हुआ है-

'सम्राज्ञी श्वसुरेभव, सम्राज्ञी श्वश्रूवाभव,
ननान्दरि सम्राज्ञीभव, सम्राज्ञी अधिदेवेषु।

अर्थात- "वधू अपने कर्म से तुम सास-ससुर, ननद और देवरों की रानी बनो और इनके ऊपर प्रभुत्व प्राप्त करो।" परन्तु राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण ने 29 राज्यों में समग्र सर्वेक्षण की रिपोर्ट में स्पष्ट किया है कि भारतीय महिलाओं में 37.2 प्रतिशत ऐसा है, जो अपने जीवन में कभी न कभी शारीरिक यौन एवं मानसिक हिंसा का शिकार होता है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की वर्तमान रिपोर्ट में स्पष्ट किया गया है कि 15 से 49 वर्ष वय की भारतीय महिलाओं में अनुमानतः 66% घरेलू हिंसा की शिकार होती हैं[4]। भ्रष्टाचार, अस्वस्थ चिकित्सालयो एवं उद्योगो के लिए चर्चित उ0प्र0 में घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं का प्रतिशत 42 है। इस प्रकार के आंकड़े वर्तमान में तब तक प्राप्त हो रहे हैं जबकि विश्व स्तर पर महिला सशक्तीकरण का प्रयास किया जा रहा है यथा-संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा महिलाओं को शोषण एवं अत्याचार से मुक्ति हेतु वर्ष 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में मनाने का सुझाव दिया गया, जिसे सदस्य राष्ट्रों ने स्वीकार भी कर लिया। अगर इस प्रयास की पृष्ठभूमि पर विचार करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि वर्ष 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया जाना हो या 1995 में विश्व महिला सम्मेलन का आयोजन, महिला अपनी स्थापित मर्यादा और सामाजिक संरचना में प्रस्थिति की दृष्टि से कुछ अपेक्षित अर्जित नहीं कर पा रही है। एक लम्बे अन्तराल तक देश की जनसंख्या का मूलाधार और भारत के कर्णधारों की जननी सरकारी भगीरथ प्रयासों के बावजूद जीवन रक्षा और जीवन यापन के सामान्य संसाधनों/उपायों से वंचित है। हमारे राष्ट्र में जहाँ नारी को अर्धांगिनी, सखा आदि विशेषणों से विभूषित किया जाता है, वहीं घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं का निरन्तर वर्धमान प्रतिशत एक सामाजिक विचलन की ओर संकेत करता है। इस सामाजिक समस्या के निदान हेतु 26 अक्टूबर 2006 को घरेलू हिंसा निवारण अधिनियम अस्तित्व में आया।

*रीडर, समाजशास्त्र विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कालेज, फैजाबाद।

4

Covid-19- The Pandemic & Its Impact on Indian Society :- A Sociological Analysis with special emphasis on school education in the city of Ayodhya

Dr. Sushma Pathak[4] and Priya Singh[5]

Abstract

COVID-19 is an infectious disease caused by a new corona virus called SARS-CoV-2. The World Health Organization declared the novel coronavirus or COVID-19 as global pandemic on March 11 2020. The petrifying and the extreme impact of COVID-19 have shaken the world to its core. Various socio-economic, political, educational and ecological changes have been seen in India and everywhere. On the basis of primary and secondary data the positive and negative impacts along with government efforts and suggestions for combating this deadly virus has been highlighted in this article.

"Pandemic is not a word to use lightly or carelessly. It is a word that, if misused, can cause unreasonable fear, or unjustified acceptance that the fight is over, leading to unnecessary suffering and death."

- Dr. Tedros Adhanom (WHO director general)

According to WHO, Corona virus disease (COVID-19) is an infectious disease caused by a new corona virus called SARS-CoV-2. WHO first learned of this new virus on 31 December 2019. The novel corona virus disease 2019

4. Associate Professor) Raja Mohan Girls P.G. College, Ayodhya
5. Research Scholar, Dr. RML Avadh University, Ayodhya

वैदिक वाङ्मय राष्ट्रीय गौरव से ओत-प्रोत है

डॉ० सुषमा पाठक*

राष्ट्रीयता विशद भाव एक व्यापक शब्द है। इसी की भावभूमि पर किसी राष्ट्र की आधार भूमि निर्मित होती है। राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता शब्दों को अभिव्यक्त करने के लिये 'संघटन' के प्रति अनुराग एवं सफल प्रयास आवश्यक है। सहस्रबुद्धे का स्पष्ट विचार है कि धर्म, राष्ट्र एवं वंश की त्रयी समाज को संघटित करती है।[1] इनके मूल में धर्म की भूमिका भारतीय परिप्रेक्ष्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

'धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः'

धर्म आंग्ल भाषा के religion का पर्यायवाची शब्द नहीं है। इसका सामान्य अभिप्राय धार्मिक मान्यता, विहित कर्त्तव्य, जन्मजात विशेषतायें और करणीय कर्त्तव्य माना जाता है। कभी ज्ञान धर्म था और कभी दान। मेरे विचार में धर्म ही वह सार्वभौम तत्व है जो कर्त्तव्य मार्ग पर प्रेरित करने के कारण व्यक्ति और समाज को धारण करता है।[2] धर्म के अर्थ की विषमता के कारण ही पाश्चात्य विचारकों ने हमारी संस्कृति और पूर्वजों पर दोषारोपण किया है तथा डनिंग-आर्यों ने अपनी राजनीति को धार्मिक एवं दार्शनिक वातावरण से मुक्त नहीं रखा।[3] मैक्समूलर[4] - भारतीय राष्ट्रीय भाव से सर्वथा अनभिज्ञ थे और उनका हृदय मातृभूमि की प्रशस्ति में स्पंदित नहीं किया, इसी प्रकार बिलोबी[5] का मत है कि पूर्व के साम्राज्यों में धर्म और कानून इस प्रकार सम्पृक्त थे कि उसमें राजनीति के स्वतंत्र अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त पाश्चात्य दोषारोपण का प्रबल तर्कों के आधार पर खण्डन किया जा चुका है।[6]

ई. एच. कार ने राष्ट्र को ऐसा मानव समूह बताया है जिसमें एक सरकार,

* रीडर, समाजशास्त्र, राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, फैजाबाद, उ.प्र.

सामाजिक समरसता के महानायक-वल्लभभाई पटेल
लौह स्वराज्य

डॉ. सुषमा पाठक

भारतीय राजनीति के शिल्पकार तथा सामाजिक समरसता के आजाद भारत के प्रथम उपप्रधानमंत्री ... गुजरात के खेड़ा जिला स्थित नाडियाद में पोषक लौह पुरुष के रूप लोक प्रसिद्ध है। सरदार पटेल का जन्म ... झवेरभाई तथा माता का नाम लाडबाई था, जो लेवा 31 अक्टूबर 1875 ई. को हुआ था। इनके पिता का नाम ... से सम्बन्धित थे। इस जाति ने 1857 ई. में भारतीय पाटीदार नाम से प्रसिद्ध एक शुद्ध हिंदू किसान जाति ... स्वतंत्रता के प्रथम संग्राम में प्रमुख रूप से भाग लिया था इनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा उनके पैतृक गाँव करमसद में हुई। पिता झवेरभाई की छः संतानें थीं (पांच पुत्र तथा एक पुत्री) आठ सदस्यों के पालन-पोषण के लिए सिर्फ 10 एकड़ भूमि इनके पास थी। अतः घर का वातावरण सरलता और गरीबी का था। गाँव की मिट्टी में इनका जन्म हुआ, इसी मिट्टी से ही इनका शरीर धूल-धूसरित हुआ, किन्तु अटूट अध्यवसाय, निरन्तर परिश्रम, अदम्य साहस, पवित्र देशभक्ति का अहर्निश अपने व्यक्तित्व में अविरल प्रवाह, त्याग और कष्ट सहन के बल पर वे भारतीय राजनीति रूपी हिमालय के उत्तुंग शिखर पर समासीन हुए। स्कूल की परीक्षा पास कर, अर्थाभाव के कारण वल्लभभाई कॉलेज और विश्वविद्यालय कक्षाओं में सम्मिलित नहीं हो सके। अतः तीन वर्षों के बाद उन्होंने मुख्तार-वकील परीक्षा पास कर, वकालत प्रारम्भ कर दी। 1900 ई. में गोधरा में उन्होंने एक छोटा कार्यालय खोल लिया, फौजदारी कानून सम्बन्धी अपनी विशेष योग्यता के कारण वे अपने तत्कालीन वकीलों से वकालत व्यवसाय में काफी आगे निकल गये। अगस्त 1910 ई. में वे इंग्लैंड चले गये और 1913 ई. फरवरी में पूर्ण योग्यता प्राप्त कर बैरिस्टर बन कर, भारत लौटे।

बम्बई के प्रधान न्यायाधीश ने उन्हें न्यायाधीश का पद देने का प्रस्ताव रखा, परन्तु इस पद को अस्वीकार कर अपनी ही वकालत अहमदाबाद में करते रहने का निर्णय किया, फलस्वरूप फौजदारी वकालत खूब चमकने लगी। लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष, माननीय मावलंकर वकील पटेल पर यह सुन्दर टिप्पणी प्रस्तुत की है 'अच्छे सिले कपड़ा में, सिर पर एक विशेष कोण पर रखा फेल्ट हैट, मुख की मुद्रा में कठोर अनुशासन और गम्भीरता लिए, दीप्त, पैनी दृष्टियुक्त आँखें, अल्पभाषी, आगन्तुकों का स्वागत मात्र एक सामान्य अभिवादन से करना, बिना लम्बी बातों में प्रवृत्त हुए, नेत्रों में झलकती गम्भीरता चिन्तनशीलता का परिचय देते हुए, जब कभी भी वे अपनी जबान खोलते, ऐसा लगता था मानों वे अन्यों को हीन मानते हुए, अपनी श्रेष्ठता जतला रहे हों।' यह चित्र था युवक बैरिस्टर का, जो अहमदाबाद में वकालत करने आया था। 1917 ई. में गांधी जी के सम्पर्क में आने के बाद अधिक दिनों तक वे बैरिस्टरी नहीं कर सके और गांधी जी के नेतृत्व में चल रहे असहयोग आन्दोलन में पूर्ण अनुरक्ति से प्रतिभागी बन गये। उनकी अन्तर्निहित प्रतिभा और निर्भीक गुण ही उनमें तेज, ओज, वर्चस् का प्रवाह भरते रहे। उनका एक ही मंत्र था- समरसता अर्थात् 'भारत का निर्माण' विविधताओं से परिपूर्ण था उस भारत राष्ट्र को सप्राण, सशक्त एवं एक सूत्र बनाना, यही उनके जीवन का मूलमंत्र था। 1928 ई. में बारदोली सत्याग्रह का कुशल नेतृत्व कर किसानों के बीच उन्होंने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। उनके नपे-तुले शब्दों में किसानों को उनके अधिकारों का बोध

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, राजा मोहन गर्ल्स स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या।

मानवाधिकार महिला सशक्तिकरण - दशा एवं दिशा

✦ डॉ. महेन्द्र पाठक
अध्यक्ष, प्रा.इति. संस्कृति एवं पुरा.
का.सु. साकेत पी.जी. कालेज अयोध्या, फैजाबाद
✦ डॉ. सुषमा पाठक
रीडर, समाजशास्त्र
राजा मोहन गर्ल्स पी.जी.कालेज, फैजाबाद

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर
मानव तुम सबसे सुन्दरतम्।

प्रकृति के अनन्य उपासक सुमित्रा नन्दन पंत की उपर्युक्त पंक्तियों में गम्भीर ध्वन्यार्थ संरक्षित है। विधाता द्वारा सृजित सृष्टि से मानव मात्र इसलिये महान नही है कि वह सोचने और समझने की क्षमता रखता है, अपितु इसलिये है कि उसने अपने मानवीय मूल्यों को युगों के प्रवाह में सुरक्षित रखा है। अपनी नैसर्गिक प्रतिभा को उसने सहजीवी मानव के प्रति सम्मान एवं सहजीवन को बढ़ाने में लगाया है, मानव इसी लिये सुन्दर है। हमारे समाज एवं संस्कृति में कतिपय आहरणीय एवं शाश्वत अधिकारों/कर्त्तव्यों का प्रावधान किया गया है, इन्हें ही मानवाधिकार संज्ञा से अभिहित किया जाता है।[1] तकनीकी दृष्टि से मानवाधिकार वे अधिकार हैं, जिनका मानव मात्र के लिये उपलब्ध होना अपेक्षित है। वस्तुतः सामाजिक जीवन की वहदशा, जिसमें मानव को समाज द्वारा अनुमन्य तथा विधि सम्मत कार्यों को सम्पन्न करने की स्वतंत्रता हो, मानवाधिकार कहलाती है।[2] विश्व के आदिम समाजों में एक पदानुक्रम की व्यवस्था थी। आदिम समाज में 'मानव' को उसके मूल्यों के साथ ही स्वीकार किया जाता था। मानवाधिकार मान के नैसर्गिक अधिकारों से उद्भूत प्रतीत होते हैं। नैसर्गिक याप्राकृतिक अधिकार प्राकृतिक कानून से सम्बंधित हैं, जिसका गंभीर विवेचन एफ. कैस्टिल वर्ग ने नेचुरल राइट्स एण्ड ह्यूमन राइट्स में किया है।[3] हम चाहें वैदिक जनों या प्राचीन 'मय' (मैक्सिको एवं पेरू), सभ्यता का विश्लेषण करें, सर्वत्र मानव को पूर्ण प्रतिष्ठा उपलब्ध कराने के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। अद्यतन बहुप्रचारित मानवाधिकार एक अर्वाचीन अवधारणा है, परन्तु भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह पुरातन एवं अपेक्षाकृत अधिक उदात्त है, परन्तु प्रचलित इस रूप में नही रही है। ऋग्वेद में वर्णित 'कृण्वन्तो विश्वंहि आर्यम्' एवं सम्भूय समुत्थान, सह नौ भुनक्तु.....तथा सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित दुख भाग भवेत्।। इसकी पुष्टि करते हैं।

प्रकृति की सम्पूर्ण सृजनात्मकता और अलौकिक चेतना का मूर्त रूप नारी है। जगत में जो कुछ भी दृश्य है, उसे सवांरने और उसकी उपस्थिति को कमनीय, सौन्दर्यपरक और प्राणिहितार्थ बनाने में जो अदृश्य चेतना कार्य करती है, वह नारी चेतना ही है। बैदिक समाज में नारी को पुरुषों के समकक्ष अधिकार प्राप्त थे। कालान्तर में रूग्ण सामाजिक व्यवस्था ने तेजस्विनी नारी की प्रस्थिति और भूमिका को संकुचित और प्रतिबंधित कर दिया। मध्यकाल इस दृष्टिकोण से अंधकारमय काल खण्ड कहा जा सकता है। परन्तु यह आज भी यक्ष प्रश्न है कि विभिन्न युग सन्धियों पर नारी के प्रति समाज का क्या दृष्टिकोण रहा है? यथा – नवजात शिशु के जन्म पर लोकगीत गायन की परम्परा प्रायः समाजों में प्रचलित है, परन्तु ऐसा कोई बिरला ही समाज होगा जिसमें बालिका शिशु के जन्म पर गाया जाने वाला लोकगीत उपलब्ध हो। दादी और नारी का इन लोकगीतों से गहरा सम्बंध है। परन्तु बालिका शिशु के रूप में कभी जन्म लेने वाली दादी/नानी ने भी इस ओर कभी ध्यान नही दिया। पृथ्वी ग्रह पर कृषि की शुरूआत किसी स्त्री ने ही की थी।[6] बच्चे को मनुष्य का पिता कहा जाता है, निश्चय ही नारी ऐसी दशा में मानवता की संरक्षिका है। मानवता के उत्कर्ष की गाथा कहते हम नहीं अघाते हैं, यदि पुरुषों के समान अवसर नारी को प्राप्त हुआ होता तो इतिहास उत्थान-पतन का विवरण नही अपितु उत्थान का आख्यान ही होता। नारी/महिला के जिस वर्ग के उपासना की चर्चा बुद्धिजीवी वर्ग करता है वह आज भी साधन सम्पन्न होने के कारण पूजनीय है। वस्तुतः महिलाओं का एक बड़ा प्रतिशत अभाव और इतिहास के